GL H 891.405
BHA

126533
LBSNAA

श्री राष्ट्रीय प्रशासन अकादमी
Academy of Administration
मसूरी
MUSSOORIE
पुस्तकालय
LIBRARY

अवाप्ति संख्या
*Accession No.* 20311
वर्ग संख्या
*Class No.* 891·405
पुस्तक संख्या
*Book No.* भारती

# भारतीय साहित्य

भारतीय भाषाविज्ञान तथा साहित्य का शोधपरक त्रैमासिक

अक्टूबर १९५९

[वर्ष ४, अंक ४]

सम्पादक

डा० विश्वनाथ प्रसाद

क० मुं० हिन्दी तथा भाषाविज्ञान विद्यापीठ,

आगरा विश्वविद्यालय, आगरा।

प्रकाशक :—

संचालक,

क० मुं० हिन्दी तथा भाषाविज्ञान विद्यापीठ,

आगरा विश्वविद्यालय,

आगरा ।

वार्षिक मूल्य १२, रु० ।

भारतीय साहित्य

वर्ष ४, अंक ४ ।

मुद्रक :—

हरि कृष्ण कपूर,

आगरा यूनिवर्सिटी प्रेस,

आगरा ।

# विषय सूची

विषय पृष्ठ संख्या

१. हिंदी भाषा तथा संबंधित उपभाषाएँ १
डा० धीरेन्द्र वर्मा,
नागरी प्रचारिणी सभा, वाराणसी ।

२. दृश्य-श्रव्य भाषा-शिक्षण में अप्रक्षेपणीय प्रणालियों का महत्व १३
डा० विश्वनाथ प्रसाद,
संचालक, क० मुं० हिन्दी तथा भाषाविज्ञान विद्यापीठ,
आगरा विश्वविद्यालय, आगरा ।

३. बैसवाड़ी के संज्ञार्थक प्रातिपदिक १६
श्री देवीशंकर द्विवेदी ,
प्राध्यापक, क० मुं० हिन्दी तथा भाषाविज्ञान विद्यापीठ,
आगरा विश्वविद्यालय, आगरा ।

४. तेलुगु का लोकगीत साहित्य २७
श्री भीमसेन 'निर्मल',
हैदराबाद ।

५. मध्यकालीन गुजराती वाङमय लेख-संबंधी कुछ सूचनाएँ ४६
श्री अगरचन्द नाहटा,
बीकानेर ।

६. लक्ष्मणसेन पद्मावती ५५
श्री उदयशङ्कर शास्त्री,
क० मुं० हिन्दी तथा भाषाविज्ञान विद्यापीठ,
आगरा विश्वविद्यालय, आगरा ।

७. मध्यकालीन गुजरात में नाटक ६१
डा० भोगीलाल ज० सांडेसरा,
बड़ोदा ।

८. कविवर बनारसीदास १०१
डा० रवीन्द्रकुमार जैन,
बारहसेनी कालेज, अलीगढ़ ।

९. मीरां के भाव-तत्व के मूल श्रोतों का अनुसंधान १०७
श्रीमती डा० विमला गौड़,
अजमेर ।

विषय पृष्ठ संख्या

१०. हिन्दी साहित्य के काव्यरूपों का अध्ययन १११
डा० रामबाबू शर्मा,
मथुरा ।

११. प्रेम अभिलाष १३१
डा० विश्वनाथ प्रसाद,
संचालक, क० मुं० हिन्दी तथा भाषाविज्ञान विद्यापीठ,
आगरा विश्वविद्यालय, आगरा ।

१२. खेमदास रचित 'गोपीचन्द को बैराग बोध' १३७
श्री उदयशङ्कर शास्त्री,
क० मुं० हिन्दी तथा भाषाविज्ञान विद्यापीठ,
आगरा विश्वविद्यालय, आगरा ।

१३. आधुनिक हिन्दी साहित्य पर अनुसंधान १५३
डा० सत्येन्द्र,
प्राध्यापक, क० मुं० हिन्दी तथा भाषाविज्ञान विद्यापीठ,
आगरा विश्वविद्यालय, आगरा ।

टिप्पणी—

१. बंगाल के 'डाक नाम' विषयक लोक-विश्वास १६७
श्री श्रीनारायण पाण्डेय,
मणीन्द्रचन्द्र विद्यापीठ, बहरमपुर ।

२. अन्तर्राष्ट्रीय लोक-कथा अनुसंधान कांग्रेस १७३
डा० सावित्री सरीन,

पद्मसिंह शर्मा पत्र-संग्रह । १७७

समालोचना—

भोजपुरी लोक-गाथा, १९१
डा० सत्येन्द्र,
प्राध्यापक, क० मुं० हिन्दी तथा भाषाविज्ञान विद्यापीठ,
आगरा विश्वविद्यालय, आगरा ।

डा० धीरेन्द्र वर्मा

# हिंदी भाषा तथा संबंधित उपभाषाएँ

## हिंदी भाषा शब्द का ऐतिहासिक विकास

हमारे पड़ोसी ईरानी भाई अनेक शताब्दियों से "सिंधु" नदी के पूर्वी प्रदेश अर्थात् भारतवर्ष को अपने उच्चारण के स्वभाव के अनुसार "हिंद" कहते रहे हैं और इस प्रदेश के निवासियों अर्थात् भारतीयों को तथा उनकी मुख्य भाषा को "हिंदी" या "हिंदवी" नाम से पुकारते रहे हैं, जिस प्रकार हम लोग "ईरानी" "चीनी" अथवा "फ्रांसीसी" आदि शब्दों का प्रयोग इन देशों के निवासियों तथा उनकी भाषाओं दोनों के लिए करते हैं। "हिंदी" शब्द के ये प्रयोग वर्तमान समय तक चल रहे हैं। भाषा के अर्थ में तो इस शब्द को अपने देश में पूर्णतया अपना लिया गया है। भारत के निवासियों के अर्थ में "हिंदी" शब्द का प्रयोग अब अवश्य कम होता है, किन्तु वह बिलकुल अप्रयुक्त नहीं है। "हिंदी हैं हम वतन है हिंदोस्तां हमारा" इस प्रसिद्ध पंक्ति में महाकवि इकबाल ने हिंदी शब्द का प्रयोग इसी अर्थ में किया है।

भारतवर्ष के लिए "हिंद" के साथ-साथ आगे चलकर "हिंदुस्तान" शब्द अधिक प्रयुक्त होने लगा। इन दोनों ही शब्दों का अर्थ धीरे-धीरे सीमित हुआ। क्योंकि सुल्तानों और मुग़लों के साम्राज्यों के केन्द्र उत्तर भारत में थे अतः "हिंद" तथा "हिंदुस्तान" शब्द प्रधानतया उत्तर भारत के लिए प्रयुक्त होने लगे। अंत में तो यह प्रयोग उत्तर भारत के भी केवल मध्य भाग अर्थात् दिल्ली से भागलपुर तक की गंगा की घाटी तक सीमित रह गया। इस प्रदेश को प्राचीन काल में स्वयं भारतीय "मध्य देश" के नाम से पुकारते थे। आजकल इसे "हिंदी प्रदेश" कहा जा सकता है। "हिंद तथा हिंदुस्तान" शब्दों का भी यह प्रयोग लगभग वर्तमान काल तक चलता रहा है। उदाहरणार्थ, सर जार्ज ग्रियर्सन ने अपने प्रसिद्ध "वर्नाक्यूलर लिटरेचर आव हिंदुस्तान" शीर्षक ग्रन्थ में "हिंदुस्तान" शब्द का प्रयोग समस्त भारत अथवा उत्तर भारत के लिए नहीं, बल्कि केवल हिंदी प्रदेश के लिए किया है।

"हिंद" अथवा "हिंदुस्तान" शब्दों के अर्थों के सीमित होने के साथ-साथ भाषा के द्योतक "हिंदी", "हिंदवी" अथवा "हिंदुस्तानी" शब्दों का अर्थ भी सीमित हुआ। समस्त भारतीयों तथा उनकी प्रधान भाषा के स्थान पर इन शब्दों का प्रयोग पहले उत्तर भारत के निवासियों और उनकी प्रधान भाषा के लिए तथा अंत में ऊपर दिए हुए उत्तर भारत के मध्य भाग अर्थात् "मध्य देश" अथवा भागलपुर तक की गंगा

की घाटी के निवासियों तथा उनकी प्रधान भाषा के अर्थ में प्रयुक्त होने लगा। यह प्रधान भाषा स्वाभाविकतया दिल्ली के सुल्तानों अथवा मुग़लों के दृष्टिकोण से पूर्वी पंजाब तथा दिल्ली के निकटवर्ती प्रदेश की बोली थी जिसका उपयोग वे सदियों से भारतीयों से बातचीत करने में करते रहे थे। यहाँ यह स्मरण दिलाना अनुचित न होगा कि सुल्तानों अथवा मुग़लों की मातृभाषा प्रायः तुर्की थी, तथा धार्मिक भाषा अरबी थी। साहित्य-चर्चा तथा शासन के कार्यों में ये लोग बराबर फ़ारसी का प्रयोग करते थे। इस प्रकार "ज़बान—ए—हिंदी" को ये लोग दरबार के बाहर देश के केवल मूल निवासियों से बातचीत करने के लिए प्रयुक्त करते थे। इसका व्याकरण का ढांचा प्रधानतया दिल्ली-मेरठ प्रदेश की समकालीन खड़ी बोली का था, किन्तु शब्द-समूह में फ़ारसी, अरबी, तुर्की शब्दों का अधिक मिश्रण स्वाभाविक था। "ज़बान—ए—हिंदी" को उच्च काव्य-चर्चा के लिए न दिल्ली के सुल्तान और न मुग़ल उपयुक्त समझते थे, और न साहित्यिक अभिरुचि रखने वाले हिंदी प्रदेश के भारतीय ही। हिंदी प्रदेश के निवासी अपने-अपने प्रदेशों की बोलियों अथवा लोकभाषाओं में काव्य-रचना करते थे जिनमें ब्रजभाषा, अवधी, डिंगल तथा मैथिली मुख्य थीं। इनमें भी प्रथम स्थान ब्रजभाषा को प्राप्त था। इन सबको कभी-कभी व्यापक शब्द "भाषा" से संबोधित किया जाता था।

उपर्युक्त "हिंदी" अथवा "हिंदवी" भाषा का साहित्य तथा राजकाज में प्रथम प्रयोग दक्षिण भारत के मुस्लिम राज्यों तथा सूफ़ियों ने किया। गोलकुंडा (वर्तमान हैदराबाद) तथा बीजापुर आदि के मुस्लिम शासकों ने हिंदी को राजभाषा के रूप में अपनाया। इन राज्यों के शासकों ने स्वयं काव्य-रचना की और "हिंदवी" के कवियों को अपने दरबारों में संरक्षण दिया। दक्षिण में सूफ़ीमत का प्रचार करने के लिए मुस्लिम सूफ़ी फ़कीरों ने भी "हिंदी" अथवा "हिंदवी" का ही प्रयोग किया। "हिंदी" अथवा "हिंदवी" के दक्षिणी साहित्यिक रूप में कुछ विशेषताएँ मिलती हैं जिनके कारण इसको "दक्किनी" नाम भी दिया गया। दक्षिण के प्रसिद्ध सूफ़ी कवि वली ने १७२० ई० के लगभग दिल्ली के मुशायरों में, जिनमें अब तक केवल फ़ारसी रचनाएँ पढ़ी जाती थीं, पहले-पहले हिंदवी में लिखी अपनी रचनाएँ सुनाईं, जिनसे वहां के कवि तथा श्रोता दोनों ही बहुत प्रभावित हुए। इसका परिणाम यह हुआ कि दिल्ली के केवल फ़ारसी में लिखने वाले कवि धीरे-धीरे फ़ारसी के साथ-साथ "हिंदी" या "हिंदवी" में भी लिखने लगे। आगे चलकर तो ये फ़ारसी छोड़कर केवलमात्र 'हिंदी" में ही रचना करने लगे।

अपने मूल प्रदेश दिल्ली में लौटने पर इस भाषा की शैली और नाम दोनों ही में परिवर्तन हुए। दक्किनी हिंदी या हिंदवी अनगढ़, ब्रजभाषा आदि के रूपों से मिश्रित, संस्कृत के अनेक तत्सम और तद्भव शब्दों से युक्त, बोलचाल की शैली के अधिक निकट थी। दिल्ली से दरबारी कवियों ने दक्किनी को परिष्कृत, साहित्यिक तथा टकसाली बनाने का यत्न किया। क्योंकि ये प्रारंभिक कवि मूलतः फ़ारसी भाषा और साहित्य के विद्वान् और लेखक थे और क्योंकि दिल्ली के दरबार में अभी भी

फ़ारसी ही राजभाषा थी अतः इन कवियों ने भारतीय शब्दावली और रूपों के स्थान पर अधिकाधिक फ़ारसी शब्दों तथा रूपों से इसे बोझिल बनाया। प्रारंभ में इस भाषा को ये लेखक भी "हिंदी" या "हिंदवी" ही कहते थे, किंतु फ़ारसी शब्दों से मिश्रित इस नवीन शैली को "रेख्ता" के नाम से भी पुकारने लगे। क्योंकि यह भाषा पहले ही "जबान—ए—उर्दू—ए मोअल्ला—ए—शाहजहानाबाद दिल्ली" अर्थात् शाहजहां की बसाई दिल्ली की बड़ी छावनी (उर्दू) की भाषा थी अतः आगे चल कर इसका नाम "उर्दू" भी पड़ गया। धीरे-धीरे उत्तर भारत की इस नवीन शैली को 'हिंदी" या "हिंदवी" के स्थान पर "उर्दू" नाम से पुकारा जाने लगा और अब तो एक प्रकार से इसका यही एकमात्र नाम रह गया है। एक तरह से पुराने नाम हिंदी, हिंदवी, दक्किनी, रेख्ता आदि लगभग भुला दिए गए हैं। "उर्दू" को उसका मूल नाम "हिंदी" लेकर यदि कोई आज पुकारे तो इसे कुछ कुचक्र समझा जाएगा।

अंग्रेजों के शासनकाल में "हिंदी" या "उर्दू" को एक अन्य पुराना नाम "हिंदुस्तानी" अवश्य फिर से दिया गया। यूरोपीय विद्वान् "रेख्ता" या "उर्दू" के स्थान पर प्राय: "हिंदुस्तानी" कहना अधिक पसंद करते थे। उदाहरणार्थ फ्रांसीसी विद्वान् गार्सां द तासी ने अपने प्रसिद्ध इतिहास के शीर्षक में इसी नाम का प्रयोग किया है— "इस्त्वार द ला लितेरात्यूर ऐंदई ए ऐंदूस्तानी" में "ऐंदूस्तानी" शब्द हिंदुस्तानी का ही फ्रेंच उच्चारण है। फोर्ट विलियम कालेज के अथवा समकालीन अन्य मिशनरी प्रकाशनों में "हिंदुस्तानी" शब्द उर्दू का ही पर्यायवाची है। उन्नीसवीं शताब्दी में प्रकाशित प्राय: किसी "हिंदुस्तानी रीडर", "हिंदुस्तानी कोष", अथवा "हिंदुस्तानी काव्य संग्रह" को उठाकर इसकी पुष्टि की जा सकती है।

किन्तु महात्मा गांधी तथा उनकी प्रेरणा के फलस्वरूप कांग्रेस महासभा के उनके अनुयायियों ने "हिंदुस्तानी" शब्द का प्रयोग विशुद्ध उर्दू शैली के लिए नहीं बल्कि एक भिन्न अर्थ में किया है। "हिंदुस्तानी" से उनका तात्पर्य आधुनिक साहित्यिक खड़ी बोली तथा सरल उर्दू के एक मिश्रित रूप से रहा है। उनका स्वप्न यह था कि यह शैली भविष्य में क्लिष्ट साहित्यिक उर्दू तथा साहित्यिक खड़ी बोली दोनों का स्थान ग्रहण कर सकेगी और इसे समान रूप से उर्दू लिपि और देवनागरी में लिख सकना संभव हो सकेगा। महात्मा जी इस अपनी "हिंदुस्तानी" को उत्तर भारत की हिंदू-मुसलमान जनता के मेल का भाषा के क्षेत्र में प्रतीक समझते थे। वास्तव में विचार सुन्दर था, किन्तु भारतवर्ष के पाकिस्तान तथा हिंदुस्तान के दो टुकड़े होने के साथ महात्मा जी तथा उनके अनुयायी कांग्रेसियों का यह स्वप्न सदा के लिए भंग हो गया। उर्दू भाषा और लिपि पाकिस्तान की राजभाषा बनी, यद्यपि उसका असली घर पाकिस्तान के लाखों मुसलमान भाइयों के समान हिंदुस्तान में ही था—पाकिस्तान की जनता की भाषाएं तो पंजाबी, सिंधी, पश्तो तथा बंगाली हैं—और देवनागरी लिपि में लिखी जाने वाली साहित्यिक खड़ी बोली हिंदी विधान में भारत वर्ष की राजभाषा स्वीकृत हुई। भारत की हिंदू-मुसलिम समस्या के न सुलझ सकने का भाषा के क्षेत्र में यह परिणाम अवश्यम्भावी था।

भाषा के लिए प्रयुक्त "हिंदी" शब्द का ऐतिहासिक विकास यहां पर ही समाप्त

नहीं हुआ, बल्कि उसने एक अन्य नया रूप भी धारण किया। दिल्ली-मेरठ की खड़ीबोली के आधार पर लगभग १२०० से १८०० ईसवी के बीच एक ओर हिंदी, हिंदवी, दक्किनी, रेख्ता, उर्दू और हिंदुस्तानी नाम तथा कुछ भिन्न भाषा-शैलियाँ विकसित हुईं जिनमें से अन्त में "उर्दू" नाम और शैली आदर्श समझी जाने लगी, साथ ही इस समस्त काल में में खड़ीबोली प्रदेश की जनता के बीच बोलचाल के लिए इस बोली का प्रयोग बराबर होता रहा. यद्यपि इस बोलचाल की शैली में भी भाषाविज्ञान के नियमों के अनुसार कुछ परिवर्तन होता रहा। इस मूल खड़ीबोली में कभी-कभी साहित्य-रचना भी होती रही, यद्यपि यह बोली ब्रजभाषा अथवा अवधी आदि के समकक्ष साहित्य को १८०० ई० तक विकसित नहीं कर सकी। उन्नीसवीं शताब्दी के प्रारंभ में पहुंचते-पहुंचते ब्रजभाषा, अवधी, मैथिली आदि प्रादेशिक भाषा-शैलियों तथा साहित्यों की मूल प्रेरणा जिसका आधार वैष्णव धर्म, दर्शन तथा जीवन का विशेष दृष्टिकोण था क्षीण होकर लगभग समाप्त हो गई। इसके फलस्वरूप ये भाषाएं पहले गद्य में और कुछ समय के उपरान्त पद्य के लिए भी प्राणहीन सी दिखलाई पड़ने लगीं। पश्चिमी संपर्क के फलस्वरूप शेष भारत के साथ हिंदी प्रदेश में भी नए आदर्श, नई स्फूर्ति, नए काव्यरूप और नई आवश्यकताएँ आईं। कविता के साथ-साथ गद्य-साहित्य विशेष महत्त्वपूर्ण होने लगा। गद्य में भी केवल ललित साहित्य ही नहीं बल्कि प्रचुरमात्रा में उपयोगी विषयों के साहित्य की भी आवश्यकता दिन-दिन बढ़ने लगी थी। हिंदी प्रदेश के स्कूलों की पुस्तकों तथा शिक्षा-माध्यम के लिए भी एक सर्वसम्मत भाषा की आवश्यकता थी। सूफ़ियों के स्थानापन्न ईसाई मिशनरियों को भी एक टकसाली भाषा की जरूरत थी। छापेखानें के प्रचार के साथ पत्र-पत्रिकाओं का निकलना प्रारंभ हुआ। समस्त हिंदी प्रदेश में व्यापक प्रचार की दृष्टि से इन पत्र-पत्रिकाओं को ब्रजभाषा, अवधी, बुंदेली, छत्तीसगढ़ी, मारवाड़ी आदि प्रादेशिक भाषाओं में न निकालकर हिंदी भाषी प्रदेश की किसी ऐसी भाषा में निकालना उचित समझा गया जो समान रूप से इसके समस्त उपभाषा प्रदेशों में चल सके।

[१२०० से १८०० ईसवी] तक की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि ने यह स्पष्ट कर दिया था कि हिंदी प्रदेश के समस्त भाषा-रूपों में ब्रजभाषा के बाद यदि कोई अन्य प्रादेशिक लोकप्रिय बोली है, जिसका भविष्य हो सकता है, तो वह खड़ी बोली है। जैसा ऊपर कहा जा चुका है दिल्ली-मेरठ प्रदेश में तो लाखों की संख्या में जनता इसे एक जीवित बोली के रूप में बोलती ही थी, साथ ही इस बोली पर आधारित "हिंदी" "हिंदवी", "रेख्ता" और "उर्दू" की धाराएँ काव्य के क्षेत्र में काफ़ी विकसित हो चुकी थीं। उर्दू का एक सरल रूप, जिसे अक्सर "हिंदुस्तानी" कह दिया जाता था, उत्तर भारत के समस्त नगरों में बंबई से कलकत्ता तक और दिल्ली से हैदराबाद तक बोलचाल के लिए प्रयुक्त होने लगा था। देश के नए अंग्रेजी शासकों ने भी आधुनिक भारतीय भाषाओं में व्यावहारिक दृष्टि से इसीको संरक्षण देना प्रारंभ किया था। इस समस्त परिस्थिति को समझकर हिंदी प्रदेश के पढ़े लिखे लोगों का विशेष ध्यान १८०० ई० के बाद खड़ीबोली की ओर गया। इस बोली पर आधारित उर्दू शैली भारतीय परम्पराओं से लिपि, भाषा और साहित्य सभी क्षेत्रों में बहुत दूर हो गई थी। उसको ज्यों का त्यों ग्रहण करना संभव नहीं था। फलस्वरूप

खड़ीबोली की एक नई साहित्यिक शैली का तेजी से विकास प्रारंभ हुआ जिसके लिए भारतीय देवनागरी लिपि को ही अपनाया गया और जिसके शब्द समूह का झुकाव परंपरागत संस्कृत, प्राकृत और अपभ्रंश शब्दावली की ओर विशेष था यद्यपि फ़ारसी, अरबी, तुर्की, अंग्रेजी, फ्रांसीसी आदि विदेशी उद्गम के शब्दों का भी आवश्यकतानुसार स्वतंत्रता से प्रयोग किया जाता था। हिंदी प्रदेश की जनता ने शिक्षा, साहित्य, शासन आदि की आवश्यकताओं के लिए खड़ीबोली की इस शैली को तुरंत ग्रहण कर लिया। १८०० ई० के बाद इस खड़ीबोली शैली ने तेजी से जनता के बीच ब्रजभाषा का स्थान ग्रहण कर लिया—पहले गद्य के क्षेत्र में और बीसवीं शताब्दी में पद्य के क्षेत्र में भी। इस शैली के प्रारंभिक निर्माताओं में स्वामी प्राणनाथ, स्वामी लालदास, रामप्रसाद निरंजनी, मुंशी सदासुखलाल, लल्लूलाल तथा सदल मिश्र का नाम लिया जा सकता है। उन्नीसवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में इसके विशेष विकास का श्रेय भारतेन्दु हरिश्चन्द्र और उनके समकालीन अन्य लेखकों और पत्रकारों, जैसे प्रताप नारायण मिश्र, बालकृष्ण भट्ट आदि को है। समकालीन धार्मिक और सामाजिक सुधारकों में गुजरात निवासी स्वामी दयानंद सरस्वती ने संस्कृत को छोड़कर और खड़ी बोली हिंदी को अपनाकर आर्य समाज के द्वारा इसका विशेष प्रचार किया। बीसवीं शताब्दी में पहुँचते-पहुँचते महावीर प्रसाद द्विवेदी और उनके समकालीन लेखकों ने इसको और अधिक परिमार्जित किया।

एक समस्या इस नई साहित्यिक खड़ीबोली शैली के नाम की थी। प्रारम्भ में कुछ दिन इसे खड़ीबोली नाम से पुकारा जाता रहा किन्तु यह वास्तव में दिल्ली मेरठ प्रदेश की बोलचाल की खड़ीबोली से काफ़ी भिन्न होती जा रही थी। यूरोपीय लोग कभी-कभी इसे "हिंदुई" नाम से पुकारते थे। उदाहरणार्थ जैसा ऊपर उल्लेख किया जा चुका है, तासी ने इतिहास ग्रंथ में इसी नाम का प्रयोग किया है। खड़ीबोली की प्राचीन साहित्यिक शैली का "हिंदी" नाम एक प्रकार से खाली था, क्योंकि १९ वीं शताब्दी के उर्दू लेखक अब अपनी भाषा शैली को एकमात्र उर्दू नाम से पुकारने लगे थे, अतः "हिंद" की प्रधान भाषा के दावे की दृष्टि से इसी परंपरागत नाम "हिंदी" को इस नई शैली के लिए अपना लिया गया। फलस्वरूप "हिंदी भाषा" का नया अर्थ अब १४ वीं १५ वीं शताब्दी की खड़ी बोली की साहित्यिक शैली न होकर १९ वीं २० वीं शताब्दी की यह नवनिर्मित साहित्यिक खड़ीबोली शैली होगया और अब इसी विशेष अर्थ में यह शब्द एक प्रकार से रूढ़ हो गया है।

## भाषाविज्ञान के तथा साहित्यिक ग्रंथों में हिंदी शब्द के अनेक प्रचलित अर्थ

साधारणतया 'हिंदी" शब्द आजकल उपर्युक्त विशेष अर्थ में ही प्रयुक्त होने लगा है। भारतीय संविधान ने भी इसे इसी अर्थ में ग्रहण किया है। किन्तु भाषाविज्ञान के ग्रंथों में और साहित्यिक ग्रंथों में भी, इसका प्रयोग मिलेजुले कुछ अन्य अर्थों में अब भी चल रहा है। ये मुख्य भिन्न प्रयोग निम्नलिखित हैं :—

१. सर्वसाधारण तथा हिंदी लेखकों और पाठकों के बीच 'हिंदी' शब्द का प्रयोग प्राचीन मध्यदेश अथवा हिंदी प्रदेश के समस्त आधुनिक भाषा-रूपों के लिए होता है और

इन सबमें लिखा साहित्य हिंदी साहित्य के नाम के अन्तर्गत आता है । उदाहरण के लिए रामचन्द्र शुक्ल के "हिंदी साहित्य का इतिहास" में खड़ी बोली के साहित्य के इतिहास के अतिरिक्त, ब्रजभाषा, अवधी, मैथिली तथा डिंगल साहित्यों का इतिहास भी सम्मिलित रूप में दिया गया है । भारतीय हिंदी परिषद् द्वारा प्रकाशित "हिंदी साहित्य" द्वितीय खंड में तो उपर्युक्त भाषा धाराओं के साहित्यों के अतिरिक्त हिंदवी अथवा दक्किनी साहित्य, उर्दू साहित्य और पंजाबी साहित्य के इतिहास को भी सम्मिलित कर लिया गया है । दूसरे शब्दों में शुक्ल जी के इतिहास के अनुसार मैथिलीशरण गुप्त, प्रसाद, पंत आदि तो हिंदी भाषा के कवि हैं ही, साथ ही कबीर, सूरदास, तुलसीदास, जायसी, विद्यापति और डिंगल के प्रसिद्ध काव्य "वेलिकिसनरुकमिणी री" के लेखक पृथ्वीराज राठौर भी हिंदी भाषा के लेखक माने गए हैं, और परिषद् के "हिंदी साहित्य" के अनुसार उपर्युक्त कवियों के अतिरिक्त ख्वाजा बन्देनवाज, कुली कुतुबशाह, वजही, वली, मीर, सौदा, ग़ालिब, और गुरु नानक तथा गुरु गोविन्दसिंह को भी हिंदी कवियों की सूची में रक्खा गया है ।

२. सर जार्ज ग्रियर्सन ने लिंग्विस्टिक सर्वे आव इंडिया में हिंदी भाषा का क्षेत्र गंगा की घाटी में पूर्व में लगभग इलाहाबाद तक ही माना है । इस सीमित प्रदेश में भी उन्होंने राजस्थानी, पहाड़ी तथा बिहारी को पृथक् स्वतंत्र भाषाएँ माना है । वे हिंदी के भी दो भिन्न रूप मानते हैं जिन्हें उन्होंने एक प्रकार से दो मिलती-जुलती किन्तु स्वतंत्र भाषाएँ माना है । इसमें एक को वे पश्चिमी हिंदी और दूसरी को पूर्वी हिंदी कहते हैं । वास्तव में ग्रियर्सन की इन दो हिंदियों, अर्थात् पश्चिमी हिंदी तथा पूर्वी हिंदी भाषाओं, के कोई निश्चित स्वरूप नहीं हैं बल्कि ये कुछ मिलती-जुलती बोलियों के समूह मात्र हैं । खड़ीबोली, बांगरू अथवा हरियानी, ब्रज, कन्नौजी तथा बुंदेली के समूह को उन्होंने 'पश्चिमी हिंदी' तथा अवधी, बघेली और छत्तीसगढ़ी के समूह को 'पूर्वी हिंदी' नाम दिया है ।

३. हिंदी भाषा के संबंध में नवीनतम विचार हमें "लैंग्वेजेज़ आव इंडिया" में डा० सुनीति कुमार चैटर्जी का मिलता है । उन्होंने "हिंदी" नाम ग्रियर्सन की केवल 'पश्चिमी हिंदी' की बोलियों के समूह को दिया है । इसके बोलने वालों की संख्या उन्होंने ४-५० लाख दी है । शेष हिंदी प्रदेश में उन्होंने निम्नलिखित स्वतंत्र भाषाएँ—बोलियाँ नहीं मानी हैं :—१. मैथिली (१–१०), २. मागधी (०–७०) ३. भोजपुरी (२–१०), ४. कोसली अर्थात् ग्रियर्सन की पूर्वी हिंदी (२-३०), ५. राजस्थानी (१-४०), ६. भीली (०-२०), मध्य पहाड़ी (०-२०), ८. पश्चिमी पहाड़ी (०-१०), ९. हलबी अर्थात् बस्तर की भाषा (०-२०) । हिंदी तथा हिंदी प्रदेश की उपर्युक्त भाषाओं के मुकाबले में डा० "चैटर्जी" के अनुसार बंगाली भाषा बोलने वालों की संख्या ६ करोड़ ३० लाख के ऊपर है । यद्यपि "लैंग्वेजेज़ आव इंडिया" नाम की पुस्तक में वे अपने उपर्युक्त विचार दे रहे हैं, किन्तु अपनी मातृभाषा बंगाली के संबंध में कदाचित् यह प्रभाव डालने के लिए कि इस भाषा के बोलने वाले सबसे अधिक हैं, उन्होंने पाकिस्तान के बंगाली भाषियों को भी सम्मिलित कर लिया है और कदाचित् आसाम, उड़ीसा तथा बिहार के अधिक से अधिक

सीमान्त भागों की गिनती भी कर ली है, तथा बंगाल के बाहर अन्य राज्यों में बिखरे हुए बंगालियों को भी शामिल कर लिया है।

जो आपत्ति ग्रियर्सन की पश्चिमी और पूर्वी हिंदियों के संबंध में ऊपर उठाई गई है उसी प्रकार की कठिनाई डॉ० चैटर्जी के केवल पश्चिमी बोलियों के समूह को हिंदी कहने से होती है, अर्थात् हिंदी भाषा किसी एक निश्चित शैली का नाम नहीं रह जाता, बल्कि मिलती-जुलती पाँच बोलियों के समूह का नाम होता है।

४. वास्तव में हिंदी के संबंध में भारतीय विधान में हिंदी का जो अर्थ लिया गया है वह सबसे अधिक वैज्ञानिक है। विधान ने भारत में १४ प्रतिनिधि भाषाएँ मानी हैं। प्राचीन और मध्ययुगीन भाषाओं में केवल संस्कृत को मान्यता दी गई है। पाली, प्राकृतों अथवा अपभ्रंशों को बहुत महत्वपूर्ण न समझकर उन्हें सम्मिलित नहीं किया गया है। शेष १३ भाषाओं में तीन पूर्वी भारत की, १. असमी, २. बंगाली, ३. उड़िया, पाँच दक्षिण भारत की, अर्थात् ४. तामिल, ५. मलयालम, ६. तेलगू, ७. कन्नड़, और ८. मराठी, एक पश्चिमी भारत की अर्थात् ९. गुजराती (सिंधी भाषा प्रदेश पाकिस्तान में चला गया है) और दो पश्चिमोत्तरी भारत की हैं अर्थात् १०. पंजाबी और ११. काश्मीरी। इन ग्यारह भाषाओं के बाद दो भाषाएँ शेष रह जाती हैं, अर्थात् १२. उर्दू और १३. हिंदी। इनमें हिंदी भाषा का अर्थ देवनागरी लिपि में लिखी जाने वाली साहित्यिक खड़ीबोली से है और इसे निम्नलिखित राज्यों की राजभाषा माना गया है:—१. हिमांचल प्रदेश, २. पंजाब (पंजाबी के साथ) ३. दिल्ली (उर्दू के साथ), ४. राजस्थानी, ५. उत्तर प्रदेश, ६. मध्यप्रदेश और ७. बिहार। इन प्रदेशों में जो अन्य स्थानीय उपभाषाएँ अथवा बोलियाँ हैं उनको विधान की भाषा सूची में मान्यता नहीं दी गई है। इस प्रकार विधान के अनुसार हिंदी भाषी प्रदेश की जनसंख्या उपर्युक्त राज्यों की सम्मिलित जनसंख्या होगी जो सन् १९५१ ई० की जनगणना के अनुसार लगभग १६ करोड़ बैठती है।

## हिंदी प्रदेश की उपभाषाएँ

यद्यपि विधान ने समस्त हिंदी प्रदेश में केवल एक प्रतिनिधि भाषा को मान्यता दी है किन्तु ऐसा नहीं है कि इस विशाल भूमिभाग में अन्य महत्त्वपूर्ण उपभाषाएँ अथवा बोलियाँ न हों। वास्तव में इस प्राचीन मध्यदेश अथवा वर्तमान हिंदी प्रदेश की जनता, विशेषतया ग्रामों में रहने वाली, एक दर्जन से भी अधिक उपभाषाएँ बोलती है और इनमें से कुछ तो प्राचीन साहित्य परम्पराएँ रखने वाली भाषाएँ हैं। ग्रियर्सन तथा चैटर्जी आदि भाषाविज्ञान के पंडितों ने इनमें से कुछ को हिंदी की बोलियाँ ((Dialects of Hindi) कहा और इन विद्वानों के अनुसरण में भारतीय भाषाओं से संबंधित समस्त ग्रंथों में इस विचार का समावेश हुआ है। हिंदी प्रदेश की उपभाषाओं को हिंदी की बोलियाँ कहना वास्तव में अवैज्ञानिक है। यदि हिंदी का अर्थ केवल साहित्यिक खड़ी बोली लिया जाय तो ब्रजभाषा, बुंदेली, अवधी, छत्तीसगढ़ी अथवा मारवाड़ी, भोजपुरी आदि को इस साहित्यिक खड़ी बोली हिंदी की बोली मानना भाषाविज्ञान के सिद्धान्तों के

अनुसार गलत होगा। जैसा ऊपर संकेत किया जा चुका है 'हिंदी' शब्द का प्रयोग पश्चिमी अथवा पूर्वी हिंदी बोलियों के समूह के लिए करना भी अवैज्ञानिक है। इन्हें हिंदी प्रदेश की पश्चिमी बोलियों अथवा पूर्वी बोलियों का समूह तो कह सकते हैं, क्योंकि प्रत्येक समूह की बोलियों में आपस में कुछ साम्य अवश्य है, किन्तु बोलियों के वर्गों अथवा समुदायों को एक भाषा कैसे कहा जा सकता है। ऐसी स्थिति में इन्हें हिंदी प्रदेश की उपभाषा कहना ही उचित और वैज्ञानिक दृष्टिकोण होगा। कुछ साम्यों के आधार पर उन्हें वर्गीकृत अवश्य कर सकते हैं।

हिंदी प्रदेश की मुख्य उपभाषाओं की सूची तथा उनका प्रस्तावित वर्गीकरण निम्नलिखित है:—

क—बिहारी वर्ग
- १—मैथिली
- २—मगही
- ३—भोजपुरी।

ख—पूर्वी वर्ग।
- ४—अवधी—बघेली।
- ५—छत्तीसगढ़ी।

ग—पश्चिमी वर्ग।
- ६—खड़ी बोली—हरियानी।
- ७—ब्रजभाषा—कन्नौजी।
- ८—बुंदेली।

घ—राजस्थानी वर्ग।
- ९—जयपुरी।
- १०—मेवाती—अहीरवाटी।
- ११—मेवाड़ी—मारवाड़ी।
- १२—मालवी।

ङ—पहाड़ी वर्ग।
- १३—गढ़वाली—कुमायूंनी।
- १४—हिमाचल प्रदेश की बोलियाँ।

च—मिश्रित वर्ग।
- १५—भीली।
- १६—हलबी (बस्तर प्रदेश की बोली)।

हिंदी प्रदेश की उपर्युक्त समस्त उपभाषाओं में अत्यंत सुंदर लोकसाहित्य सुरक्षित है। इसे अशिक्षित जनता के मौखिक साहित्य की परंपरा कहा जा सकता है। इधर यह संकलित और प्रकाशित किया जा रहा है तथा इसका आलोचनात्मक अध्ययन भी हो रहा है। वास्तव में हिंदी प्रदेश की उपभाषाओं में सुरक्षित जीवित लोकसाहित्य के

संकलन, प्रकाशन और अध्ययन के कार्य को अधिक बड़े पैमाने पर तथा अधिक वैज्ञानिक ढंग से करने की आवश्यकता है। उत्तर प्रदेश सरकार ने इस कार्य के लिए एक 'लोक साहित्य समिति' अवश्य बनाई थी किन्तु अपने देश में अब तक सरकारी समितियों के कार्य के पीछे उत्साह, प्रेरणा और लगन की प्राय: कमी होती है। फलस्वरूप यह समिति अभी तक इस क्षेत्र में कोई विशेष कार्य नहीं कर सकी है। आवश्यकता इस बात की है कि समस्त हिंदी प्रदेश की एक केंद्रीय 'लोक साहित्य समिति' हो और इसकी शाखाएँ उपर्युक्त सोलहों उपभाषाओं के प्रदेशों में होनी चाहिए। इनके केन्द्र इन उपभाषाओं के प्रदेशों के विश्वविद्यालयों के हिंदी विभागों में रक्खे जा सकते हैं। विशेषज्ञ कार्यकर्ताओं, विषय से संबंधित पुस्तकालय तथा अच्छी प्रयोगशाला पर थोड़ा ही व्यय करने से इस प्रकार की व्यवस्था करने के उपरान्त परिणाम बहुत अधिक हो सकता है। उदाहरणार्थ, अवधी उपभाषा तथा लोकसाहित्य का अध्ययन करने के लिए लखनऊ विश्वविद्यालय में, भोजपुरी के अध्ययन के लिए गोरखपुर में, ब्रजभाषा के अध्ययन के लिए आगरा विश्वविद्यालय में, राजस्थानी वर्ग की उपभाषाओं के अध्ययन के लिए राजस्थान विश्वविद्यालय में, 'लोक साहित्य समिति' प्रादेशिक केन्द्र खोल सकती है। एक बार समस्त मौखिक लोकसाहित्य चाहे वह गद्य में हो अथवा पद्य में, टेप पर रिकार्ड कर लिया जाना चाहिए। इसके बाद इसका अध्ययन सुविधानुसार चलता रह सकता है।

हिंदी प्रदेश की उपर्युक्त समस्त उपभाषाएँ लोकभाषा तथा लोकसाहित्य की दृष्टि से तो महत्व रखती ही हैं किन्तु कुछ तो नागरिक साहित्य परंपरा की दृष्टि से भी अत्यंत महत्वपूर्ण रही हैं। ऐसी मुख्य उपभाषाएँ पश्चिमी वर्ग में खड़ीबोली और ब्रजभाषा, पूर्वी वर्ग में अवधी, बिहारी वर्ग में मैथिली तथा राजस्थानी वर्ग में मारवाड़ी हैं। साहित्य में प्रयुक्त होने वाली मध्यकालीन मारवाड़ी को ही डिंगल नाम दे दिया गया था। उपर्युक्त समस्त भाषाओं में प्रधानतया पद्य-साहित्य मिलता है, यद्यपि कुछ साहित्य भी लिखा गया था। हिंदी प्रदेश के मध्ययुगीन साहित्य की मुख्य प्रेरणा धार्मिक थी और उसमें भी भक्ति आंदोलनों के फलस्वरूप अधिकांश साहित्य की रचना हुई। उदाहरणार्थ सधुक्कड़ी खड़ीबोली में लिखने वाले कबीर, ब्रजभाषा में लिखने वाले सूरदास, मारवाड़ी की प्रसिद्ध भक्त गायिका मीरा, अवधी में लिखने वाले जायसी और तुलसीदास, तथा मैथिली में पदरचना करनेवाले प्रसिद्ध संस्कृत लेखक विद्यापति के नामों से समस्त हिंदी संसार अच्छी तरह परिचित है। इन उपभाषाओं की ये साहित्यिक परंपराएँ वर्तमान काल में भी क्षीण रूप में चल रही हैं किन्तु इन समस्त उपभाषाओं के लेखकों की प्रतिभा का मुख्य माध्यम अब साहित्यिक खड़ीबोली हिंदी हो गया है। भारतेन्दु, प्रसाद और प्रेमचन्द की मातृभाषा भोजपुरी थी, महाबीर प्रसाद द्विवेदी, श्रीधर पाठक तथा मिश्रबंधुओं की अवधी थी, पंत की मातृभाषा कुमायूँनी है, मैथिलीशरण गुप्त तथा वृंदावनलाल वर्मा की बुंदेली है, किन्तु इन सबने शिष्ट साहित्य के माध्यम के लिए साहित्यिक खड़ीबोली हिंदी को अपनी रचनाओं के लिए अपनाना उचित समझा।

## हिंदी तथा हिंदी प्रदेश की उपभाषाओं का अन्योन्य संबंध

हिंदी तथा हिंदी प्रदेश की उपभाषाओं के आन्योन्य संबंध के विषय में प्राय: दो

विरोधी विचारधाराएँ मिलती हैं। कुछ लोग ऐसा समझते हैं कि जैसे-जैसे इस प्रदेश में शिक्षा का प्रसार होगा वैसे-वैसे उपभाषाओं को लोग छोड़ते जाएँगे और धीरे-धीरे एक समय ऐसा आवेगा कि एकमात्र साहित्यिक खड़ीबोली हिंदी ही समस्त हिंदी प्रदेश में रह जावेगी और प्रादेशिक उपभाषाएँ लुप्त हो जावेंगी। वास्तव में इतने बड़े प्रदेश में १६ करोड़ जनता के बीच भाषा का एक ही मानक रूप चलना भाषाविज्ञान के सिद्धान्तों के अनुसार संभव नहीं है। संसार के किसी भी अन्य भाग में ऐसा कोई उदाहरण नहीं मिलता है। जिन देशों में साक्षरता लगभग शत प्रतिशत तक है उनमें भी देश के भिन्न-भिन्न भागों में पैतोआस (Potois) अर्थात् प्रादेशिक ग्रामीण बोलियाँ भी बोली जाती हैं। अधिक संभावना यही है कि हिंदी भाषा के शिक्षा, शासन आदि का माध्यम बन जाने से उपभाषाओं पर उसका पर्याप्त प्रभाव पड़ेगा किन्तु कुछ परिवर्तन रूप में ये उपभाषाएँ भी चलती रहेंगी।

एक दूसरी विचारधारा इस प्रकार की भी रही है कि हिंदी प्रदेश की प्रत्येक उपभाषा का अपने प्रदेश में उसी प्रकार उपयोग होना चाहिए और उसका वही स्थान रहना चाहिए जैसे भारत के अन्य भाषा-प्रदेशों में उस प्रदेश की भाषा का है। दूसरे शब्दों में भारतीय विधान में १४प्रतिनिधि भाषाओं के स्थान पर १४+१६ अर्थात् ३० भाषाएँ स्वीकृत होनी चाहिए। इस प्रकार का आन्दोलन हिंदी प्रदेश में पूर्वी तथा पश्चिमी सीमान्त प्रदेशों, अर्थात् मिथिला और मारवाड़ से प्रारम्भ हुआ था। कुछ अन्य भाषा-भाषी भी जिनके भाषा-परिवार एक अथवा अधिक से अधिक दो-तीन भाषा-इकाइयों के हैं हिंदी प्रदेश की १६ उपभाषाओं का विशाल सम्मिलित परिवार देख नहीं पाते और वे हिंदी प्रदेश के इस विचारधारा रखने वाले वर्ग को बराबर प्रोत्साहित करते रहे हैं। भोजपुरी आदि कई उपभाषा प्रदेशों के लोगों को यह समझाया गया कि सम्मिलित भाषा परिवार में तुम्हें कष्ट ही होगा, दब कर रहना पड़ेगा, अत: अपना घर अलग क्यों नहीं कर लेते। लोकगीत, लोककथाएँ अथवा काव्यरचना की बात भिन्न होती है किन्तु व्यावहारिक दृष्टि से हिंदी प्रदेश की समस्त १६ उपभाषाओं में ज्ञान-विज्ञान से संबंधित असीम आधुनिक साहित्य विकसित करना सरल नहीं है। इसमें जितनी जन-शक्ति और धनशक्ति लगेगी और जितना समय लगेगा उस पर विस्तार से विचार नहीं किया गया है। हिंदी को सम्मिलित शक्ति से विकसित करने में सबका हित है।

वास्तव में उचित मार्ग मध्य का है, और उसी का अनुसरण करना श्रेयस्कर होगा। प्रत्येक उपभाषा को अपने प्रदेश में बने रहने और विकसित होने के संबंध में कोई भी बाधा नहीं होनी चाहिए। उसके लोकसाहित्य तथा शिष्ट साहित्य की पूर्ण रक्षा होनी चाहिए। उसका संकलन होना चाहिए, अध्ययन होना चाहिए और पठनपाठन के पूर्ण सुभीते होने चाहिए। किन्तु हिंदीप्रदेश के राज्यों, कचहरियों तथा हाईकोर्ट आदि में शासन की भाषा के रूप में, स्कूल कालेज तथा विश्वविद्यालयों में शिक्षा के माध्यम के रूप में, तथा पत्र-पत्रिकाओं की प्रधान भाषा के रूप में केवल हिंदी ही को चलाना उचित और हितकर है। दूसरे शब्दों में भाषा संबंधी जो स्थिति आज चल रही है उसी को सुदृढ़ करने का यत्न होना चाहिए।

यदि भारतवर्ष में पुराने इतिहास को देखा जावे तो मध्यदेश में इस प्रकार की भाषा संबंधी स्थिति सदा से चलती आई है। वैदिक काल से अपभ्रंश काल तक इस प्रदेश में अनेक प्रादेशिक भाषारूप रहे, साथ ही इन रूपों में से एक को समस्त मध्यदेश की प्रतिनिधि भाषा के रूप में भी माना जाता रहा। भिन्न-भिन्न कालों में वैदिक भाषा, संस्कृत, पाली, शौरसेनी प्राकृत तथा अवहट्ठ इसी प्रकार के प्रतिनिधि भाषा रूप थे। यहाँ तक कि सुल्तानों और मुगलों के साम्राज्यकाल तक में हिंदीप्रदेश की जनता की प्रतिनिधि व्यापक साहित्यिक भाषा एक ब्रज भाषा ही थी। यह भी ऐतिहासिक सत्य है कि मध्यदेश की यही प्रतिनिधि साहित्यिक भाषा समस्त भारतवर्ष की भी प्रतिनिधि साहित्यिक भाषा रही है। वैदिक भाषा, संस्कृत, पाली, शौरसेनी प्राकृत, अवहट्ठ तथा ब्रजभाषा मध्यदेश की प्रतिनिधि भाषाएँ होने के साथ-साथ समस्त भारतवर्ष की भी अपने-अपने काल में प्रतिनिधि भाषाएँ रही हैं। इसी प्रकार आधुनिक काल में खड़ी बोली साहित्यिक हिंदी, हिंदी प्रदेश की मुख्य भाषा होने के साथ समस्त देश की भी राजभाषा स्वीकृत हो चुकी है।

संक्षेप में यह कहा जा सकता है कि हिंदीप्रदेश की मिलती-जुलती १५, १६ उपभाषाओं का एक सम्मिलित भाषा-परिवार है जिसमें आधुनिक काल में स्वयं परिवार के सदस्यों ने साहित्यिक खड़ीबोली हिंदी को इस परिवार के मुखिया के रूप में चुन लिया है। हिंदी भाषा इस प्रकार इस सम्मिलित परिवार की प्रतिनिधि भाषा मात्र है। इस भाषा परिवार के प्रत्येक अन्य सदस्य का अपना व्यक्तित्व है तथा अपने क्षेत्र में उसका अपना स्वतंत्र स्थान है। जिस प्रकार भारतवर्ष के १३ भाषा प्रदेशों में अन्तर्राज्य तथा केन्द्रीय कार्यों के लिए हिंदी को राजभाषा के रूप में चुन लिया गया, ठीक इसी प्रकार छोटे पैमाने पर हिंदी प्रदेश के इन १६ उपभाषाओं के प्रदेशों ने भिन्न-भिन्न उपभाषाएँ बोलने वालों के अन्योन्य व्यवहार के लिए तथा समस्त हिंदी प्रदेश की उपभाषाओं के रूप में भी हिंदी को चुन लिया है। ऊपर दिये हुए तर्कों का सार निम्नलिखित है।

१. "हिंदी भाषा" शब्द का अर्थ अब हमें विधान के अनुसार मानना चाहिए, अर्थात् साहित्यिक खड़ीबोली। अन्य अर्थों में अब हिंदी शब्द का प्रयोग नहीं करना चाहिए इससे भ्रम पैदा होता है।

२. हिन्दी भाषा का प्रदेश भी हमें विधान के अनुसार ही मानना चाहिए, अर्थात् भारतवर्ष के राज्यों में बिहार, उत्तरप्रदेश, मध्यप्रदेश, राजस्थान, दिल्ली, पूर्वी पंजाब तथा हिमांचल प्रदेश की मुख्य भाषा हिंदी है।

३. इस हिंदी प्रदेश में लगभग १६ उपभाभाएँ भी हैं। उन्हें "हिंदी की बोलियाँ" न कहकर—क्योंकि ऐसा कहना अवैज्ञानिक है—"हिंदी प्रदेश की उपभाषाएँ"—कहना चाहिए। अपने अपने प्रदेश में इनका पूर्ण महत्व और विशेष स्थान रहा है और भविष्य में भी रहगा।

४. हिंदी तथा हिंदी प्रदेश की उपभाषाओं में वैर-भाव अथवा प्रतियोगिता की भावना नहीं होनी चाहिए। भारतवर्ष में हिंदी का विशेष महत्व इन १६ उपभाषाओं और इन उपभाषाओं के बोलने वालों के प्रतिनिधि होने के कारण ही है। साथ ही इन उपभाषाओं को बोलने वाली जनता का भी भारतवर्ष में और विदेशों में विशेष आदर और गौरव हिंदी को अपनी प्रतिनिधि भाषा मानने के कारण है। उदाहरण के लिए आज एक गढ़वाली अपने को १६ करोड़ जनता वाले प्रदेश का सदस्य कहता है। यदि कल को गढ़वाल एक पृथक् राज्य बन जाता है तो वह लगभग केवल १० लाख जनसंख्या वाले राज्य का व्यक्ति रह जावेगा और उसके अनुसार ही उसकी शक्ति कूती जावेगी।

डा० विश्वनाथ प्रसाद

# दृश्य-श्रव्य भाषा-शिक्षण में अप्रक्षेपणीय प्रणालियों का महत्त्व

भाषा एक सामाजिक व्यवस्था है, जिसे उन परिस्थितियों के संदर्भ से अलग नहीं किया जा सकता, जिनमें उसका व्यवहार होता है। मानवीय संबंधों और गतिविधियों के लिये कोई जनसमुदाय जिन विशिष्ट ध्वनियों का उच्चारण करने का अभ्यस्त होता है, वे विशिष्ट प्रसंगों और परिस्थितियों से संबद्ध होकर ही विशिष्ट अर्थ अर्जित करती हैं। पाणिनि तथा पतंजलि ने भाषा के इस रूप पर विशेष बल दिया है। पतंजलि ने स्पष्ट शब्दों में कहा है:—

"सिद्धे शब्दार्थसंबंधे लोकतोऽर्थप्रयुक्ते शब्दप्रयोगे शास्त्रेण धर्मनियमः।"

अर्थात् जनसाधारण में प्रचलित अर्थ के आधार पर ही शब्दों का प्रयोग निर्धारित होता है। यहाँ भर्तृहरि का उद्धरण देने का लोभ मैं संवरण नहीं कर सकता—

"वाक्यात्प्रकरणादर्थादौचित्याद्देशकालतः।
शब्दार्थाः प्रविभज्यन्ते न रूपादेव केवलम्।" (वाक्यपदीय: २, २, ३१६)

अर्थात् यह धारणा भ्रामक है कि किसी उच्चारण के अर्थ का स्वरूप उसके 'रूप' में ही निहित रहता है। वास्तव में समस्त भाषागत सामग्री उन शब्दों में वास करती है, जिन्हें कोई व्यक्ति यथार्थ जीवन में सामान्य कार्य या सामाजिक संबंध के लिये किसी विशेष परिस्थिति में दूसरे व्यक्ति के साथ काम में लाता है।

प्रसिद्ध नृ-तत्व-विज्ञानी जी० मैलिनोव्स्की ने प्रशांत महासागर में टॉब्रियंड द्वीप के आदिवासियों के संबंध में स्वयं व्यावहारिक अनुभव प्राप्त करके जब वैज्ञानिक ढंग से ये विचार प्रस्तुत किये तो भाषा और उसके सिद्धांतों के अध्ययन में एक सुस्पष्ट आधुनिक सीमाचिह्न-सा खिंच गया। उन्होंने इस बात की पुष्टि की कि केवल शब्द और व्याकरण सीखने से काम नहीं चल सकता। किसी भाषा के शब्दों और वाक्यों की पूरी अर्थवत्ता को आत्मसात् करने के लिये सांस्कृतिक और मनोवैज्ञानिक पृष्ठभूमि का ज्ञान बहुत आवश्यक है। यदि इसकी थोड़ी जानकारी न हो तो यह

भाषा सीखने में बहुत बड़ी बाधा है। कोई भाषा चाहे प्राचीन हो चाहे आधुनिक, उसे सीखना प्रारम्भ करने से पहले विद्यार्थी को पृष्ठभूमि के रूप में देश, उसकी संस्कृति, उसके इतिहास और सभ्य संसार में उसके स्थान का कुछ ज्ञान होना चाहिये। नये शिक्षार्थी के लिये दूसरी आवश्यकता यह है कि अपने अध्ययन के प्रथम स्तर पर वह जीवन की सामान्य परिस्थितियों में व्यवहार करने की क्षमता प्राप्त कर ले, और यह तभी संभव है जब वह स्वयं उन परिस्थितियों में रहता हो।

जहाँ तक मातृ-भाषा का संबंध है, इस शर्त की पूर्ति सहज ही हो जाती है। शिशु जिस भाषा के बोलने वालों के बीच रहता है उसे शीघ्र और सरलतापूर्वक अपनी माँ तथा आया से बातचीत करके और तनिक बड़ा होने पर परिवार के सदस्यों, पड़ोसियों तथा विशेषतः अपने मित्रों के संपर्क से सीख जाता है; किन्तु कोई अपरिचित अथवा विदेशी भाषा सीखते समय ऐसा अनुकूल वातावरण नहीं मिल पाता। विद्यार्थी, चाहे वह स्त्री हो या पुरुष, युवा हो अथवा प्रौढ़, किसी एक भाषा से पहले से ही परिचित रहता है। उसका मस्तिष्क उस पूर्वपरिचित भाषा के शब्दों, मुहावरों और कहावतों से भरा रहता है, जो नई भाषा ग्रहण करने में बाधा ही उपस्थित करते हैं। इसलिये तुरंत वांछित सफलता के लिये ऐसी स्थितियों के निर्माण की आवश्यकता होती है, जिनमें मनोवैज्ञानिक बाधाओं और उलझनों को नियंत्रित किया जा सके तथा देखने, सुनने और अनुकरण के प्रचुर अवसर प्रदान किये जा सकें।

प्रश्न यह है कि उपर्युक्त वातावरण सर्वोत्तम रूप में किस प्रकार प्राप्त हो। निश्चय ही इसके लिये विद्यार्थी को उस देश या भाग में जाना पड़ेगा, जहाँ की भाषा वह सीखना तथा पढ़ना चाहता है। यूरोप में इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए अन्तर्महाद्वीपीय यात्रा की जाती थी, जिसे 'फ़िनिशिंग' कहते थे। फ्रेन्च, जर्मन, इटाली, स्पेनी आदि अंतर्महाद्वीपीय भाषाओं में से एक या एकाधिक के अध्ययन को 'फिनिश' अर्थात् पूरा करने के लिये संपन्न विद्यार्थी विदेश भेज दिये जाते थे। प्रतिभाशाली एवं समृद्ध विद्यार्थी राजनैतिक, व्यापारिक तथा अन्य महत्वपूर्ण पदों की तैयारी करने के लिये आज भी यही मार्ग अपनाते हैं। अपने देश में तीर्थ-यात्राओं से देश के सुदूर भागों में रहने वालों को देश के कोने-कोने से आकर मिलने-जुलने के ऐसे ही अवसर प्राप्त होते थे। पूर्व में जगन्नाथपुरी से पश्चिम में द्वारिकापुरी तक और उत्तर में कैलास, बद्रीनाथ तथा गंगोत्तरी से दक्षिण में रामेश्वरम्, कन्याकुमारी तथा कांची तक के लोग विभिन्न प्रांतों की भाषाओं और बोलियों से परिचित हो जाते थे। इस प्रकार ऐसी परिस्थितियाँ अपने आप ही उत्पन्न हो गई थीं कि एक दूसरे की भाषा बोलने और समझने की प्रवृत्ति जाग्रत् हो गई, जिसके फलस्वरूप अपने आप हिंदी-जैसी एक सामान्य भाषा का विकास होने लगा।

अभी हाल में आपने शिक्षा-क्षेत्र में हुए अभूतपूर्व प्रयोग 'क्लासरूम आन विंग्स, के विषय में सुना होगा। कुछ दिन पूर्व समाचार-पत्रों में छपा था कि इंटरनेशनल स्कूल आफ अमेरिका, जिसका अधिकांश संगठन हार्वर्ड में शिक्षा-प्राप्त उसके संचालक कार्ल-जंगर ने किया है, कलकत्ते में थोड़ा ठहरने के बाद १६ दिसम्बर को नई दिल्ली आ रहा है। संयुक्त राज्य अमेरिका के कैम्ब्रिज नामक नगर में 'ब्रेटिल इन' में स्थित इस स्कूल

के अट्ठारह से बाईस वर्ष तक की आयु के २२ विद्यार्थी तथा ५ अध्यापक एक निश्चित पाठ्य-क्रम के अनुसार यह यात्रा कर रहे हैं। पाठ्य-क्रम में पुस्तकों के अतिरिक्त आठ महीने के विश्व-भ्रमण में तेरह देशों की क्षेत्रीय-यात्राओं के अध्ययन की व्यवस्था है। ये विद्यार्थी कलाओं तथा समाज-विज्ञान का अध्ययन करेंगे और तदुपरांत १७-१८ मई को लंदन में अंतिम परीक्षा देंगे।

भाषा सीखने के लिये ऐसी यात्राएँ आदर्श हैं। इस बात की बड़ी आवश्यकता है कि अपने देश में भी शिक्षा-संस्थाओं को छात्रवृत्तियाँ और अनुदान मिलें, जिससे योग्य विद्यार्थी देश के एक भाग से दूसरे भाग में जा सकें और उनकी सामाजिक तथा सांस्कृतिक व्यवस्थाओं की पृष्ठभूमि में प्रमुख भाषाएँ सीख सकें। परंतु अधिकांश भाषा-शिक्षार्थियों के लिये हमें उनके निवास-स्थान पर ही ऐसी परिस्थितियाँ उत्पन्न करनी होंगी, जो वास्तविक भाषा-प्रदेशों की परिस्थितियों के अधिक से अधिक अनुरूप हों। मातृभाषा में भी विद्यार्थी बड़ी तीव्र गति से उन्नति कर सकता है, यदि उसका अध्ययन पाठ्य-पुस्तकों तक ही सीमित न रखकर, उसे विभिन्न परिस्थितियों से गुज़रने और उनमें व्यवहार करने के लिये प्रोत्साहित किया जाय, यहाँ तक कि उन परिस्थितियों का क्षत्र शिक्षार्थी के वास्तविक जीवन और व्यवसाय की आवश्यकताओं की पूर्ति के निमित्त पर्याप्त रूप से विस्तृत हो जाय। इस ढंग से विद्यार्थी जल्दी और ठीक-ठीक भाषा सीख सकेगा।

इस 'परिस्थिति-पद्धति' (Situation Method) के संबंध में यह अनुभव किया गया है कि भाषा-शिक्षण में प्रभविष्णुता की दृष्टि से रूप के तथा क्रिया और ध्वनि अर्थात् वाणी के संयोजन से बढ़कर और कोई प्रणाली नहीं हो सकती। इसी विचार को ध्यान में रखकर प्रोफेसर वियेटर ने सन् १८८२ में 'प्रत्यक्ष-प्रणाली' (Direct Method) का प्रतिपादन किया था। यह कहने के बजाय कि हिन्दी 'कुत्ता' या अँग्रेजी 'डॉग' के लिए फ्रेन्च शब्द 'लाशिएँ' (la chien) और संस्कृत शब्द 'श्वन्' है, यह अधिक अच्छा होगा कि उस पशु (या उसके चित्र) की ओर संकेत कर दिया जाय और 'लाशिएँ' अथवा 'श्वन्' शब्द का उच्चारण किया जाय। अनुभव में यह पाया गया है कि पहले स्तर पर उन वस्तुओं की एक सूची बना लेना सर्वोत्तम है, जो शिक्षार्थी की संभावित परिस्थिति में उपयोगी समझी जाती हों और देखने या स्पर्श करने के लिये उनकी व्यवस्था कर दी जाय। लिखित रूपों से सीखने के बजाय संबंधित पदार्थों को देखकर या छूकर शब्द याद करना अच्छा है। किन्तु संभव है कि सभी पदार्थ सुलभ न हों। इसलिए कुशल अध्यापकों को "ब्लैकबोर्ड" (काले तख्ते) की बहुत आवश्यकता पड़ती है, क्योंकि उस पर चित्र ही अंकित नहीं किये जा सकते, अपितु अमूर्त भावों को भी रेखाचित्रों के द्वारा व्यक्त किया जा सकता है। इस प्रकार श्रोताओं को शब्दों के अर्थ तथा उनके सन्निधान हृदयंगम करने में बड़ी सुविधा होती है।

सहायक चित्र, व्यंग्य-चित्र, आदर्श-चित्र, मानचित्र, रेखाचित्र, खिलौने आदि सभी परिस्थितियों के निर्माण में महत्वपूर्ण योग देते हैं और वातावरण में रुचि उत्पन्न करते हैं। इससे हमारी दृष्टि की स्मरण-शक्ति को भाषायी सामग्री की पृष्ठभूमियों को ग्रहण करने में सहायता मिलती है।

निश्चय ही बोलते चित्र अथवा सिनेमा, रेडियो और टेलिविज़न आजकल शिक्षार्थी की ग्रहण-शक्ति को विकसित करने के सर्वाधिक प्रभावशाली दृश्य-श्रव्य सहायक हैं—इनसे भाषा की 'स्वानुभूति' प्राप्त होती है। कतु चिलचित्र प्रक्षेपणीय प्रणालियों के अन्तर्गत आते हैं और इसलिए यहाँ हमारी विषय-सीमा के बाहर हैं। वास्तव में चलचित्र और टेलिविज़न वैज्ञानिक दृष्टि से चाहे जितने उपयोगी हों, भारत जैसे निर्धन देश के लिए व्यापारिक दृष्टि से अलाभकर और अभी हमारे साधनों से परे हैं।

प्रसन्नता की बात है कि भाषा-शिक्षण में जो शक्ति और संभावनाएँ चलचित्र में हैं, वे खूबियाँ नाटकों में भी हैं। नाट्याभिनय में हमारी आँखें, हमारे कान और हमारी अधिकांश चेतनाएँ कल्पनाओं सहित नृत्यानुभूति में प्रमुख भाग लेने लगती हैं। जिस छात्र को भाषा का बहुत कम ज्ञान है वह भी उच्चारण, गति और लय तथा विभिन्न परिस्थितियों के योग्य शब्दों को ग्रहण और अर्जन करने में समर्थ हो जाता है। इससे भाषा-शिक्षार्थी की अभिरुचि और साधना को अद्भुत बल मिलता है। भाषानुभूति चलचित्र से अधिक नाटक द्वारा संभव है। अब जब कि भारत में प्रादेशिक भाषाएँ शिक्षा, प्रशासन और न्यायपालिका की माध्यम बनने जा रही हैं, कितना अच्छा हो कि हिन्दी—जैसी अखिल भारतीय भाषा की, जो केन्द्र की राजभाषा है, तथा अन्य प्रमुख प्रादेशिक भाषाओं की भ्रमणशील-मंडलियाँ बनाई जायँ, जो व्यवस्थित रूप से देश के कोने-कोने में जाकर स्थान-स्थान पर अपनी-अपनी मातृभाषा में नाटक प्रदर्शन करें। इसे भारत की राष्ट्रीय शिक्षा के पुनर्गठन और पुनर्निर्माण का एक महत्वपूर्ण भाग समझा जाना चाहिए। अभी हाल में ही विलायत की कुछ उत्साही और साहसी नाटक-मंडलियाँ भारत आई थीं, जिन्होंने हमारे देश में अपने रंगमंच के कुछ सर्वोत्कृष्ट अँग्रेजी नाटक प्रस्तुत किये थे। इनसे हमें जो सुखद अनुभव हुआ, उसका अत्यंत अल्प और अप्रत्यक्ष अंश ही हमें उन नाटकों को पढ़ने से उपलब्ध हो सकता था। वास्तव में देशी-विदेशी कोई भी भाषा सीखने में नाटक सर्वाधिक मनोरंजक साधन हैं।

दृश्य-श्रव्य प्रणाली के रूप में नाटक से एक बहुत अच्छा लाभ यह है कि थोड़ी बहुत भाषा सीख लेने के बाद, या यों कहें कि भाषा की नींव पड़ जाने के बाद छोटे और बड़े शिक्षार्थी सभी एकत्र होकर स्वयं रंगमंच पर उतर सकते हैं और अपनी सीखी हुई भाषा का कोई सरल नाटक प्रस्तुत कर सकते हैं। इस संबंध में मेरा अपना अनुभव यह है कि उपयुक्त नाटक खेलने की इस प्रक्रिया को अपनाने से जो आनंद मिलता है और संबंधित भाषा की अभिव्यक्ति में जो प्रभाव और शक्ति आती है, वह किसी अन्य ढंग से नहीं। इस प्रणाली से भाषा के नये विद्यार्थी भी लाभान्वित होते हैं। यह बहुत अच्छा अभ्यास है और स्कूलों, कालेजों तथा विश्वविद्यालयों में इसे पूरा-पूरा प्रोत्साहन मिलना चाहिए।

नाटक का भाषा-शिक्षण की प्रत्येक योजना से घनिष्ठ संबंध है। ब्रिटेन तथा अमेरिका में इस प्रकार की सुप्रतिष्ठित गोष्ठियाँ और संस्थाएँ हैं, जो भाषण और नाटक की शिक्षा देती हैं, जैसे इनकार्पोरेटेट एसोशिएशन आफ टीचर्स आफ स्पीच ऐण्ड ड्रामा, ब्रिटिश ड्रामा लीग आदि। इनमें डिग्री कोर्स के समकक्ष पाठ्य-क्रम हैं, जिनमें विद्यार्थियों एव अध्यापकों को कक्षा में, रंग-मंच और व्याख्यान-मंच पर वाणी के व्यवहार की

शिक्षा दी जाती है और प्रत्येक शिशु की शिक्षा के अनिवार्य अंग के रूप में यह सिखाया जाता है कि साधारण बात-चीत, समझाने-बुझाने, व्याख्या करने तथा व्यक्तिगत और सार्वजनिक क्षेत्र की विविध गतिविधियों में मुद्रित भाषा के सजीव रूप को प्रस्तुत करने के लिए वाक्शक्ति और विचारों की मौखिक अभिव्यक्ति का सुचारु प्रयोग किस प्रकार किया जा सकता है।

अपने हिन्दी तथा भाषाविज्ञान विद्यापीठ में हमने एम. ए. (भाषाविज्ञान) तथा एम. ए. (हिन्दी-विशेष) के जो पाठ्य-क्रम निर्धारित किये हैं, उनमें शैक्षिक तथा प्रयोगात्मक स्तर पर इन उद्देश्यों की सिद्धि के लिये कुछ वैकल्पिक विषयों की व्यवस्था की है। इनमें एक प्रश्न-पत्र नाटक तथा रेडियो-नाटक आदि में भाषा के प्रयोग से संबंधित है।

नाटकों के बाद दूसरा महत्वपूर्ण स्थान ग्रामोफोन रेकार्डों का है। भाषा-शिक्षण के लिये रेकार्ड अनिवार्य-से हैं। यह ठीक है कि रेकार्ड कभी अध्यापक का स्थान नहीं ले सकते, क्योंकि अध्यापक विद्यार्थी का ध्यान उसकी उन त्रुटियों की ओर आकर्षित करता है, जिन्हें प्रायः वह स्वयं नहीं जान पाते। फिर भी रेकार्ड अध्यापक के कार्य में अपना योगदान कर सकते हैं और उसका बहुत सा परिश्रम बच जासकता है। इसके अतिरिक्त रेकार्डों से एक लाभ यह भी है कि विद्यार्थी अपने अवकाश के क्षणों में उन्हें सुविधानुसार बार-बार बजा सकता है। इस प्रकार वह नित्य ही थोड़ा समय उच्चरित भाषा को दे सकता है और उसे पाठ्य-पुस्तकों की लिखित भाषा तक ही सीमित नहीं रहना पड़ता। वह ध्वनियों को पहचानना सीखता है, अपनी शब्दावली और अन्य सामग्री की वृद्धि करता है तथा किसी अच्छे वक्ता या वक्ताओं की उच्चरित भाषा को सुनने का लाभ भी उसे मिलता है। शुषिर-सूचक (Groove indicater) नामक यंत्र की सहायता से शिक्षार्थी रेकार्ड के उन भागों पर ध्यान केन्द्रित कर सकता है, जिसमें उसे अधिक कठिनाई होती हो। लिंग्वाफोन रेकार्डों तथा सुनियोजित पाठ्य-सामग्री से युक्त कई अन्य रेकार्डों का उपयोग आज संसार-भर में हो रहा है। हमारे विद्यापीठ में फ्रेञ्च और जर्मन के शिक्षण में इनका उपयोग करके लाभ उठाया जा रहा है। ग्रामोफोन का एक उपयोग यह भी है कि सीखनेवाले विद्यार्थी की भी ध्वनियों को रेकार्ड किया जा सकता है। अपने विद्यापीठ में हमने इसकी भी व्यवस्था की है। शिक्षाविदों को, मुख्यतः उन लोगों को जिनका संबंध शिक्षकों के प्रशिक्षण से है, इस विषय पर अधिक ध्यान देने की आवश्यकता है। लंदन में एक दर्शक के रूप में मुझे एक ऐसी कक्षा में बैठने का अवसर प्राप्त हुआ था, जिसमें ब्रिटिश तथा अन्य विदेशी विद्यार्थियों को हिन्दुस्तानी पढ़ाई जा रही थी। कुछ पाठों का अभ्यास कर लेने के बाद प्रत्येक विद्यार्थी की आवाज को रेकार्ड कर लिया जाता था और फिर बोलने के तुरंत बाद पश्चाद्वाद्य (Play-back) यंत्र से उसे सुना जाता था। ये रेकार्ड इस बात का परिचय देने के लिए रक्खे रहते थे कि प्रारंभिक स्थिति से लेकर अंत तक विद्यार्थी ने किस प्रकार क्रमशः उन्नति की। यह एक बहुत बड़ी समस्या है कि हम "अपने आपको उसी रूप में सुन सकें, जैसे लोग हमें सुनते हैं।" परंतु अच्छे पश्चाद्वाद्य–ग्रामोफोन हमारे श्रोता-रूप को हमारे वक्ता-रूप

से पृथक् करके अलग प्रतिष्ठित कर देता है और हम तटस्थ रहकर अपनी आवाज़ सुन सकते हैं। इस प्रकार अध्यापक का बार-बार त्रुटियों की ओर अथवा उच्चारण-भेद की ओर संकेत करने का कार्य सरल हो जाता है और व्यक्तिगत भी नहीं रहता। इस ढंग से विद्यार्थी स्वयं अपनी त्रुटियों को जान सकता है, और अधिक सरलतापूर्वक उनका सुधार कर सकता है। निश्चय ही भाषा-शिक्षण में रेकार्डों की इसी अद्वितीय उपादेयता को ध्यान में रखकर लायड जेम्स ने कहा है, "आजकल ग्रामोफोन के बिना कोई विदेशी भाषा सीखना वैसा ही है, जैसे परीक्षण-नली (Test tube) के बिना रसायन-शास्त्र सीखना।"

यहाँ मैं दृश्य-श्रव्य प्रणाली द्वारा शिक्षण के लिए निर्मित एक मनोरंजक यंत्र का उल्लेख करना चाहता हूँ, जो अभी हाल ही में बाज़ार में आया है। इस यंत्र का निर्माण अमेरिका की मैक्ग्रॉ-हिल-बुक-कंपनी ने किया है। इस यंत्र में ध्वनि-रेकार्ड करने के लिए एक फीता होता है तथा विभिन्न प्रकार के कार्ड होते हैं। एक सेट के अन्दर लगभग २०० कार्ड रहते हैं, जो भाषा की वृद्धि, श्रौत-विस्तार, शब्द-चित्र-लेख, बलाघात और स्वर-लहर-प्रारूप तथा औद्योगिक शब्दावली के लिये उपयोगी होते हैं। संशोधनार्थ पठन और भाषण के लिये ध्वनि-वैज्ञानिक कार्ड भी होते हैं। जैसे ही किसी कार्ड को अंदर लगाया जाता है, वैसे ही उस पर लिखा हुआ वाक्य, वाक्यांश या शब्द सुनाई देता है।

भाषा का आरंभिक आधार दृढ़ होने के बाद अपनी रुचि की भाषा रेडियो द्वारा सुनकर विद्यार्थी स्वयं अपने उच्चारण को सुधार सकता है और अधिक ज्ञानार्जन कर सकता है। प्रारंभिक स्तर पर विद्यार्थी सरल और सीधी भाषा में प्रसारित किये जाने वाले समाचारों को सरलता से समझ सकता है। इससे विद्यार्थी को दैनिक व्यवहार की शब्दावली सीखने में सरलता होगी, क्योंकि उसमें ऐसी शब्दावली का ही प्रयोग होता है। कुछ उन्नति कर लेने के बाद वार्ताओं एवं अन्य प्रसारित प्रोग्रामों से लाभ उठाया जा सकता है। यद्यपि रेडियो सुनते समय हमारी एक ही इन्द्रिय—श्रवणेन्द्रिय क्रियाशील रहती है तथापि आवाज़ का कलात्मक प्रयोग श्रोताओं की कल्पना को जाग्रत् कर देता है, जो निस्सीम प्रदेश में विचरण करती हुई, उनके सामने वर्णित विषय के अदृष्ट पदार्थों को प्रस्तुत करती चलती है; कथानकों या विचारों का विकास उनके सामने ही होता प्रतीत होता है और पात्रों के विचारों के हृदयंगम करने में भी श्रोताओं को कठिनाई नहीं होती। रेडियो-कार्यक्रम प्रायः संबंधित भाषाओं को ठीक-ठीक बोलने वालों द्वारा ही प्रस्तुत किये जाते हैं। अतः ठीक ढंग से उपयोग करने पर भाषार्जन तथा उच्चारण-ज्ञान और ध्वनि-विज्ञान के संशोधन के लिये रेडियो अल्पतम व्यय-साध्य और अधिकतम शिक्षाप्रद सहायक सिद्ध हो सकता है।

किन्तु इस सबके बीच अध्यापक अथवा गुरु का स्थान सर्वोच्च है। गुरु ही सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण है। गुरु ही वह धुरी है, जिसके चारों ओर ये सारी प्रणालियाँ घूमती रहती हैं। गुरु ही अपने आपको इन प्रणालियों में प्रक्षिप्त करके उन्हें अर्थ और सौंदर्य की शक्ति प्रदान करता है। वास्तव में सफलता के लिये चलते हुए अपने संघर्षों और अभावों के बीच व्याकुल एकलव्यों द्वारा निरन्तर खोजी जाती हुई गुरु की ही मूर्ति, गुरु की ही अदृश्य सत्ता का, इन दृश्य-श्रव्य विधानों द्वारा, प्रत्यक्षीकरण होता है।

"तस्मै वै गुरवे नमः।"

देवीशंकर द्विवेदी

# बैसवाड़ी के संज्ञार्थक प्रातिपदिक

सूचना :—

(१) सुबोधता के लिए प्रस्तुत विश्लेषण में प्रातिपदिकों के स्थान पर पदों के उदाहरण लिये गये हैं। किन्तु वस्तुत: हमारा विषय प्रातिपदिकों से ही संबंधित है, पदों से नहीं। इसीलिए वचन और कारक की विभक्तियों के योग से बने अन्य पदों का समावेश हम यहाँ नहीं कर रहे हैं।

(२) 'संज्ञार्थक' शब्द का प्रयोग 'नामिनल' के लिए और 'प्रातिपदिक' का 'स्टेम' के लिए हुआ है।

(३) आगे जहाँ कहीं 'सक्सेना' का उल्लेख किया गया है, वहाँ मेरा तात्पर्य डा० बाबूराम सक्सेना की पुस्तक 'एवोल्युशन ऑव अवधी' से है।

(४) ‿ चिन्ह मात्रा की ह्रस्वता सूचित करने के लिए व्यवहृत हुआ है।

## १. सारणी

| १ | २ | | ३ | | ४ | |
|---|---|---|---|---|---|---|
| | अनादरार्थक | आदरार्थक | अनादरार्थक | आदरार्थक | अनादरार्थक | आदरार्थक |
| उजर<br>उजरि | उजरका<br>उजरकी | —<br>— | उजरकवा<br>उजरकई<br>उजरकेवा | उजरकऊ<br>उजरकेऊ | उजर-कउना<br>— | उजरकउनू<br>— |
| कार<br>कारि | करक्का<br>करक्की | —<br>— | कर (क‿क्क)वा<br>कर (क‿क्क)ई<br>कर(के‿क्के)वा | कर (क‿क्क)ऊ<br>कर (के‿क्के)ऊ | करकउना<br>— | करकउनू<br>— |
| नीक<br>नीकि | —<br>— | —<br>— | निक्कवा<br>निक्कई<br>निक्केवा | निक्कऊ<br>निक्केऊ | निक्कउना<br>— | निक्कउनू<br>— |

| १ | २ | | ३ | | ४ | |
|---|---|---|---|---|---|---|
| | अनादरार्थक | आदरार्थक | अनादरार्थक | आदरार्थक | अनादरार्थक | आदरार्थक |
| कल्लू[1] | — | — | कलुवा | — | कलोना | कलोनू |
| कलुई | — | — | कलुइया | — | — | — |
| बूढ़ | — | — | बुढ़वा | बुढ़ऊ | बुढ़उना | बुढ़उनू |
| बूढ़ा / बुढ़िया } | — | — | बुढ़ेवा | बुढ़ेऊ | — | — |
| लरिका | — | — | लरिकवा | लरिकऊ | लरिकउना | लरिकउनू |
| लरिकनी | — | — | — | — | — | — |
| मनई | — | — | मनैवा | मनैयू | मनइना | मनइनू |
| मेहेरिया | — | — | मेहरेवा | मेहरेऊ | — | — |
| बेटा / बेट्टा } | — | — | बेटवा | — | बटउना | बेटउनू |
| बिटिया | — | — | बिटेवा | बिटेऊ | बिटेउनी | — |
| कहार | — | — | कहरवा | कहरऊ | — | — |
| कहारिनि | — | — | कहन्नेवा | कहन्नेऊ | — | — |
| नाऊ | — | — | नउवा / नउनवाँ } | नउनऊँ | नउवहना | नउवहनू |
| नाउनि | — | — | नउनेवाँ | नउनेऊँ | — | — |
| घोड़ा | — | — | — | — | घोड़उना | घोड़उनू |
| घोड़ी | — | — | घोड़ेवा | घोड़ेऊ | — | — |
| पिल्ला | — | — | पिलूवा | पिल्लू | पिलउना | पिलउनू |
| पिलिया | — | — | पिल्लेवा | पिल्लेऊ | — | — |
| — | — | — | पड़वा | पड़ऊ | पड़उना | पड़उनू |
| पड़िया | — | — | पड़ेवा | पड़ेऊ | — | — |
| सार[2] | — | — | — | सरऊ | — | सरउनू |

१. यह प्रातिपदिक वैकल्पिक रूपों में भी प्राप्त होता है, जिसका दूसरे स्तम्भ में 'कलुट्टा' या 'कलूटा' अनादरार्थक रूप मिलता है। तीसरे स्तंभ में इसके रूप 'कलुट्टवा' और 'कलुट्टऊ' तथा चौथे स्तंभ में 'कलुट्टउना' और 'कलुट्टउनू' होंगे।

२. इसे गाली के शब्द के रूप में लिया गया है, संबंध के शब्द के रूप में नहीं। गाली में इसका स्त्रीलिंग रूप प्रचलित नहीं है।

## २. प्रातिपदिकों की प्रवृत्ति

### २·१ सारणी के अनुसार

(क) 'केवा' अथवा 'क्केवा' का उच्चारण 'कैवा' अथवा 'क्कैवा' भी होता है।

(ख) जिन पुंल्लिग शब्दों के रूप चौथे स्तंभ में मिलते हैं, उनके स्त्रीलिंग शब्दों के रूप उसमें नहीं मिलते। 'बिटेउनी' इसका एकमात्र अपवाद है और उसका भी आदरार्थक रूप प्रचलित नहीं है। इस अपवाद का कारण भी यही है कि यह शब्द बच्चों से संबंधित है, दुलार का है और ऐसे शब्द संबोधन के माध्यम से बन जाते हैं। बालकों की शब्दावली का विस्तार लाड़ और दुलार की भाषा में कितना अधिक हो जाता है, इस बात का संकेत मैंने 'बैसवाड़ी शब्द-सामर्थ्य' नामक प्रबन्ध में किया है।

(ग) विशेषणों में प्रातिपदिक प्रायः अपेक्षाकृत अधिक होते हैं।

(घ) 'कलुइया' अपवाद (जो 'कल्लू' शब्द के ऊकारान्त होने के कारण है) को छोड़कर, तीसरे और चौथे स्तंभ के सभी रूप अंत्य ध्वनि की दृष्टि से पारस्परिक अन्विति में हैं।[1] दूसरा स्तंभ भी इस दृष्टि से नियमित है; केवल 'नीक' और 'नीकि' की विशिष्ट स्थिति है क्योंकि इनमें 'का', 'की' (या 'कई') के योग से पहले ही 'क' ध्वनि विद्यमान है।

(ङ) 'बूढ़ा' और 'बुढ़िया' का उदाहरण बैसवाड़ी में बड़ा मनोरंजक है। 'बूढ़ा' सामान्य वाक्शैली का शब्द है; किन्तु उसका प्रयोग सदैव आदरार्थक में होता है। 'बुढ़िया' खड़ीबोली का शब्द होने के नाते केवल शिक्षितों की वाक्शैली तक सीमित है। ग्रामीण वाक्शैली में उसका प्रयोग होता है; किन्तु केवल बीरबहूटी के लिए प्रयुक्त होने वाले अनुक्रम 'दए की बुढ़िया' में। इस प्रकार प्रथम स्तंभ (मूल प्रातिपदिक) में दो-दो शब्द होते हुए भी 'बूढ़ी स्त्री' का अर्थ देनेवाला (अनादरार्थक) साधारण मूल प्रातिपदिक बैसवाड़ी की सामान्य वाक्शैली में एक भी नहीं है। इसके लिए प्रायः 'बुढ़ेवा' शब्द का प्रयोग करना पड़ता है या 'बूढ़ि मेहेरिया'-जैसे किसी अनुक्रम का आश्रय लिया जा सकता है।

(च) 'घोड़ा' शब्द का उदाहरण पर्याप्त रोचक है क्योंकि पुंल्लिग शब्द के रूप चौथे स्तंभ में मिलते हैं और स्त्रीलिंग के तीसरे स्तंभ में। लखीमपुरी में पुंल्लिग रूप तीसरे स्तंभ में उपलब्ध हैं (सक्सेना, पृ० ११०)।

(छ) 'लरिकनी' के और प्रातिपदिक नहीं मिलते; इसका एकमात्र कारण यह है कि इस शब्द का प्रयोग बहुत कम मिलता है। सामान्यतः इसके स्थान पर 'बिटेवा' के प्रातिपदिक आ जाते हैं।

(ज) 'मनई' के तीसरे और चौथे स्तंभ के रूपों की परस्पर तुलना कीजिए। ध्वनि की वृद्धि नहीं हुई है, केवल 'वा' और 'या' के स्थान पर 'ना' और 'नू' आ गये

---

१. अनुनासिकता आबद्ध और अर्थहीन है, स्वतंत्र और सार्थक नहीं।

हैं। एक अन्तर यह अवश्य है कि तीसरे स्तंभ का द्विस्वर 'ए'-क्षेत्र में समाप्त हो जाता है और दूसरे का 'इ'-क्षेत्र तक पहुँचता है; इसीलिए लिखने में इनके लिए क्रमशः 'ऐ' और 'अइ' का प्रयोग किया जा सकता है। 'व' और 'य' को श्रुति मानकर छोड़ दें तो चौथे स्तंभ में ध्वनि की वृद्धि हुई मानी जा सकती है। कुछ हो, अन्य शब्दों की अपेक्षा इसकी रूपगत स्थिति विशिष्ट अवश्य है।

(झ) 'बेट्टा' शब्द का प्रयोग केवल कुत्तों को ललकारते समय वैकल्पिक रूप से ('लु बेटा' या 'लु बेट्टा') होता है।

(ञ) तीसरे स्तंभ में 'नाऊ' शब्द के दो अनादरार्थक रूप मिलते हैं; अन्य कोई शब्द ऐसा उदाहरण नहीं प्रस्तुत करता। संभवतः 'नउनवाँ' शब्द 'नउनेवाँ' के अनुकरण पर बन गया होगा और 'नउवा' उसका नियमित रूप है। किन्तु यह उल्लेखनीय है कि आदरार्थक रूप 'नउनवाँ' से ही बनता है, 'नउवा' का आदरार्थक रूप 'नउवऊ' मुझे बैसवाड़ी क्षेत्र में सुनने को नहीं मिला।

(ट) तीसरे स्तंभ में 'पिलुवा' का आदरार्थक रूप देखिए और मूल प्रातिपदिक 'पिल्ला' से उसकी तुलना कीजिए। इस विशिष्टता का कारण ध्वनिगत है।

(ठ) 'सार' शब्द का उदाहरण पर्याप्त मनोरंजक है। जब इस शब्द का प्रयोग संबंध ('साला') बताने में होता है तब उसके अन्य प्रातिपदिक नहीं मिलते। गाली में व्यवहृत होने पर दो अन्य प्रातिपदिक उपलब्ध हैं, जो दोनों आदरार्थक हैं। गाली के शब्द की 'केवल आदरार्थकता'[1] एक रोचक विरोधाभास है। गाली देने में स्त्रीलिंग रूप 'सारि' का व्यवहार नहीं होता, 'ससुरी' का होता है।

## २.२ अन्य

(क) कुछ शब्द ऐसे हैं जिनमें सामान्यतः प्रथम स्तंभ के (मूल) प्रातिपदिक का प्रयोग होता है; किन्तु कर्तरि करण में अपेक्षाकृत दीर्घ प्रातिपदिकों (अन्य स्तंभों) का व्यवहार होता है। जैसे:—साँपु पी डारेसि; सँपउनें पी डारा।

(ख) कभी-कभी ऐसे शब्दों के युग्म मिलते हैं जो देखने में एक ही शब्द के दो प्रातिपदिक प्रतीत होते हैं; किन्तु वस्तुतः उनमें कोई संबंध नहीं होता। उदाहरणार्थ—

**पुंल्लिंग:**—१. डेला ('ढेला' का वैकल्पिक रूप)।
२. डेलवा (एक विशेष टोकरी)।

**स्त्रीलिंग:**—१. माची (खेत जोतते समय बैलों के गले में पहनाया जाने वाला लकड़ी का घेरा)।
२. मचिया (चारपाई की भाँति बुनकर बनायी गयी बैठने की चौकी)।

(ग) कुछ शब्दों के दीर्घ प्रातिपदिकों में 'व', 'य', 'न' के अतिरिक्त अन्य ध्वनियों का भी योग हो सकता है; जैसे गाली में प्रयुक्त होनेवाले 'गुलाम' शब्द का रूप

१. लखीमपुरी (सक्सेना, पृ० १११) में अनादरार्थक रूप 'सरवा' मिलता है।

'गुलमटा'।[1] अनादरार्थक 'चमरवा' (तीसरा स्तंभ) की अपेक्षा 'चमट्टा' रूप में निरादर की मात्रा अधिक है। यही स्थिति 'गुलमटा' की भी है।

(घ) चौथे स्तंभ के प्रातिपदिक मुख्यत: प्राणियों के लिए और उनमें भी अधिकतर मनुष्यों के लिये व्यवहृत होते हैं। उदा० बड़कउनू कहत आहीं; यू उन क्यार बड़कउना लरिकवा आय, यू छोटकउना।

यदि ये रूप विशेषणों के हों तो इनके बाद विशेष्य का प्रयोग कम ही होता है। अचेतन पदार्थों के संबंध में तो यह नियम अनिवार्य है, यद्यपि उनके लिए इनका प्रयोग जब कभी ही होता है। जैसे :—यू कउनु ढेलवा आय, बड़कउना ?

(ङ) कुछ शब्द ऐसे भी मिल जाते हैं जिनके दो रूपों में एक का प्रातिपदिक अपेक्षाकृत दीर्घ होता है; किन्तु रचना की दृष्टि से वे उक्त सारणी में नहीं आते। उदा० 'साहु' के स्त्रीलिंग रूप 'साहुनि' और 'सहुआइनि' को उक्त सारणी में प्रथम स्तंभ के अंतर्गत (मूल प्रातिपदिक) ही माना जायगा।

## ३. टिप्पणियाँ

### ३·१ प्रातिपदिकों का विश्लेषण

सक्सेना ने (पृ० ११०–१११) प्रातिपदिकों के लिए तीन नाम प्रस्तावित किये हैं:—ह्रस्व, दीर्घ, दीर्घतर। 'व' तत्त्व वाले प्रातिपदिक दीर्घ और 'न' तत्त्ववाले (ध्वनियों की वृद्धि सहित) दीर्घतर माने गये हैं।[2] इस वर्गीकरण के अनुसार उक्त सारणी के पहले, तीसरे और चौथे स्तंभ का विश्लेषण सहज ही हो जाता है। ऊपर २.२. ग के रूपों को थोड़ी विशिष्ट स्थिति प्रदान करके तीसरे वर्ग में ही रक्खा जा सकता है। अब शेष बचता है दूसरा स्तंभ जिसकी स्थिति अन्य स्तंभों से स्पष्ट ही भिन्न है; उसमें शुद्ध रूप से विशेषणों का ही समावेश मिलता है। यद्यपि अर्थ की दिशा देखते हुए वह तीसरे और चौथे स्तंभ के रूपों की कोटि में आता है और रूप की दृष्टि से उसके लिए पृथक् स्तंभ ('प्रातिपदिक' गत) की स्थापना समीचीन प्रतीत होती है क्योंकि वह पहले और और तीसरे स्तंभ का मध्यवर्त्ती सिद्ध होता है; फिर भी अन्य स्तंभों से उसकी विशिष्ट स्थिति[3] होने के कारण विश्लेषण की सुविधा के लिए उसे प्रातिपदिकों के स्वतंत्र मूल्य से पृथक् रक्खा जा सकता है।[4]

---

१. 'रुपया' का अनादरार्थक रूप बनाने में प्रातिपदिक-परिवर्तन के साथ-साथ लिंग-परिवर्तन ('रुपल्ली'-स्त्री०) भी हो जाता है। 'रुपल्ली' का वैकल्पिक रूप 'रुपट्टी' भी मिलता है, यद्यपि इसका प्रचलन अपेक्षाकृत कम है।

२. सक्सेना ने (पृ० ११०) इनका प्रचलन केवल फैजाबाद और सुलतानपुर में ही लक्षित किया है।

३. (अ) उक्त भिन्न स्थिति यह है कि ये रूप केवल विशेषणों म ही मिलते हैं।
(ब) प्रथम स्तंभ की भाँति इस दूसरे स्तंभ में भी पृथक् आदरार्थक रूप नहीं मिलते।

४. सक्सेना ने (पृ० १४३) दूसरे स्तंभ के रूपों को दीर्घ प्रातिपदिक वाला कहा है।

अतएव 'का' (पुं०) और 'की' या 'कई' (स्त्री०) को स्वार्थक प्रत्यय कहा जा सकता है; जो अपने ही स्तंभ में रहने पर बड़े प्रातिपदिकों (तीसरे और चौथे स्तंभों) के समकक्ष अर्थ की व्यंजना कर सकता है; किन्तु जिन धातुओं में इसका योग होता है वे बड़े प्रातिपदिकों की रचना के लिए आधार के रूप में स्वयं न प्रस्तुत होकर स्वार्थक प्रत्ययवाले रूप का ही प्रयोग करती हैं।[1] इस स्थिति में स्वार्थक प्रत्यय का जो अंश ('क') बचा रहता है, उसकी अर्थ-दिशा बड़े प्रातिपदिकों की अर्थ-दिशा में ही विलीन हो जाती है और वह आधारगत प्रातिपदिक के एक अंग के रूप में ही पड़ा रहता है। इस नाते (अर्थ-दिशा की बात छोड़ देने पर) स्वार्थक प्रत्ययवाला रूप (दूसरा स्तंभ) मूल प्रातिपदिक (प्रथम स्तंभ) का ही सवर्ण सिद्ध होता है। इस सवर्णता का एक चिन्ह यह भी है कि दूसरे स्तंभ में पहले स्तंभ की भाँति ही आदरार्थक के पृथक् रूप नहीं मिलते।[2] इन समस्त पहलुओं पर विचार करने से यह बात संगत प्रतीत होती है कि आवश्यकता पड़ने पर मोटे वर्गों में विभाजित करते हुए प्रथम दो स्तंभों को 'छोटे प्रातिपदिकों' और अन्तिम दो स्तंभों को 'बड़े प्रातिपदिकों' का नाम दिया जाय।

## ३·२ मूल प्रातिपदिकों की व्यापकता

प्रस्तुत सारणी के प्रथम स्तंभ में 'बुढ़िया', 'मेहेरिया', 'बिटिया', 'पिलिया', 'पड़िया' ऐसे शब्द हैं जिनके प्रातिपदिक रूप की दृष्टि से 'दीर्घ प्रतीत होते हैं' (सक्सेना, पृ० ११०); किन्तु इन्हें प्रथम स्तंभ में (मूल प्रातिपदिक) रक्खा गया है जिसे ह्रस्व प्रातिपदिकों का स्तंभ माना गया है। खड़ी बोली में इनमें से दो शब्दों के मूल प्रातिपदिक ह्रस्व रूप में ('बूढ़ी', 'बेटी') प्रचलित भी हैं। शिक्षित व्यक्ति अपनी वाक्शैली में इनका प्रयोग कभी-कभी बैसवाड़ी में भी कर सकते हैं। किन्तु बैसवाड़ी की सामान्य वाक्शैली के लिए ये रूप सर्वथा अपरिचित हैं। 'बिटिया' का एक रूप 'बिट्टी' बैसवाड़ी में मिलता है जो प्रातिपदिक में ह्रस्व है; किन्तु यह संबोधन का और लाड़-प्यार का शब्द है। ऐसे शब्दों को विवेचन में सम्मिलित करने से प्रातिपदिकों के सैकड़ों रूप मिलेंगे। अस्तु, दीर्घ प्रतीत होने वाले उक्त प्रातिपदिक (जो अन्य किसी भाषा या बोली की तुलना में दीर्घ हो भी सकते हैं) बैसवाड़ी के लिए ह्रस्व ही हैं। इन्हें प्रथम स्तंभ में रखने के निम्नलिखित अन्य कारण भी हैं :—

(क) इन्हें तीसरे स्तंभ में रखने से उस स्तंभ की एकरूपता भंग होती है।

---

१. यह बात कुछ अपवादों को छोड़कर सर्वत्र अनिवार्य रूप से लागू होती है। अपवाद :— 'माँझिलि', 'मँझिलकी', 'मँझिलकई' किन्तु 'मँझिलई' भी।

२. नामों में इसका अपवाद संभव है; जैसे नन्हक्का > नन्हकू। किन्तु भाषा की प्रवृत्ति के संबंध में नामों पर अधिक विश्वास नहीं किया जा सकता; क्योंकि पुरुषों के नाम भी 'बड़की' 'छोटकी' मिलते हैं जो न केवल वास्तविक भाषा में अप्रचलित हैं अपितु यदि प्रचलित होते भी, तो स्त्रीलिंग होते। नामों का अध्ययन एक पृथक् और स्वतः पूर्ण विषय है।

(ख) तीसरे स्तंभ के अन्य रूपों की प्रवृत्ति का अनुसरण करनेवाले इन शब्दों के रूप उस स्तंभ में पहले से ही विद्यमान हैं ।

(ग) तीसरे स्तंभ के अन्य शब्दों की भाँति ये रूप अपने आदरार्थक प्रतिरूपों की रचना नहीं करते । 'पड़वा' (पुं०) शब्द इसका अपवाद है इसलिए इस तथ्य के बावजूद कि उसका प्रयोग 'पड़िया' के समानान्तर ही होता है, उसे प्रथम स्तंभ में न रखकर तीसरे स्तंभ में रक्खा गया है ।

(घ) दीर्घ प्रातिपदिकों के 'प्रतीत होनेवाले' उक्त रूप तीसरे स्तंभ के अनादरार्थक रूपों के साथ रक्खे भी जायँ तो वे वर्ग की भावना के प्रतिकूल होंगे क्योंकि वे अनादरार्थक नहीं हैं । उदा० आव बिटिया, बइठो आय !

## ३·३ प्रातिपदिकों का प्रयोग

### क. मनुष्यों के संबंध में

"बड़े प्रातिपदिक केवल आत्मीयता में व्यवहृत होते हैं और कभी-कभी उनमें श्रोता की हीनता या लघुता अथवा उसके प्रति क्रोध का भाव रहता है । इनका प्रयोग कभी बड़ों के लिए नहीं होता, सदैव पद या वय में छोटों के लिए होता है ।"[1] क्रोध अथवा स्नेहातिरेक में बड़े-बूढ़ों के पद या वय का ध्यान न रहने पर इनका प्रयोग बिना किसी भेद के हो सकता है । क्रोध का उदाहरण गाली-गलौज में और स्नेहातिरेक का उदाहरण विशेषतः वयस्क पुत्रों में माँ के प्रति मिलता है । इनके आदरार्थक रूप स्नेह में ही आते हैं । 'सरऊ' और 'सरउनू' गाली के शब्द हैं किन्तु इनके व्यवहार से क्रोध उतना अधिक नहीं प्रकट होता । यह भी उल्लेखनीय है कि 'सार' तथा उसके रूपों का प्रयोग लाड़-प्यार में भी होता है ।

### ख. पशुओं के संबंध में

लोककथाओं में जीव-जंतुओं के लिए बड़े प्रातिपदिकों के आदरार्थक रूपों का प्रयोग मिलता है । सामान्य व्यवहार में प्रायः पालतू पशुओं के लिए उनके अनादरार्थक रूपों का प्रयोग होता है और अपने पशुओं के लिए (तथा जो पशु मध्यम पुरुष की संपत्ति हैं, उनके लिए भी) आदरार्थक रूपों के प्रयोग की प्रवृत्ति विशेष रूप से मिलती है ।

### ग. अचेतन पदार्थों के संबंध में

बड़े प्रातिपदिकों का प्रयोग कम ही होता है और जब होता भी है तो व्यंग्य-विनोद अथवा आमोद-प्रमोद की मनः स्थिति में । लोकगीतों में अचेतन पदार्थों के प्रातिपदिक दीर्घ कर देने की प्रवृत्ति विशेष रूप से मिलती है, जैसे :—मुरलिया, बँसुरिया, बाँसुरिया आदि ।

---

१. सक्सेना, पृ० ११०

भीमसेन 'निर्मल'

# तेलुगु का लोकगीत-साहित्य

## लोकगीत-साहित्य का उद्गम व महत्त्व

साहित्याचार्यों का निर्विवाद मत है कि गीत ही मानव की भावाभिव्यक्ति का प्रथम प्रयास रहा है, जिसे सुख के उल्लासपूर्ण स्वर में या दुख के आकुल स्वर में मानव ने गाया है। असंस्कृत और प्रकृति की गोद में खेलने वाले मानव ने स्वर खोलकर जो उन्मुक्त गीत गाये हैं, वे ही लोकगीतों के मूल में हैं। स्वभावत: ये गीत निसर्ग-जीवन और असंस्कृत मन से निर्गत हैं। विख्यात् आलोचक एमर्सन का कथन है कि सारी महान् कलाएँ अप्रयत्न ही फूट पड़ती हैं। (All the great art is unconscious.) इस कसौटी पर लोकगीतों का साहित्य अत्युत्तम कोटि का ठहरेगा।

निसर्ग जनित होने के कारण इन लोकगीतों में मानव-प्रकृति के दर्शन अपने निजी रूप में स्पष्ट परिलक्षित हो सकता है। परिष्कृत साहित्य की अपेक्षा लोकसाहित्य ही जनता की विचार-धारा का सच्चा प्रतिबिम्ब माना जा सकता है। अकृत्रिम और सहज प्रवाह वाले लोकगीतों में ही किसी जाति या समाज की संस्कृति-सभ्यता, आचार-विचार मानसिक प्रवृत्तियों, अनुभव-अभिरुचियों आदि का सच्चा चित्रण मिलेगा। लोकगीत के स्वर दूर से आते हैं। जाने यह स्वर कहाँ से फूट पड़ते हैं। युग-युग की पीड़ा-वेदना युग-युग की हर्ष श्री, रीति-नीति, प्रथा-गाथा अचूक सहज रूढ़िवार्ता, भौगोलिक एवं वातावरण निर्मित संस्कृत परम्परा, ये सभी इन स्वरों में अपने नाम, धाम अथवा वंश आदि का परिचय देते प्रतीत होते हैं।[1] सच तो यह है कि इन लोकगीतों में असंख्य मूक हृदय गाते हैं, जिन के स्वर अनन्त हैं। अत: यह स्पष्ट है कि प्रत्येक दृष्टिकोण से लोकगीत-साहित्य मोटे तौर पर लोकसाहित्य (Folk literature) का विशेष अध्ययन होना चाहिए। लाला लाजपतराय के शब्दों में कह सकते हैं कि देश का सच्चा इतिहास और उसका नैतिक और सामाजिक आदर्श इन गीतों में ऐसा सुरक्षित है कि इनका नाश हमारे लिये दुर्भाग्य की बात होगी।[2] श्री देवेन्द्र सत्यार्थी भी अपने एक लेख में इसी बात की ओर संकेत करते हैं कि

१. बेला फूले आधी रात: देवेन्द्र सत्यार्थी।
२. कविता कौमुदी के 'ग्रामगीत' वाले भाग से उद्धृत।

किसी भी जाति को पुनर्जागरण के बाद अपने लोकगीतों से प्रेरणा प्राप्त करनी चाहिये। (A nation reborn must be inspired by its folk songs.)[१]

गत दो दशकों से भारतीय साहित्य की इस शाखा की ओर विद्वानों का ध्यान गया है और इन धूलि-धूसरित मणियों के उद्धार का अनवरत प्रयास किया जा रहा है। प्रस्तुत लेख में तेलुगु के लोकगीत-साहित्य का संक्षिप्त परिचय देना ही इन पंक्तियों के लेखक का अभीष्ट है।

## लोकगीतों के लक्षण

लोकगीत-साहित्य का परिचय प्राप्त करने से पहले, इन लोकगीतों के सामान्य लक्षणों से अवगत होना अनुचित न होगा।

सामूहिक चेतना की अभिव्यक्ति ही, 'शतियों की सामाजिक परम्पराओं से पोषित हो,' लोकसाहित्य का रूप लेती है। गीत का गायक या लेखक अपने को समाज में विलीन कर लेता है और उसे अपने कर्तृत्व का ध्यान नहीं रहता। बंगाल के बाउल के शब्दों में चरण-चिन्ह छोड़ जाना कृत्रिम और अस्वाभाविक तो है। यह भी हो सकता है कि गीत की रचना, एक से न होकर समूह से हुई हो। अतः अज्ञात कर्तृत्व या सामूहिक कर्तृत्व लोकसाहित्य का पहला लक्षण माना गया है।

किसी नियत लेखक के न होने से, जब रचना सबकी संपत्ति हो जाती है, तब उसके रूप में, गायक के इच्छानुसार परिवर्तन होता रहता है। अतः लोकगीतों में स्थिर रूप का अभाव पाया जाता है। इसी बात की ओर संकेत करते हुए श्री F. G. child साहब 'English and Scottish Ballads में कहते हैं कि there are texts but there is no text.

मसि- कागद का ज्ञान न रखने वाले ग्रामीणों की वाणी में ही लोकगीत अपना जीवन बनाए रखते हैं। लोकगीत मौखिक प्रचार पर ही बने रहते हैं।

अन्तःसाक्ष्य और बहिःसाक्ष्य के अभाव में यह निश्चित रूप से नहीं कहा जा सकता कि कौन सा गीत कब बना है। भाषा और शैली में परिवर्तन होते रहने के कारण, समय का निर्धारण करना और भी कठिन हो जाता है। ब्रिटानिका विश्वकोष के 'लोकगीत साहित्य' शीर्षक लेख में निम्न वाक्य इस कथन की पुष्टि करता है। 'A folk song is neither new or old because it is continually taking anew life; it is an individual flowering on a common stem.'

लोकगीतों की शैली निरलंकृत हो, स्वच्छन्द व सरस होती है। बरबस हृदय से फूट पड़ने वाले इन गीतों में, प्रयत्नपूर्वक लाये गये अलंकार या कवि समय या शब्दाडंबर के दर्शन नहीं होते। उनकी शैली एकदम अकृत्रिम होती है।

लोकगीतों में पुनरावृत्ति की अधिकता पाई जाती है।

---

१. Illustrated weekly, Nov. 12, 1944.।

'चिर परिचित शब्द, चिर परिचित बातें, चिर परिचित स्वर, ये लोकगीत की शक्ति हैं ।'[४] जन सामान्य की परिचित वस्तु (Subject matter). ऐसी वस्तु जो उन्हें अपने हृदय की लगे, लोकगीत का मुख्य लक्षण है ।

उपर्युक्त लक्षणों में मुख्य हैं अज्ञात शिल्प और सार्वजनीनता । सम्प्रति श्री जदुनाथ सरकार की निम्न-परिभाषा में लोकगीत-साहित्य के समग्र लक्षण समाए हुए हैं । "Rapidity of movement, simplicity of diction, primary emotions of universal appeal, action rather than subtle analysis, broad striking characterisation, thumb nail sketches of background and the sparest use or rather complete avoidence of literary artifices, these are the essential requisiters of the true ballad"

## तेलुगु लोकगीत और विद्वान्

तेलुगु में इन लोकगीतों को "जानपद गेय" कहते हैं । प्रजा वाङमय, पदवाङमय, अनादृत वाङमय, गेयरचनाएं, मधुर कविताएं, देशी सारस्वत आदि नामों से भी विद्वानों ने इस साहित्य को अभिहित किया है, पर 'जानपद साहित्य' ही अधिक लोकप्रिय और रूढ़-सा हो गया है । तेलुगु में (जो Italian of the East कही गई है[५]) लोकगीत-साहित्य का अपार भण्डार भरा पड़ा है और प्रत्येक गीत मधुवर्षिणी है । तेलुगु के लोकगीत-साहित्य से प्रभावित हो, उसे प्रकाश में लाने का सौभाग्य दो अंग्रेज महानुभावों का है । विदेशी होते हुए भी तेलुगु भाषा-साहित्य की सर्वतोमुखी सेवा करने वाले धन्य पुरुष हैं श्री सी० पी० ब्राउन[६] । ब्राउन साहब ने लेख लिखकर और लोकगीतों का सुन्दर संग्रह कर, जनता का ध्यान इस ओर आकर्षित किया है । इनके बाद श्री जे० ए० बायल (Boyle) ने "Telugu Ballad Poetry" के नाम से एक प्रामाणिक लेख प्रकाशित किया था ।

२०वीं शती में, इस दिशा में काम करने वाले विद्वानों में सर्वश्री नंदिराजु चलपतिराव, एम० एन० वेंकटस्वामी, वेटूरि प्रभाकर शास्त्री, ए० उमाकान्तम् चिन्ता दीक्षितुलु, नेदुनूरि गंगाधरम्, टी० कामेश्वरराव, श्रीपाद गोपालकृष्णमूर्ति, हरि आदिशेषुवु, नायनि कृष्णकुमारी, डा० बी० रामराजु आदि के नाम उल्लेख्य हैं । श्री नेदुनूरि गंगाधरम् ने अपना सारा जीवन इन लोकगीतों, कहावतों आदि के संकलन करने में लगा दिया है

४. धरती गाती है : श्री देवेन्द्र सत्यार्थी ।

५. Of all Dravidian languages, Telugu is the sweetest and most musical. It is exceedingly melifluous and sounds harmonious even in the mouth of the most vulgar and illiterate. It has justly been called the 'Italian of the East'. Mr. Henry Morris as quoted by E. Thurston in 'castes and tribes of south India.'

६. विशेष परिचय के लिये 'तेलुगु के अनन्य सेवी सर ब्राउन' (अजन्ता, अप्रैल, मई, ५६) ।

और हजारों की संख्या में ये गीत उनके पास प्रकाश प्राप्त करने कीं आशा में पड़े हैं। श्री चिन्ता दीक्षितुलु, और कामेश्वरराव जी ने "बालगीतों" पर और कृष्णकुमारी ने स्त्रियों के गीतों पर प्रशंसनीय कार्य किया है। श्री हरि आदि शेषुवु ने विज्ञान के प्राध्यापक होते हुए भी, "जानपदवाङमय परिचयमु" नाम से बड़ी सुन्दर पुस्तक लिखी, जिस पर तेलुगु भाषा समिति ने सन् १९५३ में ५००) का पुरस्कार प्रदान किया। डा० रामराजु ने इस विषय पर एक प्रबन्ध (Thesis) प्रस्तुत किया जिस पर उस्मानिया विश्वविद्यालय ने उन्हें Ph. D. की उपाधि से विभूषित किया है।

## तेलुगु के प्राचीन साहित्य में लोकगीतों का उल्लेख

नन्नयभट्ट तेलुगु के प्रथम महाकवि माने जाते हे जिन्होंने राजमहेंद्री के चालुक्य राजा राजनरेंद्र के दरबार में रहकर 'आन्ध्र शब्द चिन्तामणि', 'चामुण्डिका विलासमु' आदि ग्रन्थ लिखे किन्तु इनकी कीर्ति का प्रकाश-स्तम्भ तो संस्कृत महाभारत के प्रथम ढाई सर्गों का अनुवाद है। इनकी शैली इतनी परिष्कृत एवं प्रौढ़ है कि यह कहना भ्रामक सा प्रतीत होता है कि तेलुगु साहित्य एकदम ११वीं शती में प्रारंभ हुआ है। पर नन्नय से पूर्व का साहित्य लुप्तप्राय है। नन्नय और उनके समकालीन कवियों ने कुछ गीतों का उल्लेख किया है जो अधिकांश लोकगीत हैं। तुम्मेद, निव्वाळि, वालेशु, गोब्बि, वेन्नल, ऐल आदि पद, अंकमालिकलु, ऊयल पाटलु, जाजर पाटलु, यक्षगानमुलु, दरुवुलु मंगल-हारतुलु, सुद्दुल आदि का उल्लेख, प्राचीन तेलुगु साहित्य में मिलता है। इनमें से कई गीत आज भी गाँवों में गाये जाते हैं। विशेष राग और लय (ताल) में गाये जाने वाले इन लोकगीतों का, अपने मूल और प्रचलित रूप में, संकलन करने का स्तुत्य प्रयत्न, आकाशवाणी के सभी केंद्र कर रहे हैं।

तेलुगु के उपलब्ध लोकगीतों के अध्ययन की सुविधा के लिये, कुछ मोटे विभाग कर लेंगे। यथा (१) पौराणिक (२) ऐतिहासिक (३) धार्मिक (४) दार्शनिक (५) बालगीत (६) स्त्रीगीत (७) श्रमिक गीत और (८) फुटकर रसवाले गीत।

## पौराणिक

अधिकांश लोकगीतों की कथावस्तु पुराणों से ही ली गई है। पुराण मित्र सम्मित माने गये हैं। पौराणिक विषयों में जनता का मन अधिक रमता है। किन्तु इन पौराणिक गाथाओं पर अधिक श्रद्धा-भक्ति होने पर भी, ग्रामीणों ने उन कथाओं को अपनी चित्त-वृत्तियों के अनुकूल गढ़ लिया है। रामायण, महाभारत, महाभागवत के इतिवृत्तों पर आधारित लोकगीत असंख्य हैं।

सियाराम आन्ध्रों के प्रियतम भगवान हैं। जहाँ देखिये, जहाँ सुनिये वह पवित्रनाम प्रतिध्वनित होता सुनाई पड़ेगा। क्या शिष्ट-साहित्य में, क्या लोकसाहित्य में, मर्यादा-पुरुषोत्तम की कथा गा-गाकर भक्तों ने अपने को धन्य किया है। लोकसाहित्य के कूचकोंड रामायणमु, शारदा रामायणमु, सूक्ष्म रामायणमु संक्षेप रामायणमु, चिट्टि रामायणमु, श्रीरामदंडमुलु, शान्त गोविंद नाममुलु आदि में रामायण की संपूर्ण गाथा है तो

शान्ताकल्याणमु, पुत्रकामेष्ठी, राघवकल्याणमु, राम का रूठना, सुन्दरकांडपदमु, सुग्रीव विजयमु, लक्ष्मण मूर्च्छा, लंकायागमु, श्रीराम पट्टाभिषेकमु, लक्ष्मणदेवर की हंसी, ऊर्मिला देवी की निद्रा, कुशलव कुच्चेल कथा, कुशलवगीत, शतकंठरामायणमु आदि में रामायण के किसी विशिष्ट भाग की गाथा है। केवल सीताजी की जीवन-गाथा पर आधारित अनेक गीत ग्रामीण-स्त्री-समाज में प्रचलित हैं जैसे सीता का जन्म, सीता का कल्याण, सीताजी को ससुराल भेजना, सीताजी का रूठना, सीताजी की मुद्रिका, सीताजी का अग्नि प्रवेश आदि। इन सभी गीतों में सियाराम महापुरुष या अवतार पुरुष नहीं हैं, साधारण ग्रामीण के मानसिक प्रवृत्तियों के आलम्बन-स्वरूप साधारण नर-नारी हैं। अपने ही सुख दुखों को इन पुराणदम्पतियों पर आरोपित कर तादात्म्य का अनुभव किया है ग्रामीणों ने। सीता जी के वनवास को अपना वनवास और उनके अग्नि-प्रवेश को अपना अग्नि-प्रवेश मानकर, मानों ग्रामीणों के हृदय पिघल पड़े हैं, इन गीतों के रूप में। इन गीतों की भाषा, भावना और कल्पना पर ग्रामीणों के हृदय-पक्ष की अमिट छाप है।

अयोध्या लौट आने के बाद, सीता जी की, नगर की नारियों के साथ बातचीत की एक झाँकी लीजिये, जिसमें नारी का हृदय बोल रहा है।

"अम्मलार ! मीरन्दरु नन्नु, तलतुर मरतुर कानललोनु
कान्तरो ! नी कडसारपु कूतुरु, चिन्नदिगद ने वेल्लेडिनाडु,
मुग्गुरु बिड्डल कन्नादटवे, रेपइना तोडुकु रम्मेनेनु।
वेलदिरो ! नी पेद्दकोडुकिप्पुडु, वेरु बासेना नीतोनइना,
कोम्मरो! नी कोडलिगुणमुलु, विंटिनिगदने वेडुकतोनु,
शान्ताचेप्पगा चोद्यमुलायेनु......
(दानि) कोरि तेस्तिवे अक्करो नीवु, अनुभविस्तिवेमक्कुवदीर"

(हे माताओ ! जब मैं वनों में थी तो तुम लोग मुझे याद करती रहीं या भूल गईं?
ओ कान्ता ! जब मैं जंगलों में गई, तब तक तुम्हारी छोटी लड़की बच्ची ही थी,
अब तीन बच्चों की माँ बनी ! कल तो उसे साथ लेते आओ न !
हे ललना ! तुम्हारा बड़ा लड़का, अब तुम से अलग रहने लगा ?
ओ बहन ! तुम्हारी बहू के गुणों को सुना है, शौक से,
शान्ता कह रही थी, अचरज हुआ सुनकर......
(उसे) तो बड़ी इच्छा से लाई थी, अब तो भुगत रही हो न !)

'प्रणय के पावन प्रसाद' से वंचित विरहिणी ऊर्मिला की कथा को, जनता ने लोकगीतों में उपेक्षित न रहने दिया, प्रत्युत अमर बना दिया। 'ऊर्मिला देवी की निद्रा' में ऊर्मिला की दुखभरी गाथा बड़े ही हृदयग्राही ढंग से वर्णित है।[7]

ऊर्मिला की निद्रा और लक्ष्मण के भरी सभा में हँसने के कारण की सुन्दर कल्पना की है जनमानस ने ! रामचन्द्र जी का राजतिलक हो गया। सभा खचाखच भरी हुई थी।

---

७. विशेष परिचय के लिये देखिये 'अजन्ता' (अक्तूबर-नवम्बर ५७)

लक्ष्मण एकदम हँस पड़े। सभी अपनी बगलें झाँकने लगे। शिव जी ने सोचा कि मछियारे की लड़की को सिर पर रख लिया, इसलिये हँस रहा है। विभीषण ने सोचा कि मैंने अपने बड़े भाई का वध करवाया है। सीता ने सोचा कि अंट-संट बकने वाली स्त्री होकर मैंने विपत्ति मोल ली है। रामचन्द्र जी ने सोचा कि दुश्मन की कैद में रहकर आने वाली स्त्री को, मैंने गोद में बिठा लिया, इसलिये लक्ष्मण हँस रहा है। इस तरह सबको अपनी-अपनी गलती (?) महसूस हुई। रामचन्द्र जी के पूछने पर, लक्ष्मण जवाब देते हैं कि जंगल में एक दिन निद्रादेवी, मेरे पास आने का साहस न करके, गोदावरी के कलकल स्वर के मिस रो रही थी। कारण पूछने पर उसने बतलाया कि तुम्हारा जागते रहना मेरी प्रकृति के विरुद्ध है। तब लक्ष्मण ने जवाब दिया, उसकी सरसता देखिये:—

मायन्न रघुपतिकि मावदिनकूनु, ई पर्णशालकु तानू कापनेनु.
पोपोम्मयोध्यापुरी नगरुनकु वेगा, धवुनिबासिनट्टि सतियुंडतगदू,
रात्रियुनु पवलुनू लेवकुंडगनू, तनुविडिचि पोंदुमी धवलाक्षि निद्रा!'

(भाई रघुपति और भाभी का तथा इस पर्णशाला का पहरा देना मेरा कर्तव्य है। जाओ अयोध्यानगरी को शीघ्रता से, पति के बिना स्त्री को रहना नहीं चाहिये रात-दिन उसका (उर्मिला का) आश्रय लो तुम ओ श्वेतनेत्र वाली निद्रा?')

तदुपरान्त भाई की आज्ञा ले लक्ष्मण अन्तःपुर में गये। वहाँ ऊर्मिला से मिलन होता है। तब वे कहते हैं:—

'तरुणि! पदुनालुगेंड्लु निनुविडचि, धरिइस्तिने प्राणमु
आहारनिद्रलुनु येरुगने, अतिव! नीमीदयान,
पुण्यपुरुषुल स्त्रीलनु एडबापिन, पूर्वजन्मुन मनमू,
एन्नेन्नि युगमुलैन इदिमनकु, अनुभविंचकतीरदु।'

(हे ऊर्मिला! चौदह वर्ष तुम्हारे वियोग में, बड़ी कठिनाई से प्राणों को रोक रखा है। तुम्हारी कसम, मैंने चौदह वर्ष न खाया है, न सोया है। पूर्व जन्म में हमने किन्हीं पुण्य पुरुषों को, उनकी स्त्रियों से अलग किया होगा। वह पाप, चाहे जितने भी युग बीतें, भोगना ही पड़ेगा।)

इस प्रकार रामायण की कथा के मिस, इन गीतों में जीवन के दाम्पत्य जीवन के मनोरम चित्र मिलते हैं। रामायण के पात्र साधारण नर-नारी बनकर रूठते, मचलते, एक दूसरे को मनाते, हँसी मजाक करते दीखते हैं। अपने दुख-सुख की धूप-छाँह से जीवन को झिलमिल बनाते हैं।

रामायण के बाद महाभारत पर आधारित लोकगीतों का नंबर आता है। महाभारत[८] आन्ध्रों का प्रिय ग्रन्थ है। एक कहावत भी चल पड़ी है कि खायें तो बड़े खायें, सुनें

८. तेलुगु के आदि कवि नन्नय ने ढाई पर्व, तिक्कन ने बाकी पन्द्रह पर्व और एर्रन ने अरण्य पर्व के आधे भाग का सुन्दर अनुवाद किया है। इन्हें 'कवित्रय' कहते हैं।

तो महाभारत सुनें ! रामायण के समान संपूर्ण भारत की कथा को लेकर चलने वाले भारत परक गीत उपलब्ध नहीं है पर महाभारत के अनेक उपाख्यानों को लेकर रचे गये अनेकों गीत हैं जैसे नल-चरित्र, देवयानी की कथा, सुभद्रा कल्याण,[९] धर्मराज का जुआ खेलना, पद्मव्यूह (अभिमन्यु की कथा), सावित्री, शशिरेखा परिणय, गयोपाख्यन, पाराशर मत्स्यगंधा का संवाद आदि ।

अनोखी कथाओं की कल्पना से मानव मन तृप्त होता है । कृष्णार्जुनयुद्ध पर आधारित 'गयोपाख्यान' नामक लोकगीत भी ऐसा ही है । 'गय' नामक यक्ष के विमान पर जाते हुए कृष्ण भगवान के हाथों में थूकना, (अनजाने ही) कृष्ण का शपथ खाना कि उसका वध करके रहूंगा, नारद के कहने पर गया का अर्जुन की शरण में जाना, सुभद्रा के विफल प्रयत्न, (इधर भाई तो उधर पति!) अन्त में युद्ध, अन्त में शिवजी के द्वारा सुलह; ये इस उपाख्यान के अंश है । इसमें सुभद्रा की दयनीय दशा का मार्मिक चित्रण हुआ है । बेचारी को दोनों तरफ से फटकार मिलती है ।

महाभागवत में, भक्ति के समान ही, श्रीकृष्ण की बाल और यौवन क्रीड़ाओं ने ग्रामीणों का मन हर लिया है । प्रह्लाद चरित्र, वामन विजय, अंबरीषोपाख्यान, गजेंद्रमोक्ष श्रीकृष्णजन्म, कालियमर्दन, श्री कृष्ण का कलेवा, बाललीला, गोपी जलक्रीड़ाएं, रुक्मिणी कल्याण, चिलुकदूतम् (रुक्मिणी का शुक के द्वारा कृष्ण के यहाँ संदेश भेजना) सत्यभामा का विलास, पारिजातपल्लवी, उषास्वप्न आदि गीत भागवत पर आधारित हैं ।

सत्य हरिश्चन्द्र, दत्तात्रेय जन्म, गंगा विवाद, गंगागौरी संवाद,[१०] सौत का झगड़ा, मेनका-पार्वती संवाद, लक्ष्मीपार्वती संवाद, सुराभाण्डेश्वर, त्रिपुरासुर संहार, श्रियाल की कथा, अण्डाल की कथा, श्रीरंगमाहात्म्य, दशावतारगीत, वेंकटेश्वर का आखेट, एकादशी माहात्म्य, आदि लोकगीत अन्यान्य पुराणों पर आधारित हैं ।

इन सभी पौराणिक लोकगीतों में स्पष्ट दृष्टिगोचर होने वाली बात एक है, वह है गाथाओं के पात्रों और घटनाओं के साथ ग्रामीणों का तादात्म्य । मूल कथाओं में परिवर्तन का मूलकारण ग्रामीणों की अपनी प्रवृत्ति और रुचि ही है । क्या भावों में, क्या उपमा रूपकों में, ग्रामीण-आत्मा का स्पष्ट प्रतिबिम्ब पाया जाता है ।

## ऐतिहासिक

ऐतिहासिक लोकगीतों का लोक-साहित्य में विशिष्ट स्थान है । उन्हें वीर गीत या Historic Ballads कह सकते हैं । इनका जन्म किसी वीरतापूर्ण घटना के बाद ही या कुछ समय के बाद होना, माना गया है । किसी वीर की शूरता से प्रभावित होकर या उसके साथ होने वाले अन्याय या उसकी अकाल मृत्यु से जनता का मन द्रवित होकर, वीरगीतों के रूप में फूट पड़ता है । कुछ वीरगीत सैनिकों में रणोत्साह भर देश व जाति के लिये मर मिटने को सन्नद्ध करते हैं तो कुछ जनता में जाति गौरव या देशाभिमान के भाव भर देते हैं । एक प्रसिद्ध इतिहासकार का कहना है कि Unhappy the nation that-

---

९. कल्याण का अर्थ विवाह है ।

१०. विशेष परिचय के लिये देखिये: 'अजन्ता' (अगस्त ५८)

has no history and happy the nation that can hear ballads commemorating the adventures of her warriors sung with fervour·········देश व जाति के महावीरों की गेयात्मक कथाएँ, गायक के ओजपूर्ण गायन से परिपुष्ट हो, श्रोताओं के शरीर को पुलकित कर, मनोलीन भावनाओं को जाग्रत कर प्राचीन-गौरव-गरिमा की झलक दिखा, श्रोताओं को उत्साह से भर देती है। इन वीर रसात्मक गेयकाव्यों के बारे में पं० उमाकान्त विद्याशेखर कहते हैं : 'These ballads are recited before big audiences, generally during moonlit nights with the necessary accompaniments and gestures and are semi-dramatic in nature. x x x generally the purpose of the ballads is to create mainly reverence and admiration towards the heroic souls by a sort of narration appealing to the popular imagination and emotion."

इन वीर गीतों के ऐतिहासिक और अर्द्ध ऐतिहासिक (quasi historical) नाम से दो विभाग कर सकते हैं। ऐतिहासिक वीर गीतों के पात्रों के नाम तथा घटनाएँ बहुत कुछ ऐतिहासिक होती हैं, यद्यपि उनमें कल्पना का प्राचुर्य देखा जाता है। किसी देश व जाति के इतिहास लिखने वालों को इन गीतों से सहायता मिल सकती है। परन्तु अर्द्ध-ऐतिहासिक वीर गीतों में ऐतिहासिक तथ्य इतने धुंधले व अस्पष्ट होते हैं कि उनमें से इतिहास खोज निकालना टेढ़ी खीर है।

तेलुगु में उपलब्ध ऐतिहासिक वीर गीतों में पलनाटि वीर चरित्र, काटमराजु कथा, कुमार राम की कथा, सर्वाइपापनि कथा, बोब्बिलि कथा, अल्लूरि सीताराम राजुकथा, सदाशिव रेड्डी कथा आदि उल्लेख्य हैं तो अर्द्ध ऐतिहासिक गीतों में बंगारु तिम्मराजु कथा, आरुमराठोलकथा, बलगूरि कोंडल्रायनि कथा, चिन्नपरेड्डी कथा आदि आती हैं।

राज दरबारों में अपनी प्रतिभा और पांडित्य का सिक्का जमाकर, कनकाभिषेक करा कर, कोंडवीडु के रेड्डी राज्य में विद्याधिकारी के पद पर सुशोभित होकर महाकवि श्री नाथ ने तेलुगु साहित्य की अपार सेवा की है। पंडित कवि होते हुए भी श्रीनाथ ने लोकसाहित्य और लोकगीतों के महत्व को जान कर 'पलनाडु' के वीरों की कथा को 'द्विपदा' नामक देशी छंद में, लोक गीत के रूप में रचा है। यह लोकगीत इतना लोकप्रिय रहा है कि आज भी 'पिच्चुकुंट' नामक जाति वाले इस कथा को मसक बाजे के साथ बजाते हुए, गाते रहते हैं। गुंटूर जिले के पश्चिमी भाग में 'पलनाडु' नामक प्रान्त के राजपरिवार के आपसी युद्ध-भ्रातृकलह-को लेकर यह गीत रचा गया है। इस गीत में वीररसात्मक उत्साह के साथ धार्मिक-आवेश का सुन्दर समन्वय किया गया है। (इस कथा की तुलना 'भारत' के साथ की जाती है।)" अभिमन्यु के सम बालवीर बाल चन्द्र को युद्ध के लिये प्रेरित करने का उपदेश देती हुई रेखांबा, अपनी पुत्री मांचाला से कहती है :—

---

११. 'पलनाटि वीर चरित्र' की भूमिका से।

१२. विशेष परिचय के लिये देखिये, 'युगप्रभात' १६. ८. ५८।

'जन्मवृक्षमुनकु जवि गलयट्टि, पटुतरकमनीय फलंबुलु रेंडु
केरलु भोगमुलोंडु, कीर्ति रेंडवदि, तोलिपंडु चविचूचि तोलगुनोकडु
मलुपंडु चविचूचि मलगुनोकंडु, वीरलिद्दरिकिनि भेदंबु हेच्चु
मोदटि फलंबुन मोनसेडु रसमु, क्षणभंगुरंबदि समसिपोगलदु
रेंडवफलमुन रेक्कोनुरसमु, शाश्वतंबौचु दिशलगलदाक
सवितृडु गलदाक, शशिगलदाक, तारलुगलदाक, धरगलदाक
वारिधिगलदाक, वरलुचुनंडु, प्रकटफलद्वयरसमुनु ग्रोलि
यनुभविंचेडु वारलरूदु भूस्थलिनी, प्राकृतजनमुलु प्रथम फलम्बु
प्रापिंचि संतृप्ति पडयंगगलरू, वीरांशमुन बुट्टि वेलयुवारलकु
मोदटिफलंबिदि मुख्यबुगादु, महिमास्पंदबइ मनसुज्वलिप
बरुगेत्तुदुरु रेंडवफलम्बु कोरकु, × × × ×

(इस जीवन रूपी वृक्ष के दो मधुर और रसीले फल हैं, एक भोगविलास और दूसरा कीर्ति। कोई पहले फल का स्वाद चखकर हट जाता है तो कोई दूसरे फल का रस चखकर ही रहता है। इन दोनों में अन्तर अधिक है। पहले फल में जो रस है, जो स्वाद है, वह क्षणभंगुर है, तत्काल नष्ट होने वाला है। दूसरे फल में जो रस है, वह दिशाओं, सूर्य, शशि, नक्षत्र, धरित्री, समुद्र के अस्तित्व तक शाश्वत रूप से बना रहता है। इन दोनों फलों के रस का आस्वादन करने वाले इस संसार में बिरले ही होते हैं। पामर जन प्रथम फल का रस प्राप्त कर ही तृप्त हो जाते हैं। वीरांशसंभूत व्यक्तियों को पहले फल का रस प्रधान नहीं है। मन में उत्कट अभिलाषा रख वे दूसरे फल की इच्छा रखते हैं, जो महिमास्पद है।)

यह—'पलनाटि वीर चरित्र'—लोक गीत होते हुए भी, पंडित-कवि की रचना है, अतः अन्य लोकगीतों की अपेक्षा पांडित्यपूर्ण है। फिर भी विषय और शैली की सरलता के दृष्टि कोण से, लोकप्रिय वीररसोत्तेजक रचनाओं में अपना विशिष्ट स्थान रखता है।

'काटमराजु कथा' में सन् ११७० ई० में नेल्लूरु के राजा मनुमसिद्धि और काटमराजु में—चरागाह का कर न चुकाने के कारण को लेकर हुए युद्ध का विस्तृत और प्रभावोत्पादक-वर्णन है। विवश हो युद्ध से लौट आये ब्राह्मण खड्ग तिक्कना का जो स्वागत हुआ, वह उल्लेखनीय है।

आँगन में बैठे हुए बूढ़े पिता फटकारते हैं—

'कोडुक! ई वंशंबु कडु दोड्डदोयि, पेद्दकालमुनाडु पेरु मोसिनदि,
पुलिकडुपुन गोर्रे पुट्टुचंदंबुन, गलिगिति ना इंति गर्भंबुनंदु,
मगतनंबुन बुट्टि मगवाडवनुचु, पगतुकु वेन्निच्चु प्राणंबदेल?
परुलकुनोडि यी यवनि यवनिमनकन्न, सरग रणभूमिलो समयुट मेलु,

(हे पुत्र ! हमारा वंश बहुत गौरवपूर्ण है। बहुत पहले से इस वंश ने बड़ा नाम पाया है। व्याघ्र के गर्भ से भेड़ के समान, मेरी पत्नी के गर्भ से तुम जनमे। पुरुष होकर पैदा हुए हो, शत्रु को पीठ दिखाने वाला वह प्राण किस काम का ? शत्रुओं के हाथ हार कर जीने की अपेक्षा, रणभूमि में मरना श्रेष्ठ है।) और देखिये पत्नी ने क्या किया।

'अक्कड़ मंचंबु नड्डुं पेट्टि, अद्देरु पसुपु नमरंग नुंचि,
कूर्चुंडि स्नानंबु गोब्बुन जेयुड, × × × ×

[वहां (स्नानागार में) पलंग की ओट में आधी सेर हल्दी रखकर, उसने कहा बैठकर (स्त्रियों के समान) फौरन स्नान कीजिये,]

माता ने भोजन में फटे-दूध डाला और कहा :—

'यरुलतो-बोराडि यटुमीद नीवु, विरिगिन निनु जूचि विरिगेनु बालु'

(शत्रुओं के सामने तुम्हारे शौर्य को टूटते देख, दूध भी फट गया।)

इन बातों को सुनने के बाद वीर कहीं घर में टिक सकता है ? उसी समय तिक्कना तलवार लेकर, अकेले ही युद्ध-क्षेत्र में गया और हजारों को मारकर, अन्त में एक ब्राह्मण के हाथ मरकर अमर हो गया।

वीर रसात्मक गीतों में बोब्बिलि कथा का श्रेष्ठस्थान है। सन् १७५७ में बोब्बिलि के राजा रंगाराव और विजय नगर के राजा विजयरामगजपति के प्रचण्ड युद्ध का वर्णन है इस वीर गीत में। विजयरामराजु ने फ्रेंच सेनापति बुस्सी की सहायता प्राप्त की। चारों ओर से घिरकर, मृत्यु को सामने देखते हुए भी बोब्बिलि के नर-नारियों ने जिस वीरता का प्रदर्शन किया, वह अपूर्व है। प्रत्येक की जबान पर ये ही शब्द थे :—

'रामराम अनन्त कालमु राज्यमेललेमु
जगमु वुंडकालमु वरकु मनमु वुंडबोमु'

(हाय राम ! अनन्त समय तक राज्य कर सकेंगे ? संसार जब तक रहेगा, तब तक जीवित रह सकेंगे ? [नहीं] )

बोब्बिलि के वीर श्रेष्ठ तांड्र पापारायडु का नाम तो 'वीरता' का दूसरा नाम ही बन गया है।

सन् १९२० के करीब दो वर्ष तक, भारत में ब्रिटिश साम्राज्य को कंपा देने वाले वीर अल्लूरि सीताराम राजु की कथा भी वीरगीत के रूप में निबद्ध है।[13] सीतारामराजु की मृत्यु पर रोने वाले आन्ध्रदेश को देखिये :—

'रालिनदोक नक्षत्रंबवनिकि, रामराजु ओरिगे,
तलचिराजु ना मन्यसोदरुलु वलवल एडिचारू,
जलजल कन्नीरोलक बोसे मन तेलुगु देशमन्ता।'

---

१३. विशेष परिचय के लिये देखिये 'हिन्दी मिलाप' (१५. ८. ५९)।

(रामराजु धराशायी हो गये, मानों एक नक्षत्र टूट गिरा हो। उन्हें याद कर, उस प्रान्त के लोग बिलख-बिलखकर रोने लगे। सारा तेलुगुदेश आठ-आठ आँसू रोता रहा।

अर्द्ध-ऐतिहासिक वीर गीतों में काल-प्रवाह के कारण, मूल गीत इतने परिवर्तित हो जाते हैं कि उनमें से ऐतिहासिक तथ्यों को खोज निकालना दुष्कर हो जाता है। परन्तु Social History (सामाजिक इतिहास) लिखने वालों के सामने इन गीतों का भी महत्व है। इनमें बहुत से गीत वीरों की व्यक्तिगत जीवनियों से संबंधित हैं, जिनसे इतिहास का अपेक्षाकृत कम संबंध है। कोटप्पकोंडा के चिन्नप्परेड्डी, (अंग्रेजी सेना से लड़ने वाला) गुर्राल गोपी रेड्डी, बंगारु तिम्मराजु कथा (पेनुगोंडा के देवरायलु से संबंधित), प्राु मराठील कथा (पत्तिकोंडा के मराठी राजाओं से संबंधित), देशिंगुराजु कथा (सन् १७१३ के चेंजिराज परिवार से संबंधित) आदि गीतों का अभी विशेष अध्ययन होना चाहिये।

तेलंगाने में प्रचार में जो वीर गीत हैं, वे निम्न हैं: राणी शंकरम्मा, सोमनाद्रि, सर्वे वेंकट रेड्डी, सदाशिवरेड्डी आदि।

**धार्मिक**

भक्ति और वेदान्त (दर्शन) के लिये प्रख्यात हमारे देश में शान्त रसात्मक गीतों का प्राचुर्य होना स्वाभाविक ही है। जन सामान्य में, आज भी—इस वैज्ञानिक युग में भी—धर्म का जितना महत्व है, उतना अन्य किसी का नहीं। हमारे देश में सामाजिक, राजनैतिक आदि सभी आन्दोलनों को परिचालित करने वाला धर्म ही रहा है। भारत में व्याप्त सभी प्रकार के धार्मिक आन्दोलनों का प्रभाव आन्ध्र देश पर पड़ा है और उनसे प्रभावित हो जनता ने अपने उद्‌गारों को गीतों के रूप में व्यक्त किया है। प्रारम्भ में आन्ध्र देश पर बौद्ध और जैन धर्मों का पर्याप्त प्रभाव रहा है पर बाद में आने वाले वीरशैव सम्प्रदाय की बाढ़ में वे इस तरह बह गये कि केवल नाम ही रह गया, तत्संबंधी सारा साहित्य नष्ट हो गया है। शैव और वैष्णव सम्प्रदायों का प्रचार रहने पर भी आन्ध्र देश में अद्वैत वेदान्त का ही अत्यधिक मान है।

शैव संबंधी लोकगीतों में तुम्मेद, प्रभात, वालेशु, गोब्बि पदमुलु मुख्य हैं। शैव धर्म के प्राबल्य के काल में (१२वीं शती से १४वीं शती तक) जन-साहित्य को जो प्रोत्साहन मिला, वह निम्न शब्दों में व्यक्त है। "वैदिक सम्प्रदाय में स्त्रियों और ब्राह्मणेतरों को मंत्र व पूजा की योग्यता नहीं रह गई। वीरशैव सम्प्रदाय की प्रबलता ने भक्ति को ही परमलक्ष्य बनाकर सभी जाति वालों और स्त्रियों को पूजा पाठ का अधिकार दिया। सौभाग्य और सन्तान की इच्छा से स्त्रियों का व्रत आदि करना, वीरशैव सम्प्रदाय के प्रारम्भ के बाद ही शुरू हुआ। हमारे स्त्रियों के व्रतों में नब्बे प्रतिशत गौरी माई से संबंधित ही हैं। धार्मिक प्रचार के साधन के रूप में 'जानुतेनुगु' (जन सामान्य की भाषा) में रचनाएँ करने वाले वीरशैवों ने इन व्रत-कथाओं को भी उसी भाषा में और 'द्विपदा' छन्द में तथा गेय रूप में लिखा है। इसी प्रकार अन्य कथाओं की रचना भी 'द्विपदा' और 'सीस' आदि प्रवाहयुक्त छन्दों में शुरू होकर, हमारे साहित्य में 'स्त्री-गीत'

नामक लोकसाहित्य की एक शाखा का मूलकारण बना।[१४] इस प्रकार वीरशैव साहित्य, जनता की सहानुभूति प्राप्त कर फूला और फला।

दक्ष का यज्ञ, गंगा विवाह, गंगा गौरी संवाद, ईश्वर भृंगी संवाद, लक्ष्मी पार्वती संवाद, त्रिपुरासुर संहार, मुराभाण्डेश्वर, मार्कंडेय जन्म, श्रीयाल की कथा, भल्लाण-राजा की कथा, मल्लन्न कथा आदि हैं। इनमें कुछ पुराणों पर आधारित हैं तो कुछ भगवान शिव की भक्ति के महत्व को प्रदर्शित करने वाले हैं। शिव भक्तों (जिन्हें जंगम् भी कहते हैं) की कथाओं में बसवय्य कथा, कक्कय्य (एक भिश्ती) कथा, निर्जलिंग चिक्कय्य (एक चोर) कथा, सारंगधर की कथा आदि हैं।

१५वीं शती के गौरनामात्य द्वारा द्विपदा छन्द में रचित 'नवनाथ चरित्र' हिन्दी साहित्य के विद्यार्थी के लिये अत्यन्त महत्वपूर्ण है। इसमें मीनानाथ (मत्स्येंद्रनाथ ? सारंगधर, गोरक्षनाथ (गोरखनाथ ?) मेघनाथ, नागार्जुन, खणिकाख्य नाथ आदि नवनाथों की कथाएँ हैं।

जब जब धर्म की ग्लानि होती है तब तब अवतार लेने वाले भगवान विष्णु के माहात्म्य और विष्णु-भक्ति के प्राधान्य को घोषित करने वाले अनेक लोकगीत हैं। वरदराजु के विवाह-गीत, आण्डाल की कथा, तिरुमंत्रमुगीत, लक्ष्मी देवी वर्णन, चेंचीतकथा, रुक्मांगद महाराज की कथा, चिन्नम्म कथा, श्रीरंग महात्म्यमु, दशावतारगीत आदि वैष्णव-सम्प्रदाय संबंधी लोकगीतों में मुख्य हैं।

सगुण भक्तिपरक अन्य गीतों में संकीर्तन, पद, जागरण गीत, लोरियाँ आरतियाँ आदि हैं। निम्नोद्धृत लोरी आन्ध्रदेश में बहुत प्रचलित है।

'जो अच्युतानन्द जो जो मुकुन्दा, रारा परमानन्द रामगोविन्द जो जो
तोलुत ब्रह्माडंबु तोट्टि गाविची, नालुगु वेदमुलु गोलुसुलमरिंची
बलुवैना फणिराजु पान्पुनमरिंची, चेलियडोलिकलोनचेर्चि लालिंची...

(हे अच्युत! हे मुकुन्द! हे परमानन्द प्रद रामगोविंद! सोजा, सोजा। ब्रह्माण्ड को ही पालना बनाकर, चारों वेदों को उसकी साँकले बना, शेषनाग को ही बिछौना बनाकर, सखियों ने झूला झुलाया)

स्त्रियों का स्वभाव है कि एक दूसरे को ताना देना और दूसरों से अपने को बड़ा सिद्ध करने का प्रयास करना। यह मनोवृत्ति 'लक्ष्मी-पार्वती-संवाद' में प्रभावशाली ढंग से चित्रित है जिसमें लक्ष्मी जी के आक्षेपों का समाधानकर पार्वती जी शिवजी की महानता और बड़प्पन को सिद्ध करती हैं। गीत इस प्रकार है:—

लक्ष्मी—गौरिदेव, नी शंभुनि गळमुन नलुपेमिटि ओ यम्मा ! नलुपेमिटे ओ कोम्मा !
पार्वती—नारीमणि, नी विष्णुदेवुडु नलुपुगाडटे कोम्मा ! नलुपु गाडटे

('ओ गौरी ! तुम्हारे शंभु का गला काला क्यों है ? तो पार्वती कहती हैं कि तुम्हारे विष्णु का सारा शरीर ही काला है !)

---

१४. देशी सारस्वत विभूति: श्री श्रीपाद गोपालकृष्णमूर्ति।

लक्ष्मी—बिरुदुलेक नीमगडु जगमुलोभिक्षमेत्तुटेमम्मा, भिक्षमेत्तुटेमम्मा
पार्वती—बलमुलेकनु बलिचक्रवर्तिवि अडुगलेदटे कोम्मा अडुगलेदटे कोम्मा

('बिना मान के तुम्हारा पति जग में भीख माँगता फिरता है।' 'तो क्या तुम्हारे पति ने बलि के सामने हाथ नहीं फैलाये ?')

लक्ष्मी—शंकलेकनु शंकरुकरमुन जिकयुंडुटेमम्मा, जिकयुंडुटेम्मा
पार्वती—शंकलेकनु वनवासमुकेगुट जिंक,
कोरकु सुमिकोम्मा, जिंक-कोरकुसुमि कोम्मा

('बिना संकोच किये शंकर हाथ में हिरन क्यों लिये रहते हैं ?'
'बिना कभी हिचक के वनवास में हिरन के पीछे गये थे तुम्हारे पति।')

लक्ष्मी—हद्दुलेक नीमगडु सगमु आडुरूपमेम्मा, आडुरूपमेम्मा
पार्वती—मुद्दुगुम्म नी पेनिमिटि मुरहरि मोहिनिगाडाकोम्मा, मोहिनिगाडा कोम्मा

('तुम्हारे पति का आधा शरीर तो स्त्री बना हुआ है !'
'तुम्हारा पति तो पूरी तरह (स्त्री) बन गया था न !')

लक्ष्मी—चिंतलेक नी कान्तुडु ब्रह्मशिरमुद्रुंचुटेम्मा, शिरमुद्रुंचुटेमम्मा
पार्वती—पन्तमुतोडुत रावण ब्रह्म तल द्रुंचडा कोम्मा, तल द्रुंचडा कोम्मा

(बिना आगे पीछे सोचे तुम्हारे पति ने ब्रह्मा जी का सिर काट दिया न !'
'तुम्हारे पति ने जानबूझ रावण ब्रह्म का वध किया है न !')

लक्ष्मी—पार्वति नीविभुनकु निलवुन पामुलन्नवेमम्मा, पामुलुन्नवेमम्मा
पार्वती—जलनिधितनय नीपेनिमिटि पन्नग शयनुडु गाडा, पन्नगशयनुडु गाडा

(ओ पर्वतपुत्री ! तुम्हारे पति के शरीर पर साँप लिपटे हुए हैं न !')
'ओ जलधिपुत्री ! तुम्हारा पति तो शेषशायी है न !')

लक्ष्मी—एमिलेक नी कान्तुडु मुसलिएद्दु एक्कुटेमम्भा, एद्दुएक्कु टेमम्मा
पार्वती—पन्तमु तोडुत रेपल्लेवाडलो पसुल गायडा कोम्भा, पसुल गायड़ा को कोम्मा

('क्या कमी हुई जो तुम्हारा पति बूढ़े बैल पर चढ़ता है ?'
तुम्हारे पति को क्या हुआ जो रेपल्ले (व्रज) में गाय चराता है।')

पहले बताया जा चुका है कि आन्ध्रदेश मे अद्वैत दर्शन का अधिक प्रचार है। अभेदवाद को मानने वाले इन सन्तों की तुलना हिन्दी साहित्य के निर्गुण ज्ञानाश्रयी सन्तों से की जा सकती है। आन्ध्र के प्रसिद्ध सन्त वेमना को 'आन्ध्र का कबीर' मानते हैं।[१५] वेदान्त और तात्त्विक विषयों के चिन्तन से भरे होने के कारण, इन्हें 'तत्त्वमुलु' कहते हैं। तत्त्वों का प्रचार अधिकतर समाज के निम्न जातियों में पाया जाता है। इन तत्त्वों में सामाजिक ऊंचनीच का खंडन, पूजादि कर्मकाण्ड का तिरस्कार, गुरुभक्ति, वैराग्य

१५. आन्ध्र के कबीर—वेमना : श्री राममूर्ति 'रेणु'

आदि के साथ रहस्यवाद की झलक भी दिखाई है। पोतूलूरि वीरब्रह्मम, वेमना, सिद्धप्पा, शेषाचल स्वामी, भोजदासु, एड्ल रामदासु, वेंकटदासु आदि कई सन्तों ने, इस प्रकार के तत्त्वों की रचना की है। इन सभी ने निर्गुण पंथी सन्तों की शैली में सनातनी पाखंड और अन्धविश्वासों की कड़ी आलोचना करते हुए, शुद्ध अद्वैत भाव का उपदेश दिया है। इनमें से कुछ मुसलमान सन्त भी पाये जाते है। एक सन्त गाते है :—

'गूटिलो चिलुकेदिरन्ना, गूडुचिन्नबोयरन्ना'

(नीड़ का पंछी कहाँ ? पंछी के अभाव में नीड़ उदास बना हुआ है।)

इन तत्त्वों में आत्मबोधामृत तत्त्वमुलु, कलिप्रमाण तत्त्व कीर्तनलु, कालज्ञान-तत्त्वमुलु, ब्रह्मानन्द कीर्तनलु, ज्ञानबोधाध्यत्मलु आदि मुख्य हैं। तुम्मेद पदमुलु और एललु बहुत प्राचीन माने जाते हैं पर इन्हें ठीक ठीक अर्थ में 'तत्त्वमुलु' नहीं माने जा सकते। इनमें कुछ उलटबाँसियों के ढंग पर भी रचे गये हैं। एक उदाहरण लीजिए:--

'मेनलु मीदुग तललु क्रिन्दुग मोलचियुन्नदि वृक्षम्
मोदमलरग मिंटि मीदनु मदगजमु विहरिंचेरा
चिदमिपट्टिन बंटु कँवडि चीम एनुगुमिंगेरा
विर्रवीगुचु केक वेयुचु यीग मंचमु मिंगेरा'

(एक वृक्ष उगा है जिसके डाल और पत्ते नीचे की ओर हैं तो जड़ें ऊपर की ओर हैं। प्रसन्न हो मस्त हाथी आकाश में विचर रहा है। बलवान सिपाही के समान चींटी हाथी को निगल गया। घमंड से ललकारते हुए मक्खी पलंग निगल गई)

इस उलट बाँसी में वृक्ष का अर्थ

एक तुम्मेद पद लीजिये :—

'शिवशिवयन मेलु तुम्मेदा, शिवुडंटेने विनमेलु तुम्मेदा
श्रीकंठुडनु पूवु तुम्मेदा, मूडु लोकम्मुलायेनु तुम्मेदा
साकारमै युंडु तुम्मेदा, परमैकान्तमुन जूडु तुम्मेदा
आरु रेकुल पूवु तुम्मेदा, अदिमीरुने वासनल तुम्मेदा
वेरु सेयक नीवु तुम्मेदा, शिवु जेरि भजियिंपवे तुम्मेदा
अष्टदलमुल मीद तुम्मेदा, नीवंटि चरियिंपवे तुम्मेदा'

(यहाँ 'तुम्मेदा' (भ्रमर) शब्द मन के लिए आया है। हे मन ! शिव का स्मरण कर, उसी में तेरी भलाई है। श्रीकंठ नामक एक पुष्प, तीन लोकों में परिवर्तित हो गया। वह साकार है, तू अपने मन में देखले। छः पंखुडियों का एक पुष्प है, जिसमें अत्यन्त सुगन्ध है। इसलिये तू एकाग्र होकर शिव का भजन कर। अष्टदल कमल पर तू विचरण कर।)

इसमें छः पंखुड़ियाँ षट्चक्र के लिये और अष्टदल, अष्टदल कमल के लिये आया है।

इसी प्रकार, योगसाधना में मन की उज्ज्वलता को दरसाने वाला एक 'पुल' का उदाहरण लीजिये :—

'सन्नंपू दिड्डिवाकिट पुन्नमा वेन्नेल बैटा—
किन्नेरालनादमिंटीरा-ओ यागंटिलिंगा-विनग विनग विन्तलायेनुरा
चिच्चुकडुपुन चीकटि बुट्टे-चीकटिकडुपुन चिच्चुबुट्टे
चिच्चु चीकटेकमैतेनू-ओ यागंटिलिंगा-चिन्नेलाडिबाल पुट्टेनू'

(तंग दरवाजे से बाहर की ओर देख, पूनम की चाँदनी फैली है। किन्नेराओं का नाद सुनते-सुनते आश्चर्य हो रहा है। ज्वालाओं में अन्धकार और अन्धकार में ज्वाला उत्पन्न हुई है। इस ज्वाला के और अन्धकार के एकमेकम होने से, सोलहों कलाओं वाली बाला पैदा हुई है।)

कर्मकांड पर स्त्रियों की अधिक भक्ति श्रद्धा होती है। इस शाखा में स्त्रियों से संबंधित व्रत, त्योहार आदि से संबंधित गीत है, जो अधिकतर कथा रूप में (गद्य-काव्य की शैली में) प्रवाहयुक्त संगीतमयी भाषा में हैं। इनमें मदनद्वादशीव्रतमु, नित्यदानव्रत, पसुपुगौरी नोमु, मूसि वायनमुल नोमु, वरलक्ष्मी पाट (गीत), सावित्री-गौरीदेवी पाट (गीत), शुक्रवारपुसेव पाट, लक्षवत्तुल नोमुपाट, श्रावणशुक्रवारमुनोमु आदि हैं।

इस प्रकार ग्रामीणों ने मुक्ति साधना के लिये भक्ति, ज्ञान, कर्ममार्गों से संबंधित साहित्य को रच लिया है।

**स्त्रियों के गीत :**

जीवन के पारिवारिक पहलू में स्त्री का स्थान अधिक महत्वपूर्ण है। अतः पारिवारिक-जीवन संबंधी गीतों का सम्बन्ध भी स्त्रियों से ही है। इस शाखा के लोक-गीतों को 'स्त्रियों के लोक गीत' कहते हैं।

स्त्रीत्व की सफलता मातृत्व में ही है। मातृत्व और वत्सल रस को आधार बनाकर लिखे गये गीतों की संख्या बहुत ज्यादा है। इन गीतों में सन्तान-प्राप्ति के लिये नारी के हृदय की उत्कट अभिलाषा, तत्प्राप्ति के लिये किये जाने वाले अनेक व्रतों-पूजाओं के वर्णन के साथ, लोरियों बालक्रीडाओं का समावेश भी होता है। माता अपनी सन्तान को राम या कृष्ण के रूप में या सीता या पार्वती के रूप में देखती है और हर्षपुलकित होती है।

वैवाहिक कार्यक्रम को आधार बनाकर रचे गये गीतों की संख्या कम नहीं है। दहेज से लेकर बिदाई तक होने वाले प्रत्येक कार्य के समय गाये गाने वाले गीत हैं। ससुराल जाने वाली वधू को उपदेश देने वाले गीत भी हैं जिनमें सास-ससुर, ननद-जेठ, देवर, पड़ोस के लोग-लुगाई इत्यादि से समुचित रूप से पेश आने की शिक्षा दी गई है।

'सास के कठोर कार्य, निर्दय-व्यवहार, बहुओं को ताने, ननदों के घातक कृत्य आदि का वर्णन करने वाले गीत हैं जिनमें करुण रस की झलक दिखाई पड़ती है। स्त्रियों

के गीतों की विशेषता है कि इनमें सामाजिक जीवन का समग्र रूप, सामाजिक रीति-रिवाजों का ब्योरेवार विवरण आदि सुचारु रूप से परिलक्षित हो सकते हैं। जन्म-मरण, त्योहार-उत्सव, शादी-ब्याह, आदर-सत्कार तिरस्कार, आशा-निराशा आदि सभी स्त्रियों के गीतों के विषय बने हुए हैं।

मनोरम भाव, ललितललित शब्द, सुकोमल शैली में रची लोरियों में मातृत्व का निचोड़ भरा हुआ है। माता अपने लाड़ले का वर्णन कर रही है:—

पापायि कन्नुलु कलुवरेकुल्लु पापायि जुंपालु पट्टुकुच्चुल्लु
पापायि दन्तालु मंचि मुत्यालु पापायि चेतुलु पोट्लकायलु
पापायि पलुकुलु पंचदार चिलकल्लु, पापायि चिन्नेलु बालकृष्ण वन्नेल्लु

× × ×

वीथिनेंदरु वुन्न विसरद गालि, रच्चनेन्दरु वुन्न रादम्म वाना
चिन्न ना अब्बायि वीथिनिलुचुंटे, मोगिलिपुव्वुल गालि मुत्याल वाना

(मेरे लाड़ले की आँखें कमल की पंखड़ियाँ हैं, उसके जुल्फ़ रेशम के से हैं, उसके दाँत खरे मोती हैं, हाथ खीरे से हैं, उसकी बोली शक्कर के तोलों सी है, क्रीड़ाएं बालकृष्ण की सी हैं, × × × सड़क पर कितने भी लोग रहें, हवा नहीं चलती, आँगन में कितने भी जमा हों वर्षा नहीं होती पर मेरा नन्हा सड़क पर आ जाय तो केतकी की हवा और मोतियों की वर्षा होती है।)

सास और बहू का संवाद सुनिये:—

अत्त:—कोडला ! कोडला ! कोडुकु पेक्लामा,पच्चिपाल मीदि मीगडालेवि ?
वेडिपाल मीदि वेन्नलु येवी ? नूने मुन्तलमीदि नुरुगुल्लु येवि ?

(सास कहती है:—ओ बहू ! मेरे लड़के की औरत ! कच्चे दूध पर मलाई कहाँ गई है ! गरम दूध पर मक्खन कहाँ गया है ? तेल के घड़े में फ़ेन कहाँ है ?)

कोडलु:—अत्तरो ओ यत्तआरल्लयत्त, पच्चिपाल मीद मीग डुन्टुदा ?
वेडिपाल मीद वेन्नलुंटाया, नूने मुन्तल मीद नुरगलुंटाया

(बहू जवाब देती है: ओ सास ! पीड़ित करने वाली सास ! कच्चे दूध पर कहीं मलाई होती है ? गरम दूध पर कहीं मक्खन होता है ? तेल के घड़े में कहीं फ़ेन होता है।)

इस प्रकार के सास-बहू-संवाद बहुतायत से मिलते हैं। इन्हीं को लक्ष्य में रखकर एक कहावत भी चल पड़ी है कि 'अत्तलेनिकोडलुत्तमुरालु, कोडलुलेनि यत्त गुणपन्तुरालु।' (सास के बिना बहू उत्तम स्त्री है तो बहू के बिना सास गुणवती है।)

सुखपूर्ण समष्टि परिवार के सुन्दर चित्र को अंकित करने वाला निम्नगीत बहुत प्रचलित है। इस गीत में आन्ध्र के समष्टि कुटुम्ब की सुन्दर झाँकी देखने को मिलती है।

कलवारि कोडलु कलिकि कामाक्षि, कडुगुचुन्नदि पप्पु कडवलो बोसि
अप्पुडे वच्चाडु आमे पेद्दन्न, काल्लिकु नील्लिच्चि कन्नीरुनिंपे

(सम्पन्न गृह की बहू कामाक्षी, घड़े में डाल दाल धो रही है। उसी समय उसका बड़ा भाई आया। पैर धोने के लिये पानी देकर, उसने आँखों में आँसू भरे।)

अन्न: एन्दुकू कन्नीरु ? एमिकष्टालु ? तुडुचुको, चेल्लेला मुडुचुको कुरुलु
पेट्टुको सोम्मुलु कट्टु को चीरे, एत्तुको बिड्डनु एक्कु अन्दलमु
चेरि मी यत्तमामलकु चेप्पिरावम्म ।

(भाई ने कहा 'आँखों में आँसू क्यों ? क्या कष्ट है तुम्हें ? पोंछ लो आँसू, केश गून्थ लो, जेवर पहन लो, साड़ी पहन लो और बच्चे को गोद लेकर, गाड़ी पर चढ़ो, अपने सास-ससुर की अनुमति ले लो ।

कोडलु:—कुर्चिपीट मीद कूर्चुन्न अत्त, मायन्नलोच्चारु मम्मंपुतार ?

(बहू सास से पूछ रही है: ओ तिपाई पर बैठी सास ! हमारे भाई आये हैं, हमें भेजेंगे क्या ?)

अन्न:—नेनेरुग नेनेरुग, मी मामा नडुगु

(सास ने कहा: मुझे नहीं मालूम, अपने ससुर से पूछ लो ।)

कोडलु: पट्टेमंचमुमीद पडुकोन्न माम ! मायन्नलोच्चारु मम्मंपुतार ?

(बहू ससुर से पूछ रही है: सुन्दर पलंग पर लेटे ससुर जी ! हमारे भाई आये हैं, हमें भेजेंगे ?)

ससुर: नेनेरुग नेनेरुग मी बाव नडुगु

(ससुर ने कहा:—मुझे नहीं मालूम, अपने जेठ से पूछ लो !)

को: भारतं चदिवेटि बाव पेदबाव, मा यन्नलोच्चारु, मम्मंयुतार !

(बहू जेठ से पूछ रही है: 'महाभारत का अध्ययन करने वाले ओ जेठ ! हमारे भाई आये हैं। हमें भेजेंगे क्या ?)

बाव: नेनेरुग नेनेरुग मी यक्क नडुगु

(जेठ ने कहा:—मुझे नहीं मालूम, अपनी बहन से पूछ लो ।)

को: वंटलुजेसेटि ओ यक्क गारू ! मा यन्नलोच्चेरु, मम्मंपुतार ?

(बहू जेठानी से पूछ रही है:—भोजन बनाने वाली ओ बहन ! हमारे भाई आये हैं, हमें भेजेंगे ?)

तोडिकोडलु: नेनेरुग नेनेरुग नी भर्त नडुगु

(जेठानी ने कहा: मुझे मालूम नहीं । अपने पति से पूछ लो ।)

कोः रच्चलो कूर्चुन्न राजेंद्र भोगी ! मायन्नलोच्चेरु, मम्मंपुतार ।

(बहू पति से पूछ रही है: सड़क पर चबूतरे पर बैठे राजेंद्र भोगी ! हमारे भाई आये हैं, हमें भेजेंगे ?)

भर्तः पेट्टुको सोम्मुलु कट्टुको चीरे, पोयिरा सुखमुगा पुट्टिटनिंटिकि

(पति ने कहा: जेवर पहन लो, साड़ी पहन लो और सुख से मायके जाकर आओ ।)

कोः इरुगुपोरुगुलार ओ अम्मलार, चेल्लेक्क पेक्किकल्लु सेविंचबोइ
मरदुल पेक्किकक्कि मरलिवच्चेनु, इरुगक्क पोरुगक्क इदे पोयिक्तु ।

(बहू पड़ोसिनों से कह रही है : ओ पड़ोसिनो ! बहनों की शादियों के लिये जाकर देवरों की शादियों में वापस आऊँगी । अपने मायके हो आऊँगी, अनुमति दीजिये ।)

**श्रामिक गीत**

शारीरिक श्रम करते समय थकावट को दूर करने के लिये या कार्यभार को हलका करने के लिये कुछ गुनगुना लेना मनुष्य का स्वभाव है । ऐसे गीतों का प्रवाह या गति, किये जाने वाले काम के अनुरूप होता है । इस प्रकार के गीतों को 'श्रामिक गेय' (श्रम करने वालों के गीत) कहते हैं । अपने पेशे से संबंध रखने वाले वस्तु को या किसी शृंगारिक या कारुणिक कथा को या भक्ति भाव को लिये होते हैं ये गीत । इन गीतों में कभी-कभी शृंगार रस की अभिव्यक्ति बड़ी निम्नस्तर की हो जाती है । कभी-कभी गाली-गलौज की हद तक पहुँच जाती है । इन गीतों में हाथ-पैर के संचालन की विशेष गति ही उनमें ताल और लय को उत्पन्न करती है ।

मल्लाहों के गीत इस प्रकार के होते हैं ।

गंगम्म तल्लिकि चेंगलव पूदंड-कालिंदिकि तेल्ल कल्वदंड
जोरसेयि वारसेयि-जोरसेयि बारसेयि
गोदावरि तल्लिकि गोज्जंगि पूदंड-सरसोति की सन्नजाजिदंड
जोरसेयि बारसेयि-जोरसेयि बारसेयि

(गंगा माई को लाल कमलों का हार, कालिंदी को श्वेत कमलों का हार, गोदावरी को गुलाबों का हार, सरस्वती को चमेलियों का हार,)

इस प्रकार सभी नदियों को फूल-मालाएँ अर्पित करते हुए, प्रत्येक चरण के बाद 'जोरसेयि बारसेयि' दुहराते हैं जो पतवारों के संचालन की गति के अनुकूल पड़ता है ।

चरखे के गीत, अनाज कूटते समय के गीत, पानी निकालते समय के गीत, खेत निराते समय के गीत इत्यादि श्रामिक गीत हैं । प्रत्येक पेशे से संबंधित कई गीत मिलते हैं । असाढ़े गीत और रसिया गीतों के समान ही आषाढ़ में और अनाज बोते समय गाये जाने वाले गीत भी पाये जाते हैं ।

## बच्चों के गीत

"शिशुर्वेत्ति, फणिर्वेत्ति" की उक्ति के अनुसार बच्चों के लिये संगीत (Music) और गीत का विशेष आकर्षण है। बच्चों के गीतों के दो प्रकार हैं। एक तो जो खास बच्चों के लिये लिखे गये हैं और दूसरे वे जो बच्चों द्वारा बनाए गये हैं। पहले प्रकार की रचनाओं में लोरियाँ और कथात्मक गीत आते हैं। छोटे बच्चे लोरी का अर्थ तो समझ नहीं पाते पर उनका संगीत उन्हें निद्रामग्न कर देता है। बच्चों के अन्न खिलाते समय चंदमामा को बुलाने वाले गीत, उनके तालियाँ बजाते समय के गीत, चलते समय के गीत आदि में माता अपने बच्चों को प्रोत्साहित करती हुई, उनकी सफलता पर अपना आनन्द व्यक्त करती है। कथात्मक गीत भी इसी वर्ग में किये जा सकते हैं।

दूसरे प्रकार के गीतों में खेलकूद के गीत, दशहरे के गीत, संक्रान्ति के गीत आदि हैं।

बच्चों के गीतों की मुख्य विशेषताएं अक्षरमैत्री, भाव सौंदर्य और उनकी सहज धारा, प्रवाहमयी शैली है।

अब कुछ ऐसे गीतों को लेंगे जो फुटकल हैं और किसी एक विशेष रस की अभिव्यक्ति करते हैं।

## शृंगारिक गीत

लोकगीतों में व्यंग्य रूप में और वाच्य रूप में शृंगार रस से युक्त अनेक गीत हैं। लोकसाहित्य का प्रेम नैसर्गिक है, अबाध है और है अदम्य। उन गीतों के नायक-नायिका शाश्वत यौवन से संपन्न और नितनूतन प्रेम से भरे दीखते हैं। इन गीतों में ग्रामीणों के प्रेमालाप, सामाजिक प्रथाओं का उल्लंघन (प्रेम के लिये), परस्पर प्रेम और आकर्षण बड़े ही सहज-स्वाभाविक-रूप में चित्रित हैं। इनमें प्रेम और जीवन अपने यथार्थ रूप में दृष्टिगोचर होते हैं। पौराणिक व ऐतिहासिक गीतों में जो शृंगार रस पूर्ण सन्निवेश हैं, उन्हें छोड़कर अन्य रचनाओं का परिचय यहाँ दिया जायगा।

शृंगार रस प्रधान गीतों में चल मोहन रंगा, वेंकय्या चन्द्रम्मा पाट, नारायणम्म पाट, गोंगूर पाट, सिरिसिरिमुव्व आदि खूब प्रचलित हैं।

"चलमोहन रंगा" का कुछ अंश लीजिये :—

कंटिकि काटुका बेट्टि, कडवा चंकानु बेट्टिट, कक्कुनीक्कु कडवा निंडेनु गदरा
।।चलमोहन रंगा।।
नाकू नावारू लेरु नीकुनी वारु लेरू, एटि ओड्डुन इल्लु कडदाम् पदरा
।।चलमोहन रंगा।।

(नायिका कह रही है कि आँखों में काजल लगाकर, घड़ा बगल में दबाकर, जब मैं पानी भरने चली, तो मेरी आँखों के पानी से ही घड़ा भर गया। मेरा अपना कोई नहीं और न तेरा कोई है। तब चल नदी के किनारे बसेरा कर लें।)

नायक में ईर्ष्या को पैदा कर, उसे अपनी ओर आकर्षित करने वाली चतुर नायिका का उक्ति-चमत्कार देखिये:—

नायिका: ओकरिकि चेतुलिच्चान्, ओकरिकि काल्लनिच्चान्,
ओकरिनि चेतोवट्टि कूकुन्नानोई बावा ! कूकुन्नानोई ।'

(किसी को हाथ दिये, और किसी को पैर दिये । और किसी एक को हाथ में लिये बैठी रही ।)

नायक: 'एवरिकि चेतुलिच्चाव्, एवरिकि काल्लनिच्चान्
एवरीनि चेतबट्टि कूकुन्नावे पिल्ला ! कूकुन्नावे ।'

(किसी को हाथ दिये और किसी को पैर दिये ? ए छोकरी ! बोल, किस को हाथ में लिये बैठी रही ?) तब नायिका उसकी ईर्ष्या को एकदम शान्त करते हुए, अपने वाक्-चातुर्य का प्रदर्शन करती है ।

'गाजुलकि चेतुलिच्चान्, कडियालकि काल्लनिच्चान्
डब्बुलिन चेतबट्टि कूकुन्नानोइ बावा ! कूकुन्नानोइ ।

(चूड़ियों को हाथ दिये और नूपुरों को पैर । हाथ में पैसे लेकर (तेरी बाट जोहती) बैठी रही ।

इस प्रकार के स्त्री-पुरुष के ध्वनि प्रधान संवादात्मक गीतों को 'तिल्लाले' कहते हैं । शायद वह शब्द 'तिल्लाना' का अपभ्रंश रूप हो ।

**अद्भुतरसात्मक गीत**

ग्रामीणों में ही क्या मानव स्वभाव में ही विचित्रता और अद्भुत रस के प्रति आकर्षण एवं जिज्ञासा पाई जाती है । किसी भी साहित्य में लीजिये, प्रारंभ में ऐयारी तथा जासूसी उपन्यासों का अस्तित्व देखा जा सकता है ।

साधारण विषयों को लेकर भी अलौकिक व अद्भुत कल्पनाओं का समावेश कर कई कथात्मक गीत रचे गये हैं । इनके रचयिताओं के कल्पना-चातुर्य की सराहना करते ही बनता है । मनुष्य आशाजीवी है । जीवन के अंधकारमय मार्ग में, वह आशा की ज्योति के सहारे आगे बढ़ता है । दुस्सह वेदना में या असंभव वस्तु की आशा में, किसी अलौकिक दैवी शक्ति का या मान्त्रिक तान्त्रिक की उपस्थिति से उलझन को सुलझा दिया जाता है और कथा के नायक से साधारणीकरण का अनुभव करने वाले श्रोता का हृदय सन्तोष व प्रसन्नता से भर जाता है ।

अद्भुत रसात्मक गीतों में 'बालनागम्म कथा' का विशेष प्रचार है । इस कथा का संबंध महबूब नगर जिले के पानगल्लु नामक राज्य से जोड़ा जाता है । किसी मान्त्रिक के जाल में फँसे हुए पिता, चाचा, अन्य राजा अपनी माता की रक्षा करने वाले बालवर्द्धि राजा की कथा है इस गीत में । 'गान्धारी कथा', 'धर्मांगदपामुपाट', 'कांभोजराजु कथा', 'पसल बालराजु कथा,' 'चिन्नम्म कथा' आदि अन्य कथाएँ हैं । इन

सबमें तान्त्रिक विधानों की प्रधानता है । ये सब कथाएँ आदर्शात्मक हैं । अद्भुत रसानुभूति और आदर्शात्मकता के कारण, ये कथाएँ पामर जनों में भक्ति-श्रद्धा के भावों को उत्पन्न कर सत्य और धर्म की विजय की घोषणा करती हैं ।

## करुण रसात्मक गीत

शृंगार और अद्भुत रस के बाद करुणरसात्मक गीतों का स्थान आता है । दैनिक जीवन में दु:ख की मात्रा ही अधिक दिखाई पड़ती है, अतः ये कथाएँ बड़ी ही हृदयद्रावक व मर्मस्पर्शी बन पड़ी हैं । इनमें किसी व्यक्ति के शौर्य व साहस के प्रति उत्साह और उसकी अकाल मृत्यु पर शोक आदि मुख्य विषय हैं ।

सास के सताने पर या पति के अत्याचार से पीड़ित होकर या ननदों या पड़ोसिनों के कुकृत्यों के संत्रस्त होकर आत्महत्या करने वाली नारियों की कथाएँ, अपनी लाज की रक्षा में काली का रूप धारण कर मरने वाली हुतात्माओं की कथाएँ, और दुर्विधि के कारण विपत्तियों के समुद्र में डूबने वाली ललनाओं की करुण गाथाएँ, आँसुओं से डूबी वाणी में निबद्ध हैं ।

कामम्म कथा, लक्ष्मम्म कथा, सन्यासम्म कथा, वीर राजम्म कथा ऐसे ही करुण रस प्रधान गीत हैं ।

## हास्य रसात्मक गीत

अब अन्त में हास्य रसात्मक गीतों की भी एक झाँकी लें । पौराणिक, ऐतिहासिक तथा धार्मिक गेयों में कहीं कहीं हास्य का पुट दिखाई देता है जैसे ऋष्य शृंग का वर्णन, कुंभकर्ण की निद्रा, वैवाहिक गीत आदि । केवल हास्य गीत बहुत कम हैं । कुछ गीतों में कोमल हास्य है तो कुछ में असभ्यता की हद तक पहुँच गई है । ये हास्य गीत उक्ति वैचित्र्य (wit) और हास्योत्पादक पात्रों द्वारा ग्रामीणों के जीवन में सरसता व सुख का संचार करती हैं । कुछ अधिक्षेप गीत (parody) भी मिलते हैं ।

## गाने वाली जातियाँ

आन्ध्र देश में, इन लोकगीतों को गाने वाली कुछ विशिष्ट जातियाँ हैं । लोक गीतों को सुनाते हुए देश में भ्रमण करते हुए, ये लोग अपना पेट पालते हैं । यों कहें तो ठीक होगा कि लोकगीतों को गाते फिरना ही इनका पेशा है पिच्चुकगुन्टुलु, शारदाकाँड्रु, वीरमुष्टुलु, जंगमुलु, दासरलु, भागवतुलु, बीरन्नलवारु, सुद्दुलु, गोल्ललु, गंगिरेद्दुलवारु, बुडबुडकल वारु, बवनीलु, जक्कुलु, बोम्मलाटगाँड्रु आदि इनमें से कुछ के नाम हैं ।

तेलुगु के देशी छन्द लय प्रधान मात्रागण बद्ध हैं । इस प्रकार की रचनाएँ तमिल मलयालम और कन्नड़ में पाई जाती हैं । तमिल के ओरुडमोनै, कूरैमोनै, तोड़ै आदि और कन्नड़ के भामिनिषट्पदी, भोगषट्पदी, वार्धिकषट्पदी, ललित, मन्दानिल आदि के समान ही तेलुगु में भी द्विपदा रगड़, मध्यावकर, आदि हैं । ये गीत साधारणतः तीन, चार, पाँच, छ, सात या आठ मात्राओं की आवृत्ति पर बनते हैं । त्रिश्र (तकि टः तीन मात्राएँ) चतुरश्र (कि ट त कः चार मात्राएँ), खंडगति (त कि

ट कि टः पाँच मात्राएं) मिश्रगति (त क कि ट तकः छः मात्राएँ या तकिट किटतकः सात मात्राएँ या किटतक किटतकः आठ मात्राएं) आदि मात्राओं की आवृत्ति और गति के अनुसार लिखे जाते हैं ये गीत ।

## लोकगीतों के अध्ययन का महत्त्व :

लोकगीतों के अध्ययन से पता चलेगा कि भाव और कला की दृष्टि से ये गीत परिष्कृत साहित्य से किसी भी तरह निम्नस्तर के नहीं हैं । अज्ञात शिल्प, अज्ञात कला और सहज निसर्ग रमणीयता को लेकर ये गीत बरबस हमारे हृदय को प्रभावित करते हैं । मेथ्यू अरनाल्ड के कथन के अनुसार (It comes from the heart, hence it touches the heart) ये गीत बड़े ही मर्मस्पर्शी होते हैं ।

लोकसाहित्य में यद्यपि ऐतहासिक व सामाजिक व्यवस्थाओं की स्पष्ट छाप रहती है, मौखिक प्रचार से ही जीवित रहने के कारण, वे इतने अस्पष्ट व परिवर्तित हो गये हैं कि मूल का पता लगाना दूभर हो जाता है । समाज में फैली रूढ़ियों, अन्धविश्वासों, रीति-रिवाजों, शकुन और अपशकुन के विचार, वेश-भूषाओं, वाद्य और मनोरंजनों, घर की सजावट, दवाइयों, कलाओं और पेशों आदि का उल्लेख यदाकदा होता है । किसी जाति के सामाजिक इतिहास को लिखने वालों के लिये लोकसाहित्य अमूल्य साधन संपत्ति है । भाषाविज्ञानियों के लिये भाषा के तत्व या प्रकृति का ज्ञान प्राप्त कराने में लोक-साहित्य यथेष्ट सहायता प्रदान कर सकता है । पंडित और समालोचक इन गीतों के भाव पक्ष व कला पक्ष का विवेचन कर उनका साहित्यिक मूल्यांकन कर सकते हैं । लेखक लोकसाहित्य में उपलब्ध कथावस्तुओं को लेकर, सुन्दर काव्य-कृतियों से माता सरस्वती की अर्चना कर सकतेहैं । इस प्रकार लोकसाहित्य का अध्ययन अनेक दृष्टियों से उपादेय है ।

## उपसंहार :

प्रस्तुत लेख, बड़े संक्षेप में तेलुगु लोकगीतसाहित्य का परिचय कराने का प्रयास-मात्र है । तेलुगु के लोकसाहित्य के अनन्त-सागर में यह एक बूँद के समान है । यदि इस परिचयात्मक लेख द्वारा श्री देवेन्द्र सत्यार्थी के निम्नलिखित शब्दों की पुष्टि हो जाय तो लेखक का परिश्रम सफल है । "समस्त भारत एक है, भारतीय लोकगीत अपनी अनेक शैलियों सहित इस तथ्य का समर्थन करते हैं ।"[16] × × ×

---

१६. धरती गाती है ।

अगरचन्द नाहटा

# मध्यकालीन गुजराती वाङ्मय लेख संबंधी कुछ सूचनाएँ

'भारतीय साहित्य' के जनवरी १९५९ के अंक में श्री शांति आंकड़ियाकर का "मध्यकालीन गुजराती वाङ्मय का मीताक्षरी परिचय" नामक एक लेख प्रकाशित हुआ है। इस लेख में उन्होंने संक्षेप में गुजराती भाषा और साहित्य का परिचय दिया है। इसी लेख के प्रसंग में उसी विषय से संबंधित कुछ अन्य बातों पर प्रकाश डालते हुए उन अशुद्धियों का उल्लेख भी कर देना समीचीन समझता हूँ जो प्रूफ संशोधन की असावधानी के कारण रह गई हैं। बहुत से ग्रन्थों, ग्रन्थकारों एवं स्थानों के नाम अशुद्ध छप गये हैं, जिनसे भविष्य में भूलों की परम्परा बढ़नी सम्भव है।

सबसे पहली बात जो हमारा ध्यान आकर्षित करती है वह है यह लिखना कि गुजराती भाषा को सर्वप्रथम गुजराती नाम देने का श्रेय कवि शिरोमणि प्रेमानंद को है। प्रतिभासम्पन्न महाकवि प्रेमानंद ने १७२० के इर्द गिर्द अपनी महान् कृति 'दशम स्कन्ध' की रचना की थी। उसी दशम स्कन्ध में सर्वप्रथम गुजराती शब्द का प्रयोग और उपयोग हत्थे चढ़ता है। प्रेमानंद से पूर्व के प्राचीन साहित्य में कहीं भी गुजराती शब्द का प्रयोग और उपयोग दिखाई नहीं देता है। गुजरात अथवा गुर्जर देश के प्रयोग ईसा की ११ वीं शताब्दी से जरूर उपयोग में आ रहे थे, वास्तव में जब गुजरात और गुर्जर देश का नाम ईसा की ग्यारहवीं शती से मिलता है तो अवश्य ही गुजराती भाषा का नाम भी प्रेमानंद के पहले प्रयुक्त हुआ, मिलना ही चाहिये। मैंने जब इस संबंध में थोड़ा अनुसंधान किया तो मुझे दो उल्लेख प्रेमानंद से पहले के देखने को मिले, जिनमें गुजराती शब्द तो नहीं पर गुर्जर भाषा और गुर्जरी भाषा शब्द प्रयुक्त हैं। इनमें से पहला उल्लेख तो मधुसूदन व्यास के युद्ध कांड की प्रशस्ति का है। यह ग्रन्थ संवत् १६८७ फागण बदी ३ गुरुवार को पूर्ण हुआ था। इसमें यह ग्रन्थ 'गुर्जर भाषा' में कहा गया ऐसा स्पष्ट उल्लेख मिलता है:—

'गुर्जर भाषा ए' कह्यू, बुध सारू मधुसूदन।<br>
कर्णपुर ग्राम तात नुं, मोसाल पाटण पुर पावन।

दूसरा उल्लेख इससे और भी कुछ पुराना है जो जैन कवि कनक सुन्दर रचित 'देवदत्त रास' की प्रशस्ति में मिला है। यद्यपि देवदत्त रास में रचना संवत् का उल्लेख

नहीं है पर इस कवि के 'कर्पूर मंजरी रास' संवत् १६६२ और 'रूप सेन रास' संवत् १६७३ में रचा गया है। अतः इसी बीच का या आस-पास का सुनिश्चित है। देवदत्त रास की प्रशस्ति में यह बतलाया गया है कि इससे पूर्व भी यह रास 'मारू' की भाषा में था पर वह इतना व्यवस्थित नहीं था इसलिए कनक सुन्दर ने गूजरी भाषा में इस चौपाई की रचना की।

आगइ ए पणि रासज हतु, मारुनी भाषा बोलतु।
पद समता नहीं लगार, पद जुजवानी कोई विचार ।।४०५।।
रहस्य तेह नुं हियड़इ धरी, 'गुजरी भाषा' चौपाइ करी।
कांइ-कांइ तेह नूतन कर्यो, एह चरित इणि परि उघरियुं ।।४०७।।

विशेष खोज करने पर और भी इससे पहले के गुजराती भाषा के उल्लेख अवश्य प्राप्त होने संभव हैं। इन उल्लेखों में गुर्जर या गुजर भाषा का नाम है वैसे ही जब देश का नाम गुजरात प्राचीन ग्रन्थों में मिलता है तो वहाँ की भाषा का नाम भी गुजराती मिलना ही चाहिये। क्योंकि गुर्जर देश की भाषा गुर्जरी या गुजरी के नाम से बतलाई गई है तो गुजरात की भाषा गुजराती, इस नाम से भी किसी कवि ने उल्लिखित की होगी। अष्टभाषादि रचनाओं में गुजराती भाषा के जो उदाहरण मिलते हैं, वे १७ वीं शती के हैं ही पर रचना काल का उल्लेख न होने से यहाँ उल्लेख नहीं किया गया।

श्री आंकडियाकर ने "सन् १६५० के आस-पास, अखा के समय दरमियान गुजराती भाषा की अर्वाचीन देह का निर्माण हो गया था। इस तरह १६५० साल की पुरानी और नई गुजराती को स्वाभाविक भेद रेखा बनती है।" लिखा है और इसी आधार पर उन्होंने पूर्वकाल १२५० से १६५० और उत्तरकाल १६५० से १८५२ तक का लिखा है पर मेरे मतानुसार वह ठीक नहीं है क्योंकि जब सभी गुजरात के विद्वान् और उन्होंने स्वयं भी सं० १२४० याने सन् ११८५ में रचित 'भरतेश्वर बाहुबलि रास' को गुजराती भाषा की सर्वप्रथम रचना माना है तो पूर्वकाल १२५० से प्रारम्भ करना किसी भी तरह उचित नहीं कहा जा सकता। वास्तव में संवतोल्लेख वाली रचना चाहे 'भरतेश्वर बाहुबलि रास' से पहले की चाहे नहीं मिली हो पर उससे पहले भी कुछ रचनायें उसी भाषा व शैली में अवश्य बनी होनी चाहिये इसलिए पूर्वकाल सन् ११८५ से पहले का तो बतलाया जा सकता है पर पीछे का नहीं। इसी तरह उत्तरकाल भी वास्तव में वहाँ से माना जाना चाहिये जहाँ से राजस्थानी और गुजराती इन दो भाषाओं का पृथक्करण होता है। १५वीं शताब्दी से उस पृथक्करण का प्रारम्भ होता है और १६वीं से तो अन्तर बहुत ही स्पष्ट हो जाता है तभी से उत्तरकाल मानना ज्यादा उचित है इससे पहले की जो रचनाएं मिलती हैं उनमें कई राजस्थान में रची गई और कई गुजरात में, पर दोनों प्रदेशों में रची गई रचनाओं की भाषा एकसी ही है।

आंकडियाकर ने "१३वीं और १४वीं शताब्दी के ये सात ग्रन्थ प्रसिद्ध हैं" लिखकर जो सात ग्रन्थों के नाम दिए हैं उनमें पाँच पद्यबद्ध हैं और दो गद्य के हैं। पर वास्तव में इस समय की अनेकों जैन रचनाएें मिलती हैं जिनका विवरण "जैन गुर्जर कवियो"

भाग १ और ३ में प्रकाशित हो चुका है। और उनके अतिरिक्त भी कई छोटी बड़ी रचनाएँ मुझे मिली हैं और कुछ को तो मैं प्रकाशित भी कर चुका हूँ। 'स्थूलि भद्रफागु' आदि प्रसिद्ध रचनाओं को उस समय भी उन रचनाओं में उल्लिखित न करने का कोई कारण प्रतीत नहीं होता। 'प्रसिद्ध' शब्द से यहां प्रकाशित होने की सूचना है या अधिक लोगों की जानकारी का, यह तो वे ही जाने पर 'स्थूलिभद्र फागु' आदि प्रकाशित भी हो चुके हैं और सभी विद्वान् जानते भी हैं।

१५वीं शताब्दी के ७५-८० साहित्यकारों में से ३ ही अलग-अलग दृष्टियों से अग्रणी माने जाते हैं, लिखा गया है। पर किसी व्यक्ति ने उन तीन को ही प्रधानता दे दी हो, इससे दूसरे कवियों की उपेक्षा की जानी उचित नहीं है। हमें अन्य जैन कवियों की रचनाओं का अध्ययन कर जो और महत्त्वपूर्ण और सुकवि प्रतीत हों, उनके नाम भी जोड़ते रहना चाहिये।

जैनेतर कवियों में अब्दुल रहमान को गुजराती भाषा का कवि मानना, किसी भी तरह उचित नहीं कहा जा सकता। उसका समय १४२० बतलाते हुए "सन्देशक रास" नामक अपनी रचना देकर गुजराती वाङ्मय को पुष्ट किया है" लिखना भी ठीक नहीं है। "सन्देशक रास" का रचनाकाल सन् १४२० से पहले का है और उसकी भाषा तो अपभ्रंश अवहट्ट है, गुजराती नहीं है।

आंकडियाकर के उपरोक्त लेख में मुद्रण की इतनी अशुद्धियां रह गई हैं कि कहीं-कहीं तो उन्होंने गलती की है या छपाई की गलती है, इसका पता लगाना मुश्किल हो जाता है और बहुत से नाम इतने अशुद्ध छपे हैं कि उस विषय की जानकारी रखने वाले के बिना सही नाम क्या है, कोई कल्पना भी नहीं कर सकता। जैसे अखा के स्थान पर अरवा, रेवत गिरि की जगह खेत गिरि, बारह व्रतों की जगह बारह पृष्ठों, भरतेश्वर के स्थान पर भरनेश्वर पाटण के स्थान पर पाहण, बालभोग्य की जगह बाल योग्य वस्तुपाल की जगह पस्तुपाल सोरठ का सोरह चतुष्पदिका का मनुष्य दिया, सोम सुन्दर सूरि की जगह सत्यं सुन्दर सूरि, पैठणे की जगह पैटिण शब्द छप गये हैं। और कई शब्द तो इतने भ्रमपूर्ण हैं कि उनका शुद्ध पाठ क्या है, पता लगाना भी कठिन हो जाता है जैसे-पृष्ठ २७ में समरसिंह नाम के आगे 'सुवनकार' और २५वीं पंक्ति में सोमसुन्दर नाम के आगे 'केप्रवामपने भी ऐसी ही सेवा १४०६ में खम्भात के सेठ पर्वत सेठ के हाथों करवाई थी "इस वाक्य का कुछ भी भाव समझ में नहीं आता। पृष्ठ २८ में जयशेखर की रचनाओं में 'झिल चरित' का नाम छपा है वह तो गलत ही लगता है, पता नहीं वास्तविक नाम क्या है। इसी पृष्ठ की १८वीं पंक्ति में 'कोहिकी' शब्द प्रयुक्त है उसका भी कुछ अर्थ स्पष्ट नहीं होता।

कुछ बातें तो शायद वे ठीक से लिख या समझ नहीं पाये प्रतीत होते हैं जिस तरह सोमसुन्दर के परिचय में लिखा है कि "तदुपरान्त अमुक शब्दों पर सुवर्ण मुहर का दान दिया जावे ऐसा सहस्रावधि मुहरों का दान मध्य भारतस्थ मांडपगढ़ के कोटिध्वज सुवर्णकार संग्राम सेठ के हाथों प्रदान कराया था।" यह वाक्य रचना बिल्कुल गलत है। वास्तव में बात तो यह थी कि जैनागम-भगवती सूत्र में भगवान महावीर ने ३६ हजार

प्रश्नों के उत्तर दिए हैं और जैन समाज में इस भगवतीसूत्र का इतना अधिक आदर रहा है कि उसको गुरुमुख से सुनते समय श्रावक लोक प्रत्येक प्रश्न के उत्तर पर चान्दी, सोने का सिक्का या मोती चढ़ाया करते थे। और मांडव गढ़ के सग्राम सिंह सोनी-श्रावक ने इसी तरह ज्ञान सागर सूरि के मुख से भगवती सूत्र सुनकर ३६ हजार सोने की मुहरें चढ़ाई थीं, जिसका उल्लेख बृहतपोंसालिक पट्टावली में इस प्रकार मिलता है—

"श्री ज्ञानसागर सूरिणां मुखात्। मंडप दुर्ग निवासी व्यवहारिर्व्यपात साहि श्री खिलची महिम्मदग्यासदीन सुरत्राणप्रदत्त "नगदलमलिक" विरुदधर साधु श्री संग्रामसिंह सौवर्णिक-नामा सवृत्तिकं श्री पंचमाङ्ग श्रुत्वा 'गोयमे'' ति प्रति पद्म सौवर्णटंक ममोचीत्। षट् त्रिसत्सहस्त्र प्रमाणा: सुवर्णटंकका: संजाताः।"

उपरोक्त उल्लेख से स्पष्ट है कि मांडव गढ़ के संग्रामसिंह ने स्वर्ण मोहरें भगवती सूत्र पर चढ़ाईं, वे ज्ञान सागर सूरि से सूत्र सुनकर न कि सोमसुन्दर सूरि से। इसी तरह आंकडियाकर जी का यह कथन भी ठीक है "उनके एक शिष्य प्रतिष्ठा सोमने अपने गुरु को जब आचार्य पद मिला तब उस समारम्भ प्रसंग पर लिखी हुई रचना सोम-सोभाग्य में कहा है। वास्तव में सोमसौभाग्य काव्य सोमसुन्दर सूरि को आचार्य पद मिला, उस समय नहीं रचा गया। पर सोमसुन्दर सूरि के स्वर्गवास के भी २५ वर्षों बाद संवत् १५२४ में यह काव्य रचा गया है।

तरुण प्रभसूरि के प्रतिक्रमण बालावबोध को गुजराती का सर्वप्रथम गद्यग्रन्थ बतलाया गया है पर वह भी ठीक नहीं है। क्योंकि इससे ७०-८० वर्ष पहले की कुछ गद्य रचनाएं भी प्राप्त हैं और "प्राचीन गुजराती गद्य संदर्भ" में संवत् १३३० तक की गद्य रचना तो छप भी चुकी है। प्रतिक्रमण बालावबोध का प्रसिद्ध नाम षड़ावश्यक बालावबोध है। हां गद्य में कथाओं वाला यह पहला ग्रन्थ अवश्य है। कुछ उल्लेख ठीक से नहीं लिखे जाने के कारण भ्रामक भी हो गये हैं जैसे सोम सुन्दर सूरि के गद्य ग्रन्थों में "उपदेशमाला, योग शास्त्र आदि बालावबोध मुख्य हैं।" इस वाक्य से साधारणतया यही बोध होगा कि उपदेश माला और योगशास्त्र बालावबोध रचनाओं के अन्तर्गत है पर तथ्य यह है कि उन प्राकृत और संस्कृत ग्रन्थों की भाषा टीकाओं का नाम ही बालावबोध रखा गया है। इस शब्द का स्पष्टीकरण भी उन्होंने आगे कर दिया है पर वास्तव में उपरोक्त वाक्य रचना में "उपदेशमाला, योगशास्त्र आदि के बालावबोध" लिख दिया जाता तो भ्रम नहीं हो सकता था।

यहां एक बात मुझे गुजराती विद्वानों से विशेष रूप में कहनी है कि वे प्रायः जिस शताब्दी तक की जैनेतर गुजराती रचनाएं अधिक नहीं मिलती, वहां तक जैन रचनाओं का तो उल्लेख करते हैं पर जब से जैनेतर गुजराती रचनाएं अधिक मिलने लगती हैं उस समय व उसके बाद के जैन कवियों एवं रचनाओं का उल्लेख करना वे छोड़ देते हैं। यह सर्वथा अनुचित है। जैन कवि आज तक भी गुजराती में रास आदि काव्य बनाते रहे हैं अत: उनमें से जो जो जैनेतर कवियों के समकक्ष के हों, उनका तो गुजराती साहित्य के इतिहास में यथा स्थान अवश्य ही उल्लेख होना चाहिये। यह पक्षपात नहीं करना चाहिये कि साधारण जैनेतर कवियों को तो स्थान मिल जाय और विशिष्ट जैन कवि उल्लिखित

ही नहीं किये जायं। प्रत्येक साहित्यिक विद्वान का कर्तव्य है कि वह जैन, जैनेतर-धर्म, सम्प्रदाय का भेद न रखते हुए समभाव से मूल्यांकन करें। उनके मूल्यांकन का मापदंड तो यही होना चाहिये कि किसी कवि की रचना किस स्तर की है।

साहित्य के इतिहास लेखकों का एक दूसरा भी जरूरी कर्तव्य है कि वे अनुसंधान से ज्ञात नई सामग्री का उपयोग करने में तत्पर और सचेष्ट रहें। केवल पहले के किसी साहित्य के इतिहास के लेखक ने जिन कवियों व रचनाओं का उल्लेख किया है उनको दुहराते हुए ही न चले जायं। संस्कृत, हिन्दी, गुजराती सभी साहित्य के इतिहास लेखकों का अध्ययन विशाल और गंभीर होना चाहिये। इधर कुछ वर्षों में काफी हस्तलिखित ग्रन्थ भंडार और उनमें सुरक्षित अनेकों अज्ञात ग्रन्थ प्रकाश में आये हैं और नित्य नई जानकारी प्रकाश में आ रही है। नवीन अनुसंधान से ज्ञात उस सामग्री का उपयोग और मूल्यांकन पीछे से तैयार होने वाले 'साहित्य के इतिहास' ग्रन्थों में बराबर होते रहना चाहिये।

उदय शङ्कर शास्त्री

# लक्ष्मणसेन पद्मावती

## (मध्यकाल का एक प्रेमाख्यान काव्य)

हिन्दी में प्रेमाख्यानों की परम्परा बहुत प्राचीन है। संस्कृत और प्राकृत तथा अन्य देशी भाषाओं में लिखे हुए बहुत से आख्यान अब तक मिल चुके हैं। सूफी प्रेमाख्यानों के समान ही हिंदू प्रेमाख्यान भी जनता को सदा ही बड़े रुचिकर रहे हैं। इसका मुख्य कारण यह था कि जहाँ सूफी लोग भारत की धरती पर ईरानी तूरानी मसाले से कथा का ढाँचा खड़ा करते थे, वहाँ हिंदू आख्यानकार भारतीय पुराणों एवं लौकिक आख्यानों से अपना बंधान बाँधते थे। सूफी रचनाकारों में जहाँ, साधन, मुल्ला दाऊद आदि प्राचीन रचनाकार माने जाते हैं। वहीं दामो कवि भी इस प्रकार के रचनाकारों में प्रमुख हैं। इनकी प्रसिद्धि न होने का मुख्य कारण यह है कि इनकी यह रचना कम लोगों तक पहुँच पाई, अन्यथा इनकी भाषा और रचनाचातुरी पर उसी भाँति विचार हुआ होता, जैसा कि अन्य आख्यानकारों पर हुआ है।

सन् १९०० ई० में नागरी प्रचारिणी सभा काशी की खोज में संवत् १६६६ की लिखी हुई दामो कवि की रचना "लक्ष्मण सेन पद्मावती" की प्रति मिली थी। उसी विवरण के आधार पर पं० रामचंद्र शुक्ल ने अपने इतिहास में उसका नामोल्लेख मात्र किया है। तब से अब तक किसी को ग्रंथ उपलब्ध न होने के कारण कोई चर्चा न हो सकी। कई वर्ष हुए तब मुझे श्रीअगरचंद नाहटा के संग्रह में उक्त प्रति दिखाई पड़ी।[1] मैंने उसकी अविकल प्रतिलिपि तैयार कराई और उसके दो पत्रों के फोटो भी लिए थे।

---

१. डा० शिवप्रसाद सिंह ने इसी ग्रंथ पर 'त्रिपथगा' जुलाई ५६ में प्रकाशित मेरे लेख की चर्चा करते हुए अपने शोध प्रबंध में लिखा है कि, "खोज विवरण में उल्लिखित प्रति और यह प्रति दोनों एक ही हैं, भिन्न नहीं।" इस विषय में ज्ञातव्य यह है जिस समय यह प्रति मिली थी उसे देखने और विचार करने के बाद जब मैंने श्री नाहटा जी को इस विषय में लिखा तो उन्होंने मुझे उत्तर दिया कि "वस्तुत: यह वही प्रति है सभा के खोज एजेन्ट ने जयपुर से जिसका विवरण लिया था। यह वहीं से प्राप्त हुई है।" मैंने खोज विवरण की भाषा में भेद होने के कारण इसे भिन्न प्रति समझा था।

रचना बहुत बड़ी नहीं है। तो भी कथा की दृष्टि से पूर्ण है। एकाध जगह टूट मालूम पड़ती है। जो संभव है लिपिकार की भूल के कारण हो गई हो। पर जब तक इसकी कोई अन्य प्रति न मिले तब तक इसका निराकरण हो सकना संभव नहीं है।

प्रति के पत्र ६½ इंच लंबे और ८ इंच चौड़े हैं। कलम राजस्थानी है। वैसे अक्षर सुंदर और सुपाठ्य हैं। पूरी रचना २० पत्रों की है।

लेखक ने स्वयं लिखा है—

संवतु पनरइ सोलोत्तरा मझारि,
जेष्ट वदि नवमी बुध बार।
सप्त तारिका नक्षत्र दृढ़ि जाणि,
बीर कथा रस करूँ बखाण॥
सरस बिलास काम रस भाव,
जाहु दुरीय मनि हूग्र उछाह।
कहइति कीरत दामो कवेस,
पद्मावती कथा चिहुँ देस॥

कवि के इस कथन से प्रकट होता है कि उसने संवत् १५१६ ज्येष्ठ वदी नवमी बुधवार को इस ग्रंथ की रचना की है।

अब तक जितने प्रेमाख्यान काव्य मिल चुके हैं उनमें सब में प्राचीन 'मुल्ला दाउद का चंदायन' ही माना जाता है। और मृगावती नामक प्रेमाख्यान काव्य का रचयिता 'कुतुबन' उसके बाद का। उसने अपने प्रसिद्ध ग्रंथ मृगावती की रचना संवत् १५६० में की है। इस दृष्टि से ये दोनों कवि कुतुबन से पहले और मुल्ला दाउद के बाद का ठहरता है। इसका समय १४५६ ई० ठहरता है। पंडित रामचंद्र शुक्ल जी ने अपने इतिहास में कल्पित कथा का आश्रय लेकर रचना करने वालों में 'दामो' का दूसरा स्थान रखा है। इस कवि ने जिस आख्यान को कल्पना की है, उसका कोई ऐतिहासिक आधार प्रामाणिक रूप में प्राप्त नहीं है। यह भी नहीं पता चलता कि इस कथा में वर्णित लखनौती का राजा लक्ष्मणसेन कौन है। लखनौती नाम के दो स्थानों का पता है। एक तो सहारनपुर जिले की नाकुर तहसील में था। जिसके आसपास समृद्ध मुसलमानों की काफी बस्ती थी पर सन् १७६४ ई० में बापू शिंदे के तुर्कों पर आक्रमण के कारण यह गाँव धूलि में मिल गया। अब वहां इस नाम का कोई गाँव नहीं है। दूसरा लक्ष्मणावती नाम का नगर बंगाल में था जिसे गौड़ के राजा लक्ष्मणसेन ने अपनी राजधानी बनाया था। उसी ने इसका नाम भी लक्ष्मणावती रखा था। मुसलमानी तवारीखों में इसका नाम लखनौती लिखा मिलता है। केवल नाम साम्य के अतिरिक्त और किसी प्रकार का प्रकाश इसकी कथा से नहीं पड़ता जिससे यह समझा जा सके कि इस ग्रंथ में लेखक गौड़ के बल्लालसेन के पुत्र लक्ष्मणसेन के बारे में कुछ वर्णन करना चाहता है। बंगाल में लक्ष्मणसेन के बारे में कवि धोई ने अपने 'पवनदूत' नामक ग्रंथ में लिखा है कि लक्ष्मणसेन मलयाचल की कुमारी कुवलयवती से प्रेम

करता था। कुवलयवती भी राजा से प्रेम करती थी, पर उन दोनों का संयोग नहीं हो पाता था, जिससे बिरहाकुल होकर कुवलयवती पवन के द्वारा अपना प्रेम संदेश लक्ष्मणसेन के पास भेजती थी। पर इस रचना में ऐसा कुछ नहीं है। इसमें एक स्थान पर नायिका की केवल अनुरक्ति ही दिखाई पड़ती है।

इस ग्रंथ के रचयिता ने सरस्वती व गणेश की वंदना करके सं० १५१५ ज्येष्ठ वदी ९ बुधवार के दिन लक्ष्मणसेन पद्मावती की सरस कथा का व्याख्यान किया है। इस कथा में राजा का बनवास, जोगी की मृत्यु और पद्मावती के दुखों का वर्णन कर अंत में मिलन हो जाता है। कथा सुखांत है।

सिद्धिनाथ नामक जोगी अपने हाथ में दंड, खप्पर और कुल्हाड़ी लेकर नौ खंडों में विचरण किया करता था। एक बार वह आकाश मार्ग से राजा हंस के नगर गढ़ सामौर पहुँचा। वहाँ की राजकुमारी को देखकर उस पर मुग्ध हो गया। जोगी ने उससे पूछा कि तुम कुमारी हो या विवाहिता। राजकुमारी ने कहा कि मैं १०१ राजाओं के मारने वाले वीर को स्वयँबर में बरूँगी। जोगी काम बाण से विद्ध होकर तप संयम को त्याग कर राजकुमारी को प्राप्त करने के लिए इतस्ततः घूमता हुआ राजाओं के मारने की फिराक में रहने लगा। योगी सिद्धिनाथ ने एक कुएँ में से सुरंग का मार्ग बनाया। जो पृथ्वी से पाताल मार्ग द्वारा सामौर गढ़ में निकलता था। जोगी ने चंडपाल, चंडसेन, अजयपाल, धरपाल, हमीर, हरपाल, चंल, सहसपाल, सामंतमी, विनयचन्द्र, गंगेव साल्हू, वैलोचन, वैरीशाल, भंडिमाल द्रोण प्रभृति राजाओं को छल पूर्वक लाकर उसी कुएँ में डाल दिया। इस तरह ९९ राजाओं को लाने के पश्चात् दो और बाकी रहे। जोगी ने लखनौती के राजा लक्ष्मणसेन को प्रभात होते ही लाने के विचार से एक बिजोरा (एक प्रकार का नींबू) में चार रत्न छिपाकर हाथ में लेलिया। और राजमहल के द्वार पर जा पहुँचा। लोगों पर अपना चमत्कार प्रकट करने के लिये वह आकाश में चला गया। प्रतीहारी ने राजा को इस आश्चर्यजनक जोगी के आगमन की सूचना दी। राजा ने चकित होकर कहा—उस जोगी को मेरे पास क्यों नहीं लाये। उसके एक बार दर्शन कराओ, नहीं तो तुम्हें दंड मिलेगा। प्रतीहारी ने खोजते-खोजते चार पाँच दिन में जोगी को पाया। और उससे राजा को दर्शन देने की बात कही। जोगी ने कहा हम तो बनबासी योगी हैं, हमें राजा क्यों बुलाता है? प्रतिहारी की अनुनय विनय से जोगी राजा के पास गया। राजा ने जोगी को सत्कार पूर्वक अपने पास सिंहासन पर बैठाया। ······राजा को बिजौरा देकर चला गया, इतने में बानर ने बिजौरा छीनकर ज्योंही खाना प्रारम्भ किया कि उसमें से रत्न निकल कर राजा के संमुख गिर पड़े। राजा ने मन में सोचा कि यह कोई सिद्ध पुरुष था, पर मैं उसे जान नहीं पाया। यदि सिद्ध पुरुष की सेवा की जाय तो वह प्रसन्न होकर बरदान दे दे या संसार में अमर बना दे। राजा के मन में बड़ा पश्चात्ताप हुआ, और तत्काल ही वह योगी की खोज में निकल पड़ा।

तलाश करते करते राजा लक्ष्मणसेन वन में जोगी से जा मिला। जोगी ने कहा—राजन्, लखनौती नगरी को किस लिये छोड़ा। राजा ने कहा मुझे बड़ी प्यास लगी है

पहले जल पिलाइए। जोगी ने कहा यहाँ जंगल में जल कहाँ। अपने घर लौट जाओ और राजसिंहासन भोगो। लक्ष्मणसेन ने कहा, प्यास के मारे प्राण निकले जा रहे हैं जल पिलाइए। राज्यलक्ष्मी का त्याग कर के ही मैं आपके पास आया हूँ। जोगी ने कहा यहाँ तालाब, कुओं का पानी सूख गया है, चलो कुएँ की पाल पर जहाँ बिजौरा बृक्ष है, वहाँ जल पीकर सुख से ठंडी छाया में विश्राम करो।

राजा और जोगी दोनों कुएँ की पाल पर जा बैठे। राजा ने करवे में (मिट्टी का बर्तन) भरकर पानी निकाला और जोगी ने हाथ पाँव धोकर जलपान किया। दूसरी बार जब राजा पानी के लिए कुएँ पर गया तो जोगी ने उसे धक्का देकर कुएँ में डाल दिया। लक्ष्मणसेन ने वहाँ बहुत से राजाओं को देखकर, उनसे कुएँ में गिरने का कारण पूछा। राजाओं ने कहा कि हे धीरसेन के पुत्र लक्ष्मणसेन, यह जोगी १०१ राजाओं को मारकर पद्मावती से विवाह करना चाहता है इसीलिए धोखे से हम सब को यहाँ डाला है। अब हम सब मिलकर यहाँ से बाहर निकलने का कोई उपाय करें। लक्ष्मणसेन ने सबको हाथ पकड़ कर बाहर निकाल दिया, राजा लोग अपने अपने घर चले गए। और लक्ष्मणसेन अकेला कुएँ में रह गया।

सिद्धिनाथ जोगी जो कहीं बाहर गया हुआ था बन में प्रवेश करते ही बहुत मनुष्यों के पदचिन्ह देखकर ताड़ गया कि लक्ष्मणसेन ने सब राजाओं को कुएँ से निकाल दिया है। जोगी की क्रोधाग्नि प्रज्वलित हो उठी और उसने एक बड़ी शिला रख कर कुएँ का मुह बंद कर दिया। जब कुएँ में घोर अंधकार छा गया और जोगी सिद्धिनाथ भी वहाँ से चला गया तो राजा सोचने लगा—मैंने जो प्रजा को दंड दिया था वही आज मेरे सामने आगया मैं लोभ के वशीभूत होकर जोगी के पीछे अपना घर त्याग कर निकला, यह ठीक नहीं किया। क्या मैंने निरपराध प्रजा को मारा, गायत्री नहीं जपी, बड़ों का सम्मान नहीं किया, बन में दावाग्नि लगाई, या जीव दया का पालन नहीं किया या सेवा नहीं की, गोचर भूमि में कृषि की, अथवा सरोवर की मेंड़ तोड़ी? जिन दुष्कर्मों के फल से मैं योगी के पीछे आसक्त हुआ, यह सब बिधाता का दोष नहीं, किन्तु मेरे भाग्य में जो लेख है वह निश्चय होगा। राजा लक्ष्मणसेन अवसर चूके हुए शेर की भाँति छटपटा ने लगा। उसने अपने मन में कहा—मेरे जैसा मूर्ख कोई न होगा, कि साथ में कोई आयुध भी नहीं लाया, नहीं तो आत्मघात ही कर लेता। जिससे इस प्रकार का दुख तो न सहना पड़ता। राजा को टटोलते टटोलते कुएँ की ईंट हाथ लगी, उसने उसे ही उखाड़ कर मस्तक फोड़ने का विचार किया तभी उस छेद में से प्रकाश की किरणें आती दिखाई पड़ीं। राजा ने धीरे-धीरे कई ईंटें निकाली। तब उसे सीढ़ियां दिखाई पड़ीं और राजा उन्हीं सीढ़ियों से पाताल की ओर चल पड़ा, आगे चल कर राजा ने स्फटिक के बांधवाला एक सरोवर देखा, वहाँ चकई चकवे हंस सारस इत्यादि क्रीड़ा कर रहे थे। भाँति भाँति के जीव विचरण कर रहे थे, निकट ही अनेक प्रकार के बृक्ष, लता आदि का सघन बन था। तालाब में नाना प्रकार के कमल खिले हुये थे, भौंरे गुंजार कर रहे थे। कविगण व ब्राह्मण लोग संध्या गायत्री आदि पाठ करते थे, अप्सरायें महादेव और पार्वती का पूजन कर रहीं थीं। मृगनयनी सुंदरियाँ जल भरने जा रहीं थीं। वे सुंदरियां लक्ष्मणसेन का रूप देखकर

स्तंभित हो गईं, कि यह कामदेव है ग्रथवा इन्द्र ? राजा ने मुंह हाथ धोकर जलपान किया ग्रौर फिर ब्राह्मण का वेश धारण करके गढ़ सामौर की शोभा देखने के लिए चल पड़ा। यहाँ की स्त्रियाँ बड़ी सुन्दर थीं ग्रौर भा शैव सन्यासी भक्त, ब्राह्मण ग्रादि भी बहुत थे। दीन दुखी लोगों का एकदम ग्रभाव था। राजा राजहंस के द्वार पर हाथी झूम रहे थे, तथा गढ़ मठ मंदिर प्रतोली प्रकार ग्रादि की छटा ही निराली थी। लक्ष्मणसेन ने ब्राह्मण के रूप में घूम फिर कर सारा नगर देखा, फिर एक ब्राह्मण के घर में जाकर ब्राह्मणी से कहा, माता मुझे जल पिलाग्रो। ब्राह्मणी के द्वारा उसका ग्रता पता पूंछने पर उसने ग्रपने को लखनउती के राजा लक्ष्णमसेन का पुरोहित बतलाया। ब्राह्मणी ने कहा, बेटा तू मेरा पुत्र है। तेरा पिता स्वर्गवासी हो गया है, तू मुझे मां करके मान। मैं तुझे राजा से मिला दूंगी ग्रौर यहाँ की राजपुरोहिताई भी दिला दूंगी। मेरे यहाँ धन की कोई कमी नहीं है। राजा स्नान भोजन करके पुस्तकपत्रा लेकर माता के पीछे पीछे राजमहल के द्वार पर पहुँचा। प्रतहार ने राजा की ग्राज्ञा प्राप्त करके इन दोनों को राजा के सामने उपस्थित किया। ब्राह्मणी ने कहा, राजन् ! यह मेरा धर्मपुत्र है, यह ग्रापकी सेवा करेगा। राजा ने उसके रूप सरूप से ही उसे सत्पात्र समझ कर उसे संमानपूर्वक पुरोहित के पद पर नियुक्त कर दिया। लक्ष्मणसेन ने स्वस्ति पाठ करके ग्राशीर्वाद दिया ग्रौर दान सम्मान प्राप्त कर ग्रपने घर को लौट ग्राया। इधर राजमहल के झरोखे में बैठी हुई राजकुमारी ने लक्ष्मणसेन को देख कर उसके रूप ग्रौर वाणी से निश्चय कर लिया कि यह निस्सन्देह कोई राजपुत्र है। लक्ष्मणसे। ने भी राजकुमारी की ग्रोर देखा, ग्राँखें चार होते ही राजकुमारी प्रेमासक्त हो उठी।

राजकुमारी के सचेत होने पर, रानी ने उससे उसके ग्रंग कुम्हलाने का कारण पूछा। उसके तरुणाई जन्य कारण बतलाने पर रानी ने राजा से यह वृतान्त कहा राजा ने पुरोहित ग्रौर मंत्री की सम्मति से वर चुनने के लिए स्वयंवर रचना निश्चित किया ग्रौर समस्त राजाग्रोंको न्यौता भेजा। राजा लोग भी गढ़ सामौर में स्वयंबर के निमित्त सदल बल ग्राकर एकत्र हुए। राजाग्रों के ग्रागमन से नगर की चहल पहल बहुत बढ़ गई। राजा हंस ने ग्रागंतुक राजाग्रों के सत्कार का सुन्दर प्रबन्ध किया था। जिस समय राजकुमारी पद्मावती श्रृंङ्गार करके जयमाल हाथ में लेकर स्वयंवर मंडप में ग्राई, तो उसके रूप को देखकर राजा लोग ठगे से रह गये। राजकुमारी ने राजाग्रों को छोड़कर राजपुरोहित वेशधारी लक्ष्मणसेन के गले में जयमाल डाल दी। स्वयंबर मंडप में हल चल मच गई, तालियाँ बजने लगीं, राजा हंस पुत्री के इस कृत्य से दुखी होकर ग्रंतःपुर में चला गया। मंत्री ने यह उपाय बताया कि बन में एक भयानक सिंह रहता है जिसको मारने के लिए लक्ष्मणसेन को कहा जाय तो ग्रपने को कोई दोष भी नहीं लगेगा, ग्रौर काम भी बन जायगा। राजा के ग्रादेशानुसार लक्ष्मणसेन शिकार के लिये सारी सेना लेकर चला। सिंह की गर्जना सुन कर सारी सेना तो इधर उधर भाग गयी। लक्ष्मणसेन नें ग्रकेले ही सिंह पर वार किया,जिससे वह तत्काल ही मरकर ढेर हो गया। लक्ष्मणसेन उसकी शटायें काटलाया। ग्रौर सबको दिखलाया, जिन्हें देखकर राजा हंस ग्रौर दूसरे लोग ग्राश्चर्यान्वित रह गए।

ग्रब राजा ग्रौर मंत्री ने दूसरा उपाय सोचा, कि कनकावती का राजा वीरपाल

बड़ा दुर्दांत है, जो कर नहीं देता। उस पर आक्रमण करने के लिए इस ब्राह्मण को भेजा जाय। अगर जीत कर आया तो कर लेकर आएगा और नहीं आया तो अपनी मौत मारा जायगा। राजा की सारी सेना साथ लेकर लक्ष्मणसेन कनकावती पर चढ़ाई करने के लिए चला। लक्ष्मणसेन ने बीरपाल के पास दूत भेजा, जिसने उसे कर चुका देने के लिए कहा। बीरपाल के न मानने पर दोनों ओर से लड़ाई छिड़ गई। लक्ष्मणसेन ऐसी बीरता से लड़ा कि उसने बीरपाल की सब सेना नष्ट कर डाली। खून की नदियाँ बहने लगीं जिसमें कि घोड़े हाथी मच्छ कच्छ की तरह मालूम पड़ने लगे। और इस प्रकार लक्ष्मणसेन ने राजा बीरपाल को परास्त कर राजा हंस के सम्मुख ला उपस्थित किया।

राजा हंस ने उसके इस वीरोचित कार्य को देखकर निश्चय कर लिया, कि यह अवश्य ही कोई क्षत्रिय पुत्र है, ब्राह्मण कदापि नहीं हो सकता। उसने लक्ष्मणसेन को आधा राज्य, और अपनी कन्या का विवाह करने की इच्छा व्यक्त करते हुए उसके वंश का परिचय पूछा। उसने कहा, न तो मैं ब्राह्मण हूँ और न बणिक, मैं राजा धीरसेन का पुत्र लक्ष्मणसेन हूँ। जोगी ने मुझे छल से कुएँ में डाल दिया था पर संयोग से मैंने यहाँ पहुँचकर स्वयंवर में जय प्राप्त की। राजा हंस इस वृतांत को सुनकर बहुत प्रसन्न हुआ और विवाह मंडप में राजकुमारी पद्मावती का लक्ष्मणसेन के साथ विवाह कर दिया। राजा हंस नें अपी कन्या को चार फेरों के बाद वहुमूल्य आभरण और आधा राज्य दे दिया। राजा बीरपाल भी राजा हंस से मिलकर अपने नगर को लौट गया। लक्ष्मणसेन और पद्मावती दोनों सुख पूर्वक रहने लगे। पति पत्नी में इतना प्रेम था कि वे दोनों दो शरीर और एक प्राण मालूम पड़ते थे।

भैरवानन्द की बंदना करके कवि ने दूसरे खंड का आरम्भ किया है। लक्ष्मणसेन और पद्मावती का यह सुख अधिक दिनों तक स्थिर न रह सका। भाग्य रेखा के विधान सब को मानने पड़ते हैं। भाग्य के ही प्रभाव से जीव अनन्तकाल तक संसार में परिभ्रमण करता रहता है। लक्ष्मणसेन और पद्मावती के विवाह का समाचार जानकर सिद्धिनाथ जोगी ने राजा से छल करने का उपाय बिचारा। सोच विचार कर जोगी आकाशमार्ग से उड़ कर राजा के पास जाकर स्वप्न में कहने लगा—मेरी कृपा से तुम यहाँ आये और पद्मावती का पाणिग्रहण किया। मैं गुरु हूँ और तुम मेरे शिष्य हो, मुझे प्यास लगी है पानी पिलाओ, अन्यथा मैं तुम्हें श्राप देता हूँ। राजा जोगी की बात सुनकर जब अचानक जागकर उठा तो उसे पद्मावती ने पकड़ा लिया उसके पूंछने पर राजा ने जोगी द्वारा जल माँगने के स्वप्न की बात बताई। पद्मावती ने कहा—सुखपूर्वक सोये रहिये, स्वप्न के पीछे दौड़ना अच्छा नहीं! राजा उसकी बात अनसु नी कर के जोगी को पानी पिलाने के लिए उसके पास गया। और उससे पानी पीने के लिए प्रार्थना की। जोगी ने कहा तुम मुझे यह बचन दो, तो जल पीऊँ, और तुम्हें अमर बना दूँ। राजा ने सहर्ष बचन देते हुए जोगी को पानी पिलाया। योगी के इस बचन का पद्मावती के गर्भ से सम्बन्ध था। राजा धोखे में रहा और योगी ने छल से बचन ले लिया। पद्मावती के द्वारा गर्भ का रहस्योद्घाटन करने पर राजा ने ग्लानि पूर्वक बड़ा पश्चात्ताप किया। अपनी प्रिय पत्नी का पेट फाड़ने के लिए हाथ उठें भी कैसे, किन्तु सत्पुरुषों के बचन का

महत्व सब से अधिक होता है। पद्मावती ने कहा अब कायरता न प्रकट करो मेरा पेट फाड़ो जो भाग्य में बदा होगा होकर रहेगा। रानी ने और भी कहा, योगी गर्भ के चार टुकड़े कराएगा, जिससे पहले में धनुष बाण निकलेगा, जिसे तुम छल बल से प्राप्त कर लेना, जिसके प्रभाव से राजा लोग तुम्हारी सेवा करेंगे। दूसरे में खड्ग निकलेगी जिसे तुम प्राप्त कर सको तो बहुत अच्छा हो। तीसरे में एक धोती निकलेगी जिसे पहनने पर जहाँ चाहोगे उस स्थान पर जा सकोगे। चौथे में एक सुंदर स्त्री निकलेगी। सारी चीजों को प्राप्त कर के फिर जोगी को मार डालना।

राजा, रानी का पेट फाड़ कर गर्भ हाथ में लेकर जोगी के पास गया। योगी के आदेशानुसार राजा ने उसके टुकड़े टुकड़े किये। पहले टुकड़े में धनुष बाण निकला, जिन्हें जोगी के देखते-ही-देखते राजा ने ले लिया। दूसरे टुकड़े में से निकले खड्ग को राजा के हृदय की व्यग्रता के कारण जोगी ने झट ले लिया। तीसरे टुकड़े में निकली धोती को जोगी लेना ही चाह रहा था कि राजा ने छीन लिया। चौथे टुकड़े में से निकली सुंदरी को राजा के देखते ही देखते जोगी लेकर आकाश में उड़ गया।

राजा लक्ष्मणसेन पद्मावती की खोज में तीनों लोकों में घूम आया क्योंकि उस युग में तीनों लोकों में आवागमन संभव था। राजा धोती पहनकर आकाश मार्ग से समुद्र तट पर स्थित कपूर धार नगर, जहाँ चंद्रसेन राजा का राज्य और करोड़पति साहूकारों का निवास स्थान था पहुँचा, लक्ष्मणसेन चिंतित अवस्था में समुद्र के किनारे बैठा था, इधर उसी नगर के निवासी हरिया सेठ का पुत्र परदेस से नाव में भरकर वस्त्र और जवाहरात ला रहा था कि मगर के द्वारा पोत को तोड़ दिये जाने पर डूबते हुए सेठ के पुत्र ने राजा को देखकर उससे बचाने के लिए प्रार्थना की। राजा ने तत्काल सिद्ध बाण फेंका, जिसका गुण था कि वह इच्छित स्थान पर जाकर काम कर आवे। सिद्ध बाण ने सेठ के पुत्र को समुद्र के किनारे खींच लिया। राजा ने उसे धोती पहनाकर तत्काल आकाशमार्ग से उसके नगर को भेज दिया। हरियासेठ पुत्र के आगमन की सूचना पाकर हर्षित होकर उसका स्वागत के लिए आया और पुत्र पुष्पदंत से पोत के उतरने की बात पूंछी। उसने पिता से वोहित के टूटने और समुद्रतट के महापुरुष से अपनी प्राण रक्षा होने का वृत्तांत कहा। सेठ ने तत्काल ही उस उपकारी पुरुष को बुला लाने को कहा। सेठ का पुत्र तुरंत धोती पहन कर लक्ष्मणसेन के पास पहुँचा और पिता के द्वारा उसे बुलाये जाने की बात कही। राजा और पुष्पदन्त दोनों धोती पहन कर आकाश मार्ग से कपूरधारा नगर में पहुँचे। नगर की अनूप रूपवती, राजकुमारी ने राजा को, और राजा ने उसे देखा जिससे दोनों में परस्पर प्रीति उत्पन्न हो गई। प्रतीहार से समाचार पाकर, हरिया सेठ लक्ष्मणसेन को अपने घर ले आया। सेठ ने राजा के प्रति बड़ी कृतज्ञता प्रकट की। संध्या समय राजकुमारी के यहाँ जाने के लिए उत्सुक लक्ष्मणसेन ने धोती पहनी और आकाश मार्ग से उसके महलों पर पहुँच गया। उधर राजकुमारी भी सोलह श्रृंगार करके राजा की प्रतीक्षा में बैठी थी। प्रेमी और प्रेमिका ने सुख पूर्वक केलि करते हुए रात्रि बिताई। राजकुमारी का रूप

ठीक पद्मावती जैसा ही था । नींद खुलते ही प्रातः काल दासियों ने दोनों की अवस्था देखा और राजा को खबर दी कि संभवतः राजकुमारी के साथ कोई राक्षस रमण करता है । राजा ने उस दैत्य को मारने के लिए सैनिकों को 'बुलाया । महल के चारों ओर सिपाहियों को देखकर लक्ष्मणसेन ने बाण के प्रहार से सब को समाप्त कर दिया । दूसरा बाण जब राजा को बाँध कर लाया और लक्ष्मणसेन छुरी से प्रहार करने चला तो चन्द्रावती ने उसका हाथ पकड़ लिया । राजा चन्द्रसेन ने पूछा कि हे वीरपुरुष गंधर्व, राक्षस त्रिभुवनपतिगोपाल तुम इनमें कौन हो ? लक्ष्मणसेन ने कहा न तो मैं राक्षस हूँ न गोपाल, मैं तो मनुष्य हूँ । राजा चन्द्रसेन ने आधा राज्य और कन्या दान करने का वचन देते हुए उससे जातिकुल आदि बताने की प्रार्थना की । लक्ष्मणसेन ने जब अपना संक्षिप्त वृत्तांत बताते हुए परिचय दिया तो राजा ने हर्षित होकर तत्काल पुरोहित को बुलाकर शुभ लग्न बिचरवाया और चन्द्रावती के विवाह की तैयारी की । नगर में सर्वत्र उत्सव होने लगे । स्थान-स्थान पर नाटक और उत्सव होने लगे । जेंउनार की विराट आयोजन हुआ । राजा रईस सभी विवाह समारोह में एकत्र हुए । विवाह विधिपूर्ण कर राजकुमारी का ब्राह्मणों द्वारा वेदध्वनि के साथ वरमाला पहनाने के अनंतर लक्ष्मणसेन के साथ विवाह हो गया ।

विरहिणी पद्मावती को प्राप्त कर ज्योंही जोगी । उस पर हाथ डालना चाहा कि पद्मावती अपना आसन छोड़ कर अलग हट गई । और जोगी से कहा तुम मेरे पिता हो । मैं तुम से यह वचन माँगती हूँ, कि तुम मेरे पति का दर्शन करादो ! अन्यथा मैं आग में जल मरूंगी । जोगी ने स्त्री हत्या का भय खाकर कहा अच्छा चलो तुम्हें राजा से मिलाता हूँ । तदनंतर खप्पर, काती, फरसी, और स्त्री के साथ तत्काल दोनों नगर के द्वार पर आ पहुँचे । पद्मावती ने कहा ! नाथ जी, ये पाखंड आपको शोभा नहीं देता । मेरा कहा मानकर खंग और फरसी को के सेंमर वृक्ष में छिपा दो । जोगी ने उसका कहना मानकर और खंड और फारसी को सेंमर वृक्ष में छिपाकर अपने शरीर में विभूति रमाकर कटासन पहना और चौहट्टे में आकर उपस्थित हुआ । फिर पनघट, बाड़ी और देहरा सर्वत्र घूमते हुए डमरू बजाते जोगी और पद्मावती राजभवन के पास आये ।

राजा लक्ष्मणसेन और चन्द्रावती महल में चौपड़ खेल रहे थे । चन्द्रावती ने पद्मावती की आन दिलाते हुए पासा फेंका । नीचे खड़ी पद्मावती को अपना नाम सुनकर निश्चय हो गया कि राजा अवश्य यहाँ है । इतने में लक्ष्मणसेन ने पद्मावती को देखा, आँखें चार होते ही पद्मावती ने फूल दिखाकर सेंमर के पेड़ पर जाकर अस्त्र-शस्त्र ले आने का इशारा किया । राजा तत्काल ही धोती पहनकर निर्दिष्ट स्थान पर पहुँचा और दोनों वस्तुओं को ले आया । जोगी ने प्रयत्न तो किया पर पिछड़ गया । राजा ने कहा, पहले मुझे कुएँ में डाला, फिर छलपूर्वक मेरी स्त्री को लिया और मुझे बनवास दिया अब मेरे पास आये हो तो बचकर कहाँ जाओगे । जोगी ने छुरी निकाली । राजा ने खड्ग से प्रहार किया जोगी जितने ही रक्तबिन्दु गिरते थे उतने ही सिद्धिनाथ आसमान में उपस्थित होकर युद्ध करने लगते थे । असंख्य जोगियों से अकेला राजा

युद्ध करता रहा। लक्ष्मणसेन ज्योंही जोगी के अंगच्छेद करता वे फिर परस्पर जुड़ जाते। जोगी खप्पर और काती एक हाथ में लिए हुए सिंगी नाद करता हुआ युद्ध करता था पद्मावती ने राजा से कहा, धनुष संभालिए। राजा ने धनुष के द्वारा जोगी को मारा और उसकी काती ले ली। इतने में ही जोगी ने पक्षी रूप धारण कर लक्ष्मणसेन के सिर पर आक्रमण किया। राजा ने खाने के लिए मुंह फाड़े हुए पक्षी को देख आश्चर्य से पद्मावती की ओर देखा। पद्मावती ने कहा—स्वामी ! जब तक भँवरे गुंजार कर रहे हैं, तब तक यह जोगी नहीं मरेगा। राजा ने शीघ्रता से धोती पहन आकाश में उड़ते हुए भँवरों को मार डाला। जोगी अब सिद्ध होकर उड़ गया, राजा ने उसे मार कर समाप्त कर दिया।

लखमसेन चन्द्रावती के पास गया। पद्मावती और चन्द्रावती दोनों बहनें आपस में मिलीं। राजा ने अपने श्वसुर चन्द्रसेन से अपने देश को जाने के लिए बिदा माँगी। चन्द्रसेन ने अनेक वस्त्रालंकार देकर पुत्री को बिदा किया। हरिया सेठ भी अपने वंश की रक्षा करने वाले लक्ष्मणसेन के प्रति कृतज्ञता प्रकट की। लक्ष्मसेन ने सब से बिदा ली और धोती पहनकर धनुषवाण की सहायता से तत्काल हंस राजा की नगरी गढ़ सामौर जा पहुँचे। राजा हंस अपनी पुत्री और जमाता से आनन्द पूर्वक मिला। फिर लक्ष्मणसेन के अपनी राजधानी लखनौती जाने की इच्छा प्रकट करने पर राजा हंस ने भी बहुत से हाथी, घोड़े आदि दायज के साथ उसकी बिदा की। जिस मार्ग से लक्ष्मणसेन पाताल देश से आया था उसी मार्ग से लखनौती को लौट गया। राजा के पुनरागमन से समस्त प्रजा और कुटुंबीजन हर्षित हुए। प्रधान के पूछने पर राजा ने जोगी द्वारा कुयें में डाले जाने तथा सामौर की राजकन्या पद्मावती एवं कपूर धारा की चन्द्रावती से पाणिग्रहण का समस्त वृतांत कह सुनाया। राजा लक्ष्मणसेन अपनी रानियों के साथ सुख भोगता हुआ में राज्य करने लगा।

रचना का आरंभ का पृष्ठ इस प्रकार है :—

श्री ॥ ॐ ॥ गणपति कुल देव्याय नमः।

सुणउ कथा रस लील बिलास। जोगी मरण राय बनबास।
पद्मावती बहुत दुस सहइ। मेलउ करि कवि दामउ कहइ।१

कासमीर हुंती नीसरइ। पंचनहू सज अमृत रस भरइ।
सुकवि दामउ लागइ पाय। हम बर दियो सारद माय।२।

नमुं गणेश कुंजर सेस। मूंसा वाहण हाथ फरेस।
लाडू लावण जसभीर भाल। विघन हरण समरूँ दुंदाल।३।

संवतु पनरइ सोलोत्तरा मझारि। जेष्ट वदि नवमी बुधवार।
सप्त तारिका नक्षत्र दृढ़ जाणि। बीर कथा रस करूँ बषांण।४।

सरस बिलास काम रस भाव । जाहु दुरीय मनि हूऊ उछाह ।
कहइत कीरत दामो कवेस । पद्मावती कथा चिहुंदेस ।५।

सरसति आयसि दीयउ जाम । रच्यउ कवित कवि दामइ ताम ।
लक्षण छंद गूढ़ का भाई । तेह ज दीउ हरिस करि माई ।६।

सिधनाथ जोगी सो नाम । हीडइ घर पुर पाटण गाम ।
खापर काती करि लइ डंड । इणि परिफीरइ सिध नवखंड ।७।

गढ़ सामौर हुंस तिहां राय । योगी उपमि गयो तिणि ठाय ।
सबद घालइ सो उपम जाइ । पद्मावती दीठउ तिण ठाय ।८।

ससि बयणी नितु अमृत चवइ । पूछइ सिध कुमर हइ जाय ।
कइ तु परणी कइ कुआरी अहई । योगी कइ विभासण पछइ ।६।

एक उतर सउ नरवइ वहइ । सो मो वरइ कुमरि इमि कहइ ।
वचन प्रमाण हीयइ द्रिढ़ लीय । धन-धन हुंस राय की धीय ।१०

एकोतर सउ नरवइ मरइ । जउ कुमरीय सयंवर वरइ ।
सुण्यो वचन योगी तिणठाय । सिधनाथ विमासण माय ।११।

वस्तु

दिढ़ योगी दिढ़ योगी रूप वरनारि तं ।
धूमंवि धरणी पड्यउ विकल मनि मूंकी ।
अचल नयनी सिसि घटी वचन देहु नहु जीभ सूकीय ।
तप जप संजम सहु रह्या नयण वाण कियो मारि ।
एकउतर सउनर वहई सो नर परणइ नारि ।१।

चउपही

एतउ कहि पद्मावती जाइ । जोगी पुहंतो पुहवी आय ।
करइ आलोच मरम आंपणा । पुण लागे नरवइ देखणां ।
योगी सिधनाथ तिण ठाई । सुरंग दीधी तिण कूआं मांहि ।
गढ़ सामउर हुंस की बाल । तिणि कारण नर भरइ भूपाल ।१४।
चंडपाल भड़ साहस धीर । आण्यउ चंद्रसेन बर बीर ।
आण्यउ अजयपाल धरपाल । हल हमीर आण्यउ हरपाल ।
डंडपाल घर आण्यउ बली । ग्रह करि घाल्यउ कूआ तली ।

सहस पाल सामंत सी भेव........,..................

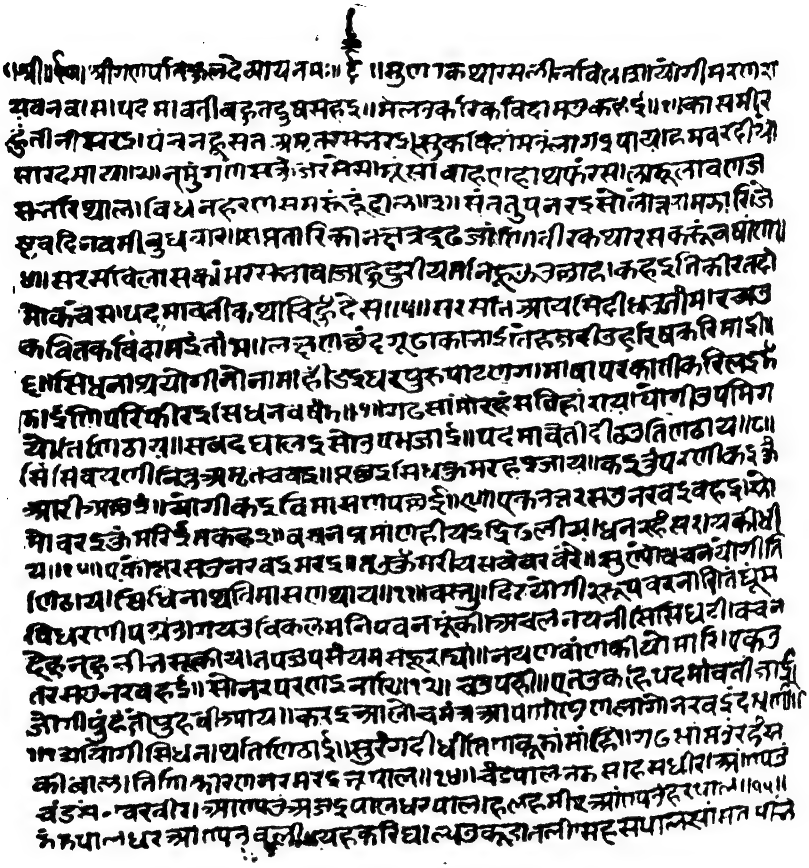

ग्रंथ का प्रथम पृष्ठ

# लक्ष्मणसेन पद्मावती

।।श्री।।६०।। श्री गणपति कुलदेव्याय नमः।। ।।

सुणउ कथा रस लील विलाश । योगी मरण राय वनवास ।
पदमावती बहुत दुष सइइ । मेलउ करि कवि दामउ कहई ।।१।।
कासमीर हुंती नीसरइ । पंचनहू सत अमृत रस भरइ ।
सुकवि दामउ लागइ पाय । हम वर दीयो सारद माय ।।२।।
नमुं गणेश कुंजर सेस । मूंसा वाहण हाथ फरेस ।
लाडू लावण जस भरि थाल । विघन हरण समरुं दूंदाल ।।३।।
संवतु पनरइ सोलोत्तरा मझारि । जेष्ट बदि नवमी बुधवार ।
सप्त तारिका नक्षत्र द्रढ जाणि । वीर कथा रस करूं वषांण ।।४।।
सरस बिलास कामरस भाव । जाहु दुरीय मनि हूऊ उछाह ।
कहइति कीरत दांमो कवेस । पदमावती कथा चिहुं देस ।।५।।
सरसति आयसि दीधद जांम । रच्यउ कवित कवि दांमउ नांम ।
लक्षण छंद गूढा का भाई । तेहज दीउ हरिष करि माई ।।६।।
सिधनाथ योगी नो नाम । हींडइ घर पुर पाटण गाम ।
षापर काती करि लइ डंड । ईणि परि फीरइ सिघ नवखंड ।।७।।
गढ सामौर हंस तिहां राय । योगी उपमि गयो तिणि ठाय ।
सबद घालइ सो उपम जाई । पदमावती दीठउ तिण ठाय ।।८।।
सिसि वयणी नितु अमृत चवाइ । पूछइ सिधकुमर हइ जाय ।
कइं तु परणी कइ कुमारी अछइ । योगी कइ विमासण पछइ ।।९।।
एक उत्तर सउ नरवइ वहइ । सो मो वरइ कुमरि ईम कहइ ।
वचन प्रमाण हीयइ द्रिढ लीय । धन धन हंसराय की धीय ।।१०।।
एकोत्तर सउ नरवइ मरइ । तउ कुमरीय सयंवर वरै ।
सुण्यो वचन योगी तिणि ठाय । सिधिनाथ विमासण थाय ।।११।।

## वस्तु

दिठ योगी दिठ योगी रूप वर नारि तं घूमवि धरनी पड्यउ गयउ विकल मनि मूंकी ।
अचल नयनी सिसि घटी वचन देहु नहु जीभ सूकीय ।
तप जप संयम सहु रह्या, नयण वाण कियो मारि ।
एकउतरसउ नर वहई सो नर परणइ नारि ।।१२।।

## चउपही

एतउ कहि पदमावती जाई । जोगी पुहतो पुहवी आय ।
करइ आलोच मरम आंपणां । पुण लागो नरवइ देखणां ।।१३।।
योगी सिधनाथ तिण ठाई । सुरंग दीधी तिण कूआं मांहि ।
गढ सामउर हंस की वाल । तिणि कारण नर मरइ भूपाल ।।१४।।
चंडपाल भड़ साहस धीर । आण्यउ चंडसेन वरवीर ।
आण्यउ अजयपाल धरपाल । हल हमीर आण्यउ हरपाल ।।१५।।
डंडपाल धर आण्यउ वली । ग्रह करि घाल्यउ कूआ तली ।
सहसपाल सांमतसी भेव । विजयचंद्र आणीयउ गंगेव ।।१६।।
साल्ह सुलक्षण आण्या वली । जोगी भय प्रिथवी खलभली ।
आंण्यो वैलोचन वैरीलाल । सिधि संकेत राउ भडिमाल ।।१७।।
द्रौणा सुर वं कंता ठाई । सो धरि आण्यउ सिधि उठाई ।
बहुत राउ छल योगी करइ । दह दिस नरवइ आणी धरइ ।।१८।।
वल करि पौरष करइ विनिवाण । ते घाल्या कूआ मांहि आंण ।
योगी सिध कहइ कवि दाम । छइ महीपति सीझइ काम ।।१९।।
अहि निस जोगी न रहइ ठाय । धरि आण्या निन्याणू राय ।
बइठउ चिंतइ कूआ मांहि । अजीय रहइ सबल दोई राय ।।२०।।
लखमसेन लखणउती जाणि । सो आणू उगतइ विहाण ।
पहु फाटी भणसारउ भयो । योगी हाथ विजौरो लियो ।।२१।।
करइ कारिमा रतन चौयारि । सिधि पहुंतो सीह दुवारि ।
शबद घालि करि ऊभउ भयउ । एकनि मुख माहै उपमि गयउ ।।२२।।
अचिरिज बात कहइ सइ कोई । जोगी रूप कइ मुनिवर होई ।
कांखि अंधारी मुद्रा कानि । पाउ पावड़ी भीनै वानि ।।२३।।
कहइ राय सु सवद पुकारि । योगी आणउ वेग हकारि ।
तउ प्रतीहार कहइ सुणि राय । सबद घालि सउ ऊपमि जाय ।।२४।।
ईसा बचन सुणि कोप्यउ राय । छेदूं सीस खड़ग कै घाय ।
एक बारि मउ सिधि दीखालि । नहीं तर काढुं देस नीकालि ।।२५।।

## वस्तु

ताम बउलइ ताम बउलइ वयणि प्रतिहार, अति संकट संसइ पडघउ ।
एह बोल मइं कांइ बोल्यउ । नयण नींद नहु भूखि घट ।

हूँ भूल्यउ अपराध चल्यउ वाड़ि देउल चउहटा दीठा घरि पुर ठाय ।
दिवस चउथइ पंचमइ योगी मिलियउ आय ।।२६।।

## चउपही

योगी देखी चित सु ं कहइ । गह अंक वालि चरण ले रहइ ।
चालउ वेग कहइ प्रतिहार । जीव उगारउ अब की वार ।।२७।।
हम उदास वनि योगी आहि । अर हीडइं सचराचर मांहि ।
हम ऊपरि छइ केहउ भाय । कारण कवण वउलावइ राय ।।२८।।
ज्यूं मइं नाम कह्यउ तुम तणउ । हरखित भउ राउ मनि घणउ ।
कहइ सिध आणउ ततक्षणी । तुम देखण की आरित घणी ।।२९।।
चाल्यउ सिध साथ प्रतिहार । वेगि पुहुता सीह दुआर ।
कीयउ तिलक मोहनी उपाई । तो तिणि नरवइ भेटयो जाई ।।३०।।
लखमसेन जब जोगी दीठ । करि प्रणाम सम तुल्य वईठ ।
दियो स्यंघासण मुनिवर योग । हुआ एकांत उठाड्या लोग ।।३१।।
देई बीजउरो जोगी गयो । वानर हाथ उछाली लीयउ ।
फाड़ि वीजोरउ लागउ खांण । पड़िया रतन नरवइ अगिबाण ।।३२।।

## वस्तु

रतन देखी रतन देखी पडीउ धर राई, कवण सिध मो देई गयो ।
जोगी रूप कइ श्रेष्ट आयो । हाहा दैव संसइ पड्यउ, बोल एक नहु पूछण पायो ।
दिवस पंच दस सेवज्यइ, की जइ भगति अपार ।
कइ तूसी नइं वर दीयइ, कई होई अमर संसार ।।३३।।

## वस्तु

रयण देखी रयण देखी कहइ ईम राय, जोति ससोभित तेज घण, कोई सिध अम्ह पास आयो ।
देव रूप मन मोह्यीयो छंडि राज वन खंड धायो ।
हय गय साहण सयल तिजि लागो जोगी आ[लि] ।
अंतेउरि सहू मेल्ह करि, छंडइ राज दुआरि ।।३४।।

## चउपही

तब छांड्या सतखिणा आवास । नकलि राउ गयो वनिवास ।
झूरई परज कवण दुख भयउ । लखमसेन योगी पूठि गयउ ।।३५।।
झूरइ बंभण भाट वीयास । अंतेउर झूरइ रिणवास ।
पवन वेग झूरइ भूपाल । पणि जोगी भेट्यउ अंतराल ।।३६।।
झूरइ माय ताय अरु पूत । झूरइ परिग्रह सयल संयुत ।
छांड्यउ राज तिया बहु भोग । गढ़ लखणोति पडीउ विजोग ।।३७।।

तब राजा चाल्यउ वनवास । हय गय साहण छंडी आस ।
छड़ि नयर वन भीतर गयउ । तब राजा जोगी भेटीयउ ।।३८।।
भेटियो सिधराई तिणि ठाई । दोई कर जोड़ी लागइ पाय ।
भणइ सिध नरवइ नर राज । लखणउती छांडी किण काजि ।।३९।।
सूकइ कंठ कमल कुमलाई । ग्रहो सिधि मो पाणी पाई ।
योगी कहइ निसुण हउ राय । पाणी अन्न नहीं रण ठाइ ।।४०।।
बाहुड़ि तुम्ह जाऊ घर राई । स्यंघासण सुख लील कराई ।
कहइ राय स्वामी अवधार । पाणी पाई मरण की वार ।।४१।।
मइं धन लिखमी छंड्यो भोग । लागो भाव देव तुम्ह योग ।
अति अकुलाणो बोलइ राय । नव तिण योगी रच्यउ ऊपाय ।।४२।।
माग न सूझै वन सांघणो । सोल्यउ नीर कूवा सर तणउ ।
विरख बीजोरी कुअड़ा पालि । विहुं पाखलि बांस की जालि ।।४३।।
पाय पखालि चालि नर नाह । पाणी पीया सूआं सुख छांह ।
दोइ जण बइठा कूअड़ा पालि । करइ कारमउ नीर अंतरालि ।।४४।।
करवउ बंधि नेज वर वीर । लखमसेन भरि काढ्यउ नीर ।
भरि करिवो लेइ आयो राय । जोगी पीयो परखाल्या पाय ।।४५।।
दूजो भरण गयो तिहां चाहि । तव नाख्यो नर कूवा मांहि ।
राल्यउ राउ वेगइं ततक्षणा । तब तिण नरवई दीठा घणा ।।४६।।
आपणपउ मेल्हीयउ विसारि । तब नरवइ पूछीया हकारि ।
तुम्ह कुं ए कुण भयउ उपाई । कारण कवण कहइ छै राय ।।४७।।

## वस्तु

भणइ नरवइ भणइ नरवइ निसुणि नरनाह तुम्ह नीस्वास हुतो घणो
कहइ राव हम एम जाण्यउ, ईणि जोगी जग बोईयो, लखमसेन
भड़ तूंहि आण्यउ । धीरसेन का पूत सुणि, सूरज उदया मझारि
पदमावती योगी वरइ एकोत्तर सउ मारि ।।४८।।

## चउपई

लखमसेन नरवइ सुं भणी । अति अकुलाणा होवउ डणी ।
काढ सकल कहइ छइ रायु । हमकुं छोड तुम्ह मति जास ।।४९।।
करइ भगति अर लागइ पाय । सुणि स्वामी लखणउती राइ ।
जीवी दान दीयउ जस लेई । काढि कूआ थइ बाहर देई ।।५०।।
करइ आखड़ी नरवइ घणा । राजा लखमसेन कारणा ।
तुम्ह खुं छांडि जउ जाऊं बहोड़ि । शाखि धरइ तेत्रीसइ कोड़ि ।।५१।।
लखमसेन भड प्राण संभार । अह करि नरवइ घाल्या राल ।
एक ओटइ एक जाई पुलाई । मत योगीय पुहचे आय ।।५२।।

सिघनाथ न वन खंड पइठ । निकलति खोजणी नर दीठ ।
खीज्यो खप्यो गयो सब पाय । लखमसेन सब काढया राय ।।५३।।
लड़खड़ पड़इ अर न्हासत जाय । आपुण रह्यउ एकेलउ राय ।
विलखत वदन नरेश्वर भयउ । मुझवड़ि जाहु राउ इम कह्यउ ।।५४।।
ईणि बोलइ जोगी पर जल्यो । जाणे विश्वानर घृत जिम ढल्यो ।
जोगी तिहां जब छांडी आस । लखमसेन बहु कीयो विणास ।।५५।।
बावन हाथ सिला दइ सारि । राव अबूभयो कूआ मझारि ।
एतो करी योगी ईम भणई । एह पुरष ए कूआ तणइं ।।५६।।
एतउ कर जोगी उठ गयउ । बूज्यउ कूओ अंधारउ भयो ।
देखी आगास राउ चींतव्यउ । दैव विधाता काहो कीउ ।।५७।।
परजा बंधण करतो लोई । सो विधि देव देखाली मोहि ।
कूड़ो विसन लोभ चित धरयउ । जोगी पूठि याम नीसरयउ ।।५८।।
कइ मै गाई त्रिया नहू गीणी । बिण अपराध मइं परजा हणी ।
मान न राख्यउ मइं परिजण तणउ । देव दीखाल्यउ यउ दुख घणउ ।।५९।।
कइ मै वाहीया मागणहार । हा विधी दुष दीयउ करतार ।
कइ मैं दव दीया वन वास । तिण करण नर भयउ नीरास ।।६०।।
जीवदया नहु पाली देव । सगुर साधु नहु कीधी सेव ।
रयणी भोजन अणगलीया नीर । दीयो विधाता दुख सरीर ।।६१।।
कइ मइं गोचर षडीया आप । कइ मई बंदी जन लीया सराप ।
कइ मइं सरवर फोडी पाल । तो नीसरयउ हूं जोगी आलि ।।६२।।
नींदइ करम करइ वहु सोस । देव विधाता नाहीं दोस ।
लिख्यो लिलाट ते निहचै होइ । देव दोष न दीजै कोई ।।६३।।

## वस्तु

गया नरवइ गया नरवइ पहुवी मझारि । रहीयो कोई न संभल्यउ
ईणि देव सब जगुह विहडयो । सायर बंधण राम भयउ, दइत बंश जिणि
सर्व निकंदयो ।। जुधीष्टर हरिचंद गयउ, फरसराम संसार ।
एता सब दहि ले गया, हूं कुण मात्र विचार ।।६१।
गयउ नल तिजे दमयंत । गयउ दरजोधन गरव करंत ।
गयउ मान्धाता सगर गंगेव । गया पंच पंडव सहदेव ।।६२।।

चला लक्ष्मी चला प्राणा चला यौवन जीवनम् ।
चला चलेन संसारं, धर्म एकोहि निश्चलम् ।।१।।

ईम च्यंतइ नर कूआ मांहि । हा हा धिग रहइ नृप वाहि ।
चूकी फाल सीह टलवलइ । तिम नर चंद काया टलवलइ ।।१।।

## चउपही

मूझ सरिषो मूरष नवि भयो । आयुध एक न साथइं लीयउ ।
तेसुं कंठ छेदति आपणउ । तउ पणदुख न देखति घणउ ।।६२।।
फिरि फिरि जोवइ कूआ मझारि । नरवइ च्यंतइ मनह मझारि ।
छोह् बंध कूआ वतक्षणां । हाथै ईंट लागी लक्ष्मणां ।।६३।।
ईंट उषालि तिम हृणइ कपाल । दीठो माग उजास पयाल ।
राजा करइ सु साहस घणा । दूजी इंट लीई ततक्षणां ।।६४।।
पणि तीसरी जउ लीधी करी । चउथी लेकरि राली धरी ।
दीठी पइड़ी मांग निहाल । लखमसेन भड़ गयउ पयाल ।।६५।।

## दूहा

साहस सत न छोडियइ, जइ बहु संकट होई ।
पुण्य पसाई लखमसी, गयो पतालइ जोई ।।१।।

## चउपही

तउ नरवइ चाल्यउ तिण वाल । ऊभो रह्यउ सरोवर पाल ।
फिटक बंध बंध्यउ चिहुं दिसां । चकवा चकवी रमइ सारिसा ।।६६।।
सजल सरउवर आगम अपार । पडवणि घणी सयल विस्तार ।
पदमणि कमल भमर भमाय । तिणि सर हंस नितु केलि कराय ।।६७।।
सरवर जीव वसइ अति घणा । अंत न लहुं कमलदल तणां ।
अनुदिन पीई विमल जल गाय । चकवा चकवी केलि कराय ।।६८।।
जलचरजीव मगर माछली । चातुग मोर करइ अति रली ।
सघन वन चिहुं दिसी विस्तार । भार अठार नुं लहुं पार ।।६९।।
सोम कमल परिमल महकाई । सुरतेत्रीस कोडि तिण ठाई ।
बहुत जीव तिण सरवर चुणइं । पुहप वास भमरा रुणझुणई ।।७०।।
ऋषि संध्या नित बंदई आय । धोवती पषालइ ठायें ठाई ।
तिण सर विप्र जपइ गाइत्री । पूजइ देव हाथ कर वती ।।७१।।
सरग हूंती अपछर ऊतरइ । ईस गवर की पूजा करइ ।
जाणे करि चंद उग्यो जामिनी । तिणि सरि रमल करइ कामिनी ।।७२।।
झलकै कुंडल सरवर पालि । जाणे हीरा मेल्हया ढालि ।
निरखइ बाह् ते निहसइ चीर । वर कामिनी भरइ तिहां नीर ।।७३।।
सोल वरस की सुललित नारि । तास रूप भूलो त्रिपुरारि ।
सुकवि वीर रस 'दामउ' कहइ । लखमसेन मुख देखि विरहइ ।।७४।।
मुख पखालि करि पीयउ नीर । तिलक काढि बइठो वर वीर ।
कामणि कहइ ईस को अंश । कइयो मान सरोवर हंस ।।७५।।

### वस्तु

दिठ नरवई दिठ नरवइ जपइ सा नारि,
जे मैं सुपनंतर पेखीयउ कइ मयंक इणि ठामि आयउ।
कइ ब्रह्मा कइ अमर पति, देखि रूप वर नारि भायउ।
एक पाणी म्यंतर रही कुंभ न भरणउ जाय।
एक भूली भुइं गति गई पुरष देखि नयणांय ॥७६॥
लखमसेन देखइ नृपति, भूलीय भयण मयंद।
नयण नयण वंकुर परी, वसि कीय मत्त गयंद ॥१॥
सरस सकोमल कुच कठिण, गय गति लंक विसाल।
हंसा चंचल कनक खंभ, चढी भुयंगा माल ॥२॥

### चउपही

खित्री वेस वीर परिहरइ। विप्रवेस तिहां नरवइ करई।
सरवर मेल्ह गयो ततक्षणा। तब लागो दह दिसि जोइणा ॥७७॥
देखि रूप पयालि लोय। भूल्यो दूल्यो न दीसइ कोय।
ठाम ठाम बंभण का झूल। भरडा भगति अनासक मूल ॥७८॥
मृग नयणी जलचर गामिनी। मुनि मन हरैं देखि कामिनी।
राज दुआर करइ गज चीस। वांक मुंहा तिहां मेल्हइ हींस ॥७६॥
गढ मढ मंदिर पोलि प्रगार। नयर बीस जोयण विस्तार।
करइ राज हंसराइ नरिंद। जाणे अमर पुरु वीलसइ गोव्यंद ॥१॥

### नाराच छंद

देखियो सरवर नयर नयणे भूलियो नृप चाहि।
ए नहि सम वड़ि नहीं रवि तलि ए अमरपुर आहि॥
देखियइ सरोवर अति मनोहर तिहां हंस केलि कराई।
तिहां नगर नरपति जाणे सुरपति सोहैति सुरंग सभाई॥
लखमसेन देखी नयन, भूल्यो मनह मझारि।
कवि दामो कीरत करइ, कथा विविध विस्तार ॥२॥

### चउपही

ईसउ नयर फिरि दीठउ घणउ। नाम न कहइ वीर आपणउ।
घर बंभण कइ पहुंतो जाइ। कहइ माय मो पाणी पाई ॥८०॥
...तो बंभण पूछइ सच भाई। कवण स नगर कवण तुझ ठाम।
कहि कहि माई वाप को नाम। ... ... ... ॥८१॥
गढ़ लखणउती उतिम ठाई। लखमसेन तिहां कहियइ राय।
तास परोहित बंभण जाति। सूतउ धरि आण्यउ अधराति ॥८२॥

### वस्तु

भणइ बंभइ भणइ बंभण निसुण रे वच्छ,
अवसि पुत्र तूं मुझ तणउ तुझ तात सुर लोक पायउ ।
अख्यत लेई वधावियउ मुझ आवास धन धन आयउ ।
अर्थ द्रव्य तुझ वसि करूं, राव भेटाडुं आज ।
जिणणी करि मुझ मो मानज्यो, विलस पुरोहित राज ।।८३।।

### नराच छंद

चोकस मर्दन न्हाण नीका, देव पूजइ वीर ।
सित्यर भख भोजन नीपना, चंदन चरचि सरीर ।।
करुलेइ पुस्तक अनइ द्वादस, गलि जनोई घालि ।
कहइ बंभण राउ भेटण, पुत्र वेगो चालि ।।८४।।
कनक धोवति ताम पइहरी, चाल्यउ वेगि तुरंत ।
तिहां माई आगइ पुत्र पाछइ, राज पउली पहुंत ।।
प्रतिहार जइ राउ वीनव्यउ, कहिय वात विचार ।
राज परोहित तास घरणी, स्वामी ऊभिय वार ।।८५।।

भणइ प्रतिहार निसुणहो राय । कहउ सीख मति करउ पसाउ ।
आयस द्यउ तउ आणुं जाय । नहि तर बाहुडि देहु पठाई ।।८६।।
नरवई भणइ निसुण प्रतिहार । आणि वेग म लाईस वार ।
राज भुवण बंभण संचरइ । भेट्यउ राउ वीनति करइ ।।८७।।
धर्म्म पुत्र छइ माहरइ देव । अहनिशि करइ तुम्हारी सेव ।
नख सिख मुख निरखइ नरनाहि । निश्चइ राज धुरंधरि आहि ।।८८।।
रूपवंत दीठउ जब राय । च्यार वेद मुख पाठ भणाइ ।
सुललित वाण मनोहर भाय । जांणि कई सो अपर सुर राय ।।८९।।
लक्षण बतीस देखि करि राई । कीयो परोहित पूज्या पाय ।
अति स्वरूप सुंदर सुविशाल । चडीय गोखि बइठी छइ बाल ।।९०।।
दान दक्षिणा अविचल भाय । दोइ कर जोड़ी आपइ राय ।
रुघ युग स्वामि अथर्वण भणी । देई आसीस चाल्यउ घरि मणी ।।९१।।
जातो दीठो परोहित धरां । वेधी मयण उरइ भीतरां ।
देखि रूप अकल अभेव । कइ सुरराय कइ मुनिवर देव ।।९२।।
कैइ गण गंध्रव कइ व्यंतरा । मूरति मदन मल्ल दिनकरा ।
चंद्र जेम तारायण सार । कइ कंदर्प्प लीयउ अवतार ।।९३।।
अमल रोम राइ छइ अंग । अरि बाबरि लहकइ सरवंग ।
लहकइ कुंडल तेज उछाह । केल सकोमल होइ भुज बांह ।।९४।।

वयण जीह जिम ग्रमीम झराई । ग्रंकुश हाथ पदम दुह पाई ।
कर ऊघड्यौ भीमाणी रेह । सोना समी झलकंती देह ।।६५।।
विकसइ कमल चंदन रस भाय । रगत चंदन मलपंतइ पाय ।
ईसो रूप नहु बंभण होई । राजकुमर जाणइ सहु कोई ।।६६।।
जाता कुमरी निरखै देह । सोल कला जाणु उपम रेह ।
लक्ष्मणसेन जउ यउ दृष्ट चाहि । राजकुमरि बैठी रंग मांहि ।।६७।।
दिष्टइं दिष्ट मेलावउ भयउ । नयण कटाक्ष वाण उरु हयो ।
पुहतो वीर जाय मंदिरा । मुंहर धुकि पडी छइ धरा ।।६८।।

व्यापो बिरह नयणा जल भरइ । ग्राकुल व्याकुल काया करइ ।
ग्रगिन झाल सोहिली होई । विरह विथा नवि राखइ कोई ।।१।।

केसर हथल सोहिली खड्गह धार सुहाई ।
पणि सर्ब ग्रगनि ते सीयली । वीरह न सइं हणउ जाई ।।२।।

नयणां केरी प्रीतड़ी, जइ करि जाणइ कोई ।
ले रस नयणा ऊपजइ, ते रस जड़ी न होई ।।३।।

नयणा करै तो नेह करि, नहिं तर नयण नीवारि ।
सूका लाकड़ भमर जिम, हेडि वे हम पाड़ि ।।४।।

लक्ख्मसेन मनि कीयउ वीचार । नयणा नयण मीलावी नारि ।
नारी वरण कवि दामउ कहइ । सांभलि चतुर हीयै गह गहै ।।

## वस्तु

हसइ बोलइ हसइ वोलइ क्रोध तजि दूरि स्यामोदरि सुंदरी ।
सींह लंक सा हंसगमणी प्रेमरंग प्रेमावती सील सील सा चंद वयणी ।।

ग्रति परमल तन उल्हसइ, कस्तूरी कपूर ।
साची पदमणि जाणीयै, दीप मुह वचि सूर ।।६८।।

नयण चंचल नयण चंचल चपल चल चित्त ।
बोलती मधुरे स्वरा जिम वसंति कोकिला वासइ ।।

जाणिक भमरा भमरी रुणझुणइ ।
कमल फूल जिमि मुखहि विगसइ ।।

कुरल केस मोती ठव्या, निलवर धरइ सहकार ।
एता लक्षण चित्रणी दामउ कहइ विचार ।।६६।।

घोर ग्रंगहि घोर ग्रंगहि चरण पण घोर, चालंति धड़हड़इ ।
कोलाहल कर लव प्रकासइं लाज नहीं मन ग्र्यंतरा, देखि रूप नर दूर नासइ ।

ऊरि मोटी नान्हां नयण तसु तन मंद गंघाय ।
एता लक्षण हस्तनी दामउ कहइ सुभाय ।।१००।।

लंव वयणी लंब वयणी बोलती विकराल ।
रींछ जेम घट रोम घण खरह गंध तसु अंगि आवई ।
रमई जाइ पर पुरुषसुं कंत सरिस बहु भोग भावई ।
घर भींतरथी धूर हरै नित उठ कलह कराय ।
एता लक्षण संखिनी अवसि भरतारह खाय ।।१०१।।

## दूहा

पदमनी पोहप राचंति चित्र राचंति चित्रणी ।
हस्तिनी नृत्य राचंति, कलह राचंति संखिणी ।।१।।
पदमनी पोहर निद्रा च, द्विपोहरा च चित्रणी ।
हस्तिनी चमक निद्रा च, अघोर निद्रा च संखिनी ।।२।।

## चउपही

वेग सचेत कुमर जव भई । राणी दासकारवि लयाई ।
आणी कुमर माय कइ पास । कहइ बात मनि मेल्हिनी सांस ।।२।।
जिणणी पूछइ सच सुभाई । कारण कवण अंग कुमलाई ।
अबला बाली लागी बोलणा । सांभलि वयण माय मुझ तणां ।।३।।
सात वरस की जे परणाई । जे वइकुंठा वास लहाई ।
वार वरस की होई कुमारी । रहइ तास मंदिरह मझारि ।।४।।
सोल वरस की राखी मात । तेणी पाप छीपइ तसु तात ।
जाणहं भोग सयल रस भाय । छीपइ दोष वाप अर माय ।।५।।
पितुः पितव्य भ्राता च, चतुर्थो मातुल स्तथा ।
चत्वारो नरकं यांति, दृष्ट्वा कन्या रजस्वला ।।

## वस्तु

बार वरसि बार वरसि, वाल मति होई तरुणी तनु उल्हसइ ।
चौद वरस सुंहि लाल छीपइ ।
पनर गया मयमंत जिम देखि रूप नर दृष्टि भूलइ ।
वरस पंचीसा उपरइं यौवन ढीलौ जाय ।
उहर कपोलां अहर रस दिन दिन तेज घटाय ।।६।।

## चउपही

पदमावती विरह तनु ताप । सुणीय विगति सुध लाधी वाप ।
सुमा परोहित मंत्रि हकारि । आप दीष्ट वर वरइ कुंआरि ।।७।।
तउ नावी नउं तउ बे गयउ । नरवइ सकल हकारो भयउ ।
दल वल सेणि सयलि सज थया । गढ सांमउर चालि नर गया ।।८।।
एक नरवइ मंडप पहुंत । हय गय साहण सयल संयुत ।
दह दिसि निवताया चितवइ । सयंवर कारणि आव्या सवइ ।।९।।

बाजइ गुहिर नीसांणह जोड़ि । सुर देखै तेत्रीसइ कोड़ि ।
सुकवि दामो कहइ सच भाई । एक लक्ष कोड मील्या तिहां राइ ।।१।।

## दूहा

आंडबर रज उडीयण, रवि तिहि पत्र पलास ।
कहि केती उपमि कहुं, फूल्यउ संझि आकास ।।२।।
मेर महीधर कंपियो, आदि कंपिउ फूण्यंद ।
सुर नर असुर अकंपिया, अरि कंपीयो सुयंद ।।३।।

## चउपही

हंस राय धरि विधि आचार । भणइ विप्र मंडपह मझारि ।
लावण लाडू घृत कपूर । मन वंछित जीमइ भरपूर ।।१०।।
जीमइ परिगह सयल असेस । नर नरवइ बहुराय नरेस ।
पान अडागर अगर अबीर । राय सुभट जब पहर्या चीर ।।११।।
सुर उपर थी कोतिक करइ । चारण भाट जैत उचरइ ।
गावइ धवल मंगल वर नारि । मोहन वेलि रची करतार ।।१।।
करि स्यंगार मंडप संचरइ । नर नरिंद सयंवर वरइ ।
हंस राय धरि उच्छव रली । पदमावती सयंवर चली ।।१२।।
पदमावती रूप परचंड । मुकट बंध ऊभा बलवंड ।
करि स्यंगार पहुंती आइ । देखाय सयल सुहड मूरछाई ।।१३।।
पनर वरस की वाली वेस । रूप अचल अनैऊपम वेस ।
वेणीय डंड कि जीसउह फूण्यंद । जोति भमुह करि उग्यउ चंद ।।१४।।
जलचर गति सारंग सुनयणी । बोलंति झरइ अमिव रस वयणि ।
हीरा जणित ससोभित दंत । एसी कुंमरि अनुदिन मयमंत ।।१५।।
लंक सकोमल मूठि समाय । नमइ केलि नरवइ दुह पाय ।
ऊगति थंभइ रविक विलास । करि मोहिनी उतरी अगास ।।१६।।
हंस चढि हस्तनी झ्यंतइ सुह लालि। छांड्या सुहड़राय अंतरालि ।
राज परोहित चिंतन टलइ । घाली माल पुहप की गलइ ।।१७।।
वाजी ताली पड़ियउ रोल । छांड्या नरवइ सयल तंबोल ।
आपा पणै ठाणै दल भयउ । झूरइ राव अंतेवर गयउ ।।१८।।

## वस्तु

सेज सूतउ सेज सूतउ कहइ इम राय । कवण कूड़ मति ऊपनी ।
तेज मान मइं सयल टाल्यउ ।
ध्रिग ध्रिग करीय सिर धुणइ ।
नयण नीर समुह राल्यउ ।

भीस्यो बंश क्षत्रीय तणउ अचरिज हूवउ संसार ।
राजकुमर सहू परहरचा बंभण वरयो कुमारि ।।१९।।

## चउपही

विलख बदन होइ रहीयो राय । तिणि मुंहतइ तब कीऊ उपाय ।
सबल स्यंघ छइ वनह मझारि । लागहि दोसन घालँइ भारि ।।२०।।
ईसउ मंत्र जब मुंहतइ कीयो । वेगि हकारि विप्र मांहै लीयो ।
चालउ लेइ सस्त्र आपणउ । उठो बंभ संघ जाई हणो ।।२१।।
ईणि बोलइं घर गयो बहोड़ि । तब वीनवी मूंध करि जोड़ि ।
चंचल चपल तुरीय पलणाय । पारधि स्यंघ चलावइ राय ।।२२।।
असंख तुरीय सात्थइ संचरी । हाथ खड़ग डंड अरु छूरी ।
बगतर टोप पहैरीया अपार । तुरिय न खावइ राजकुमारि ।।२३।।
तुरीय चढे चालीयउ पचारि । गयो वेगि नर वनह मझारि ।
आगलि स्यंघ उठ्यउ गल लाय । दह दिसि सेन सब गई पुलाय ।।२४।।
सीह हकारन को नर सहइ । अकेलउ लखमसेन भड़ रहइ ।
डंड तोलि कर गयो अफालि । हण्यो स्यंघ सांमहै कपाल ।।२५।।
पड्यो पचायण रही उठाई । केसरि काटि लई जब राई ।
आणि देखाली नरवइ योग । हूआ अचंभइ जण सहू लोग ।।२६।।
नयर लोक अचंभो घणो । भेद न जाणइ कोइ तसु तणउ ।
और उपाई करउ सव भाई । कनकावती चलावउ राय ।।२७।।
पुण्यवन्त नर जिहां जिहां जाय । तिहां तिहां रांन बिलाबल थाई ।
एक पुण्य नर तारइ तीरइ । पुण्य पसाई कीरति बिस्तरइ ।।१।।
दामो कहइ करमगति सोई । मेटण हार न दीसइ कोई ।
करम समो नही को बलवंत । सुणो कथा आगलि जे हुंत ।।२।।
कनकावती नयर छइ राय । वीरपाल तिहां नरवइ ठाय ।
डंड न दीयइ न मानइ सेव । ते ऊपरि मुकलावउ देव ।।२८।।
जीवती जइ रस मांहइ सरई । नही तर पर हथ अखूटइ मरइ ।
परिगह देई पठायउ राय । मिलीय मेलि चाल्यउ मोकलाय ।।२९।।
कटक बंध संयुत सब भयउ । कनकावती सेन लेइ गयउ ।
तउ तिण नगर पुंहुतो जाय । भाट एक मोकल्यउ तसु पाय ।।३०।।
भाट पठायउ कह्यउ सुभाई । डंड देई कइं जाइ पुलाई ।
वीरपाल रोसइं धड़हड़इ । बांभण आइ पास कांई पड़इ ।।३१।।
जाहु वेगि मम करिस अकाजि । नाभावड़इं मइ मेल्हउ काजि ।
अधिक न बोलूं कुड़ मुख जीह । चिहुंदिसि अविचल म्हारी लीह ।।३२।।
कवण राय खित्री बल डंड । तासु सुमत काटूं भयडंड ।
मारो मार जब रावल करइ । गइंवर गुडइ तुरी पाखरइं ।।३३।।

सिंधु राग सोहामणउं, स्यंधू भिड़इ सपूर ।
सिंधू सूरां वल हो, सिंधू कायर दूर ।।१।।
सूरा जे स्यंधू मरइ, सिंधू राग सुणंत ।
कायर काया कारणइ, भगा भूमि तिजंत ।।२।।
घुमघूमइ नद नीसाण घण, चउसठि किरल करंत ।
सूरा ते समरंगणि रहई, कायर ते भजंति ।।३।।

## चउपही

उठइ खडग जोर की जाल । सिर तूटइ अर झरइ कपाल ।
लखमसेन भड़ साहस धीर । हाकइ हणइ भिड़ै वर वीर ।।३४।।
भिड़इ राय बहुल प्रचण्ड । लखमसेन तोलइ भुव डंड ।
रगत धार नदी घण वहइ । लखमसेन रिण आंगमि रहइ ।।३५।।।
तुटइ कमल धड़ उपरि पड़इ । मांहो मांहि सूर इम भिड़इ ।
धड़ सुंधड़ जुड़इ रिण जोर । हा हा सबद हुआ जग सोर ।।१।।
रगत प्रवाह नदी अति वहइ । अश्व गज मछ कछ सम रहइ ।
सुकवि दामो कहइ वखांण । हुआ चकाहो ग्रिध मसाण ।।२।।
अहनिस राउ कीउ संग्राम । अनेक सुभट रिण रहीया ताम ।
मारी कुंजर भर रहीया ठाई । लखमसेन भड़ लीयो पडाई ।।३६।।
बल पौरष भंज्यो भड़ि बाई । गलि धर बंध चलाव्यउ राय ।
जइतपाल वधावउ भयउ । नरवई चित्त अचंभउ थयउ ।।३७।।
लखमसेन बोलै तिणि ठाई । वीरपाल किम आण्यउ राव ।
कइ आण्यउ भुज बांह मरोड़ । वचन राव जब कह्यो बहोड़ि ।।३८।।
हंसराय बोलइ तिण ठाई । वीरपाल जे कहीयइ राय ।
हस्ती ढाल मनोहर घणी । इम आण्यउ कनकावती धणी ।।३९।।
वीरपाल आण्यउ ततख्यणां । नरवई चित्त अचंभ्या घणा ।
हंसराउ बात ए सुणी । ए नर निहश्चइ त्रिभुवन धणी ।।४०।।

## वस्तु

नहीं बंभण नहीं बंभण अहिनर नाह, सुर धीर खित्री सबलि ।
वीरपालि जिणि बांधि आण्यउ, मारयउ स्यंघ पचारि करि,
बाणि पुत्र बुधवंति जाण्यउ, कहि मुझ आगलि जाति कुल ।
जउ कन्या हल लेई, अर्ध राज आपूं अचल धीय वीवाहण देय ।।४१।।
कहइ नरवइ कहइ नरवइ निसुणि हो राइ, जइ पूछइ हम राज कुलि ।
नहुं विप्र वैसाह वाण्यउ, धीर सेन को पुत्र सुणि,
लखमसेन बलबंड आण्यउ, जोगी छल करि आणियउ, घाल्यो कुआ मझारि ।
विहबलि दैव संजोग करि, लाधी अपठी कुमारि ।।४२।।

## चउपही

इण बोलइं हरख्यउ छइ राव । वल्यो वेगि नीसाणे घाव ।
फीटो कलह न लागी खोड़ि । परणइ सुंदर आंचल जोड़ि ।।४३।।
कनक डंड चउरी तिणि ठाई । तस भ्यंतर लखणौती राय ।
पदमावती रूप कुमारि । चउरी बइण हंस कुमारि ।।४४।।
वेदि वेगिहि बइठा जाप । हरख्या चित माई अर वाप ।
ईणि ठाम यो देस्यइ दांन । एक वास कुल तसु गंग सनान ।।४५।।
फेरा च्यारि फिर्‌या तिण ठाई । हाथ मेलावि आपइ राय ।
अर्द्ध देश राउ बांटी दियउ । पाय पखालि उच्छंगइ लीयउ ।।४६।।
सहु अंतेउर ऊभी पास । पदमावती को पूरी आस ।
कण कंकण एकावलि हार । राणी आपइ राजकुमारि ।।४७।।
हथलेवउ छूटउ तिणि वार । जण मंगण नइ दांन अपार ।
घरि घरि गुडी वंनरवाल । पदमावती वरी लखम भूआल ।।१।।
खाई पीयइ बिलसइ संसारि । तिहां बासउ बैकुण्ठ मझारि ।
एक सुरता दूजउ दातारि । दोइ जण मिलीया एकइ तार ।।४८।।
दुइ सुजाण दुइ चतुर विवेक । दुइ मुख देठि मिल्या मनि एक ।
लखमसेन पदमावती नारि । दोई सरिखा मिलिया संसार ।।४९।।
चोल रंग जिम कापड़ मिलइ । जाणे चंद्र रोहणी भिलइ ।
सुकवि दास कवि दामउ कहइ । एक हंस दोई कुड मांहे रहइ ।।५०।।
लखमसेन सयंवर भयउ । वीरपाल हकारी लीयउ ।
तूं मुझ बंधव तूं मुझ वीर । लेई उछंग पहिराया चीर ।।५१।।
वीरपाल बोलइ तिणि ठाई । तूं लखमसेन लखणउती राय ।
जीव दया तइं पाली देव । बाहुडि करुं तुम्हारी सेव ।।५२।।
वीर पाल घर गयउ आपणइ । जइ जइ कार सहु को भणइं ।
पुत्र कलत्र सुंभयो संजोग । पालइ राज तसु निश्चल भोग ।।५३।।
कथा सयंवर भयो प्रमाण । जे नर सुणइ ते गंगा न्हाण ।
सुकवि दामउ करइ वखाण । प्रथम खंड चढयउ प्रमाण ।।१५४।।
चतुर होइ ते मन गह गहइ । बाहुडि कथा चित दे रहइ ।
मूरख ते जे हासौ करइ । पशु समान ते कलि मइं फिरइ ।।१।।
प्रथम खंड कवि दामउ कहइ । सुणतां चतुर हीयइ सुख लहई ।
दूजा खंड तणउ आरंभ । सुणइ सहु ते होई अचम्भ ।।२।।

इति पदमावती कथा
सयंवर खंड प्रथम समाप्त ।।

समरुं वीर भइरवाणंद । नव निधि आपइ गृह आणंद ।
वीजउ खंड वीर रस भाउ । सिद्धि नाथ ते रच्यउ उपाउ ।।१।।
लखमसेन पदमावती संयोग । अहनिस नव नव बिलसइ भोग ।
देखउ करम तणो ए बात । सिद्धिनाथ तिहां खेलइ घात ।।२।।
करम नचावइ तिम नाचीयइ । करम आगलि कहो किम वांचियइ ।
करमइ भार्‌यो जीव ते भमइ । करमइ काल अनंता गमइ ।।३।।
करम करै ते निहचइ होई । तेसुं सभड़ि न करइ कोई ।
लिख्या प्रमाण लखणोती राय । आगलि कथा अचंभम थाई ।।४।।
धरी ध्यान योगी चिंतयउ । एक निषम मांहै ऊपम गयउ ।
ऊपनो क्रोध छोह मन भयो । सुपनइ जाई राय सुं कहयउ ।।५५।।
आयो मोहि पसाय पयालि । परणी कामनी अबला बालि ।
हूँ गुरु तूं मुझ चेलउ राय । देऊं सराप कइ पाणी पाय ।।५६।।
ओदकि उठइ राय गह गहइ । पदमावती झूंण करि रहइ ।
दोई करि जोड़ी वीनवइ सेव । कारण कवणु कहउ मुझ देव ।।५७।।
पदमावती सुणि बोलइ राय । विषम चरित यउ कवण ऊपाई ।
सूतां सूपनइ योगी दीठ । पाणी मांगइ वीर बईठ ।।५८।।

## वस्तु

भणइ सुंदरि भणइ सुंदरि निसुण नरनाह । रहि सुख पउढ्यउ सेज भरि,
कांइ देव अधकार मंडइ । कुमति माणते मेल्हइ नहीं रंग भोगते सयल छंडइ ।
सूतां सुपनंतर भमइ पवन चिहुंदिस जाय सूप ना पूठि न दउड़ीयइ सुणि लखणोती राय ।।५९।।

## चउपही

रहि रहि सुन्दर वरज न घणउ । पाणी पाऊं गुरु आपणउ ।
जउ तुम मो राखंता जाई । तउ तुम्ह सरिस न बोलउं राय ।।६०।।
भरि छागली चालीउ तुरंत । जिहां जोगी तिहां जाइ पहुंत ।
उठउ देवी तुम्ह करउ पसाउ । पाणी पीयउ कहइ इम राय ।।६१।।
भणइ सिध संभलि हो राय । वाचा एक मांगूं तो पाय ।
वाचा दीयइ तउ पीउं नीर । अमर करुं तुम्ह तणउ सरीर ।।६२।।
मांनउ बोल हरख मन भयउ । तउ तिण योगी पाणी पीयउ ।
जाई वेगि मम उभउ रहाउ । पदमावती सनमुख करि कहाउ ।।६३।।
विलखत वदन हूअउ मन मांहि । देखी दूमनउ पूछइ नरनाह ।
योगी भीयइ वाचा अम्ह तणी । खमणां सरिसी वात किम भणी ।।६४।।
पदमावती कहइ सुणि नाह । मइ वरयो दिसइं मति जाह ।
पेट मांहइ षट गर्भ संयुत्त । तिण मांग्यउ छल करि निरुत्त ।।६५।।

इंणि बोलइ नखइ गहबरयउ । धिग धिग राय वयण उचरयउ ।
सेज सुभाय सुख मनोहरा । फाडित उग्रर वहइ किम करा ॥६६॥
वाचा कइ छल हरिचंद गयउ । पांडव राज मेल्हि वन गलउ ।
पुरष पराक्रम वाचा सार । फाडि पेट मम लायउ वार ॥६७॥
भणइं मूंध कायर म होई । जं वह करइते निश्चइ होई ।
ऊभउ रहयउ तोलीय भय डंड । योगी कहइ च्यार करि खंड ॥६८॥
पहिलउ खंड करइ जव राय । धनुष बाण नीकलइ ते मांहि ।
छल बल पौरष कीजइ देवि । जिन नर राय करइ तुम्ह सेव ॥६९॥
दूजइ खंड खडग अरफरी । ते लेइ मनि निश्चल करी ।
जउ करि चउर तुम्हारइ हाथ । तो योगी जाई मनि साथ ॥७०॥
निकलइ धोवती तीजइ खंड । ते लीज्यो राजा बलिबंड ।
ते धोवती पहिरइ ज कोई । जिहां मति चिंत तहां गम होई ॥७१॥
चउथउ खंड एक चित करइ । ते मांहइ सुंदरि नीसरइ ।
पौरष बल कीजइ भड घाउ । मारि सिध हीजइ गल पाउ ॥७२॥
फाडि फेटि गर्भ करि लयउ । योगी पासि चालि नर गयउ ।
भूलउ हूअउ आयउ बलवंड । बालक मारि करइ च्यार खंड ॥७३॥
पहिलउ खंड कीयउ जब राय । धनुष बाण नीकल्या तिण मांहि ।
योगी ऊभउ देखइ ठाई । तब लगि लीयइ वेगि करि राय ॥७४॥
दूजइ खंड कीयउ जब वली । ते मांहि खडग फरी नीकली ।
क्षण एक राउ दुच्यंतउ भयउ । तो योगी लेई ऊपम गयो ॥७५॥
तीजो खंड कीउ भूपती । तास मांहि नीकली धउवती ।
गलि घाली योगीणइ तालि । तव लगि राआ लीउ उदालि ॥७६॥
चउथउ खंड कीयउ भूपालि । नीकली सूंदरि अवला बालि ।
देखवि राय अचंभउ भयउ । तव लेइ सिध उपम करि गयउ ॥७७॥

## वस्तु

ऊठि ऊभउ ऊठि ऊभउ रहउ नर नाह । देखि अचंभउ मनि भयउ
कवण काम तइं देव कीउ । आज बिछोहो प्रेम रस दुख दाह वैरागदीउ ।
चिहुं दिस चाहइ सुहड़ भड़ मेल्हइ सबल नीसास ।
विण कामणि सूनी कया नीकलि गयउ वनवास ॥७८॥

## वस्तु

दुख दारुण दुख दारुण धरइ मनि मांह ।
छंडि ठाम वनवास चाल्यउ राज रिद्धि सहु-
परिहरि दुख दाह वइराग लागउ ।
बइठउ तटि सायर तणइ,

करइ कहन मनि च्यंत भागउ ।
सय माण पण सुख घटिउ देखो सुरनर लोई ।
दैव सहावै सउ सहै, करता करइ स होई ॥७६॥

बालस्य माय मरणं, भार्या मरणं यौवना काले ।
वृद्धस्य पुत्र मरणं, तिनं दुखाई गिरुआइं ॥१॥
प्रमदा वियोग समये, कालं संहार फुटिहीपांई ।
पांहुण समान घडियं, आजड़ियंम च लोहाइं ॥२॥

रे हीया पापी पिसुण, किम करि दुख सहंत ।
त्रीय वियोग पुत्रह मरण, फटे दह दिसि जंत ॥३॥

वन वन राय भमंतउ फीरइ, पदमावती वयण ऊचरइ ।
हा ध्रिग ध्रिग कहइ संसार, न पीयइं नीर न लीयइ अहार ॥४॥

इण विधि लखमसेन दुख सहइ, आगलि कथा कवि दामउ कहइ ।
सुणज्यो सहु हियै धर ध्यान, सांभलतां घरि होइ कल्याण ॥५॥

## चउपही

तीअ भुवन माहि जोयु बालि । आवागमण हुंतउ तिणि कालि ।
पहिर धउवती उपमइ राय । सायर तटइं पहुंतउ जाय ॥८०॥
कपूर धारा नयर छइ ठाय । चंद्रसेन तिहां कहियइ राय ।
कोडीधुज विवहारया वसइ । परहुण पुरइ दैव ऊलिसं ॥८१॥
परहर धोवती लखम नरचंद । जाई पहुंतो तीर समंद ।
जोवइ बाल नहु लाभइ ठाय । बइठउ वींद तिहां च्यंतइ राय ॥१॥
कपूर धारा नयरी छइ ठाम । हरीया सेठ साहु को नांम ।
तेह को पुत ते परोहण गयउ । दीप न जाणइ वैठो भयउ ॥८२॥
पाट पटोला निर्मल चीर । भरीया माणक मोती हीर ।
आवतउ मच्छ घाव देहयो । परहुण फाडि खंडि दुई कीयो ॥८३॥
बूडत कुंवर कहइ मुख भाषि । अहो राव मुझ जीवति राखि ।
सिष बाण नर दीयउ पठाय । मन च्यंतवइ तिहां ते जाय ॥८४॥
खंच वाण आण्यउ निर्मणां । हरिया सेठ कुमरि नंदणा ।
घरि धोवती पहिरावइ राई । कपूर धार पणि दीऊ पठाई ॥८५॥
वेग वधावउ आगम गयउ । हरीयो सेठ हरखित मनि भयउ ।
बालद उतरी छै केणइ ठाइ । चालो कुमर तिहां भेटण जांइ ॥८६॥
हरीयउ सेठ पहुंतउ जाई । साथे कुटंब सयल जण आहि ।
पूछइ माय बाप ततक्षणां । विषम घाट क्यम लंघइ घणां ॥८७॥
पहुपदंत लाग्यउ बोलणां । सांभलि तात वयण मुझ तणां ।
अधिक वयण नहु कहणउ बाई । अर्थ कराड़इ बूडो आई ॥८८॥

एक रषीश्वर सायर तीर । उपनी मन मया उतर्‌या नीर ।
हरीया सेठ कुमरु सु कहइ । वेगि जाउ कुमर मति रहइ ।।८९।।
काढिऊ जेणइ समुद्र मझारि । सोलेइ आवइ वेगि हकारि ।
धोती पइहरी मंत्र कराई । पवन वेग कर पहुंतो जाई ।।९०।।
दोई कर जोड़ि वीनवइ सेठि । तुम्ह खु तात बोलावइ हेव ।
पणि धोवती पइहरी दोई जणां । आोपन वेगि चाल्या ततक्षणां ।।९१।।
कपूर धार नगर मांहि गया । नर नारी कोतिग आवीया ।
हरषित वदन मिलइ सहु कोई । घरि घरि मंगल गावइ लोई ।।९२।।
वाजइ ढोल गुहिर नीसाण । हींसइ बांध्य ल्हास केकाण ।
नट नाटिक पाउल पेखणां । ठाम ठाम कोतिग होइ घणा ।।९३।।
वर कामनी घड़ी जां बंभ । जंघ जुग्रल जस कहली थंभ ।
कस्तूरी जस महकइ अंग । नव यौवत्री हरइ मनि रंग ।।९४।।
हरीया सेठि तणइ घरिवार ।भ्यंतरि जाइनइ कह्यउ पडिहार ।
ईण बोलइ जब हरख्यउ सेठ । मणि माणक ले आव्यउ नेठ ।।९५।।
मील्यो सेठ हरख मन धरी । मंहीर लीयउ बधावउ करी ।
यो उपगार कीउ तुम्ह घणउ । अंक निलाड़ बहु तुम तणउ ।।९६।।

पर दुखइं ते दुखीया, पर सुख हरख करंत ।
पर कज्जइ सूरा सुहड़, ते विरला नर हुंत ।।१।।

पर दुखइ सुख ऊपजइ, पर सुख दुख धरंत ।
पर कजइ कायर पुरष, घरि घरि वार फिरंत ।।२।।

सीह सीचाणो सापुरिस, पड़ि पड़ि उठंति ।
गय गडर कुच कापुरिस, पड़े न वलि उठंति ।।३।।

वस्तु

दैंव संकटि दैव संकटि पडया इणि ठाइ ।
लखम सेन किम आलगई,
हीयइ दुख वैराग आणइ ।
राई कुमरि दिठी नयण,
तास रूप खित्री वखाणइ ।
सुंदर हीठउ सुहड़ भड़,
देखवि लागी वाई ।
हंस गयण झूरइ घणउ,
मिलइ सुहड़ भड़ आई ।।९७।।

## चउपही

दोई जण दृष्टि भई एक ठाई । चन्द्रावती सुहड़ भड़ भाई ।
मनमथ भड़ करइ ईण जाण । करि आथमण वेग करि भाण ॥९८॥
दिन आथम्यो रयण परजली । उछल्यउ मयण अंग तल मली ।
सूनी काया हंस हरि लीयउ । धोवती पहिरी उपमि गयउ ॥९९॥
बइठी देवी सुललिती नार । पहिर चीर कंचू शृंगार ।
नयण सुंताड़िया कज्जल रेह । चंदन खउल करी छइ देह ॥१००॥
अगर तंबोल कुसम सर बंध । कस्तूरी केतकी सुगंध ।
दंतमइ चूड़ी एकावल हार । अमृत पयोहर अंब संहार ॥१॥
ईसउ रूप नहु दूजी कोई । पदमावती सरीखी होई ।
नख सिख मुख निरखइ नर चाहि । पदमावती प्रत्यक्ष छइ आहि ॥२॥
लखमसेन भड़ दीठउ जाम । नयण वाण गुण सांध्या ताम ।
आसा छांडि नीराली भई । तब नर मयण बाण उर हई ॥३॥
भयउ हरख पूरयउ मन मांह । अहिनिस रमइ नारि अरु नाह ।
खेलइ रमई हुंसइ नर वालि । जाण वसंति उल्हसउ अकालि ॥४॥
दोइ जण जाणिक अमृत पीउ । दैव संजोगे सुख दुख भयउ ।
सुखि सूतां तिहां आवी न्यंद । पहु फाटी जागिउ नरचंद ॥५॥
सुप्रभाति तसु रमइ सुभाई । चंद्रावती पीयारी राय ।
दोई जण सूता करइ संभोग । कुंवर हकारी भयउ संजोग ॥६॥
तब तिण दासी दीठउ जाइ । रमइ कुमर सेजइं सुभाइ ।
तब दासी मनि विलखी भई । बाहुड़ राज लोक मांहि गई ॥७॥
तब तिण दासी करी पुकार । राक्षस कुमर रमइ छइ वार ।
सुणि स्वामी दोड़ीयउ खाण । धाई सेजइ तुम्हारी आण ॥८॥
गुहिर निसाण हकार्या ताम । तेड़ाव्या परिगह परधान ।
आव्यउ बैत्य आवास मझारि । चड्यउ दृष्टि अब धालउ मारि ॥९॥
झबकति दीठा तव असवरि । रूंधि रह्या चिहु पाखलि वारि ।
वाण घाउ तिण हण्यउ तुरंत । रूंड मुण्ड पड़इ धरह रुलंत ॥१०॥
दूजउ बाण तब दिऊ ताम । धरि करि बांध्यउ राजा जाम ।
छूरी उखाली धाव तव करइ । चंद्रावती बांहइ करि धरइ ॥११॥
अबलां सबलां बंध्यो जाम । बोलइ राव पड़ियउ धर ताम ।
कवण बीर तुम्ह कहो सुभाई । गण गंध्रव कइ त्रिभुवनराय ॥१२॥

## वस्तु

नहुं राखिस नहुं राखिस नहुं गोपाल, छल पुरषहु अति घणउ ।
अति बंधइ संसार जाण्यउ, चिहुं दिसि राखे सुभड़ भड़,

कवण वीर यो सबल आयउ । कहइ जात कुल आपणउ जा कन्याहल लेई ।
अर्द्ध राज तुम्ह आपसूं, धीय वीवाहण देई ॥१३॥

## चउपही

ईण बोलइ जो हरख्यो राय । लखमसेन लखणौती राय ।
कूड़ एक मुझ जोगी कीयउ । राज छंडिवि नीरालउ भयउ ॥१४॥
जब सुणीयो लखणउती राय । ततक्षण वल्यउ नीसाणे: घाउ ।
तेड़ो परोहित वार मलाई । गिणउ लगन बइठा इण ठाइ ॥१५॥
घड़ीयालो मंडीयउ तिवाई । चंद्रावती वीवाहइ राई ।
घरि घरि उछव नयर मझारि । फिरइ विनोला राज कुमारि ॥१६॥
नितु नवरस नाटिक तिण ठाई । नाचइ पात्र मनोहर भाई ।
विप्र भाट मिलिया अति घणा । मंडप राय मिल्या ततक्षणा ॥१७॥
जीमणवार सजाई भई । ले वरमाल कुमरी तिहां रही ।
जिण परणी जण हूअउ ऊछाह । चन्द्रावती वीवाहइ राय ॥१८॥
तेल चडायउ करि आचार । ब्राह्मण वेद करइ झुणकारं ।
चंद्रावती लखणौती राय । करि हथलेवउ भयउ वीवाह ॥१९॥
रली रंग पिता अरि माय । हरीया सेठ तणइ उच्छाह ।
पुत्र कुटुंब रल्या सहु भाई । चन्द्रावती भयो वीवाह ॥२०॥
लखमसेन भड़ रहइ सुचंग । चन्द्रावती बोलती सुरंग ।
इह कथा इण थानक रही । बाहुड़ि कथा पदमावती गई ॥२१॥

तीजउ खंड चढ्उ परमाण । चौथउ खंड सुणउ चतुर सुजाण ।
खंड खंड नव नवो वीचार । सांभलतां हुई हरख अपार ॥१॥

व्याप्यो विरह बोलीउ नाथ । पदमावति कुं घालइ हाथ ।
आसण छंड नीराली रहइ । तउ मुंह पिता नार ईम कहइ ॥२२॥
पदमावती कहइ सुण नाथ । एक वोल मांगूं तो हाथि ।
लखमसेन दरसण देखालि । नहितर मरुं हुतासन झालि ॥२३॥
ईण बोलइं खमणउ अहि डरइ । झिणिया सुन्दर अवसइं मरई ।
चालि वेग अब सारुं काज । भेटाडुं नरवइ तुम्ह आज ॥२४॥
खापर काती सरसी नारि । वेग गया तब नगर दुवारि ।
पदमावती कहइ सुणि नाथ । एह पाखंड न सोहइ हाथ ॥२५॥
जइ तुम्ह कह्यउ हमारउ करइ । खडग फरसी सेंबल मांहि धरइ ।
सईबल वृक्ष तणउ सहिनाण । खडग फरस मेल्ही तिण ठाण ॥२६॥
पहिर कडासणि खरडइ छारि । पइठा दोइ जण नगर मझारि ।
चाल वेगि इम योगी कहइ । जाइ चउहटइ ऊभा रहइ ॥२७॥

## वस्तु

ताम तपसी ताम तपसी करयउ उपाई, करि खापरि काती डवी,
पाडुवउ डमरु बजावई । पदमावती जोगी सहित राज भवणि तिहा वेगि आवइ ।
हींड्या बाड़ी देहुरा पणिघट घरि पुरबार । लखनसेन चन्द्रावती खेलइ पासा सारि ।।२८।।

## चउपही

चन्द्रावती लखणउती राय । दोइ जण खेलइ पासा दाउ ।
कूडो दाण भणरमइ प्रमाण । रहि रहि पदमावती की आणि ।।२६।।
पदमावती भणइ मन माँहि । एक चित्त नृप निश्चइ आहि ।
लखमसेन पदमावती दीठ । योगी कइ मनि भउरि पयठ ।।३०।।
फूल देखाल करी जब सान । जाहु वेग संबल रे स्थान ।
पहिर धोवती उपमइ राय । जोगी दोड़ कीउ उपाय ।।३१।।
पाव पंच कउ अंतर भयउ । तव लगि राउ ते लेइ गयउ ।
फरसी काढी नरालो टलइ । काटी सीस पाव देइ गलइ ।।३२।।
पहिलो घाल्यउ कूआ मझारि । छल करि आली मोरी नारि ।
तो तइं कीयउ अधिकउ ऊपाय । दीयउ वनवास लखणउती राय ।।३३।।
इंब तीसरां आयो मो पास । अब योगी कांइ जाइ न न्हास ।
जोगी हणइ छुरी करि धार । नरवइ मारइ खडग प्रहार ।।३४।।
छुरी उखालि अपाढइ पईठ । मारूं आज पड्यउ मउ दिठ ।
म्हारउ खप्यउ गयउ सब बाय । अब जीवतउ किहां तुं जाय ।।३५।।
जेता रगत ब्यंद घर पड़इ । तेता सिद्धनाप धडहड़इ ।
अंबर सिधनाथ युध कीयउ । धरम दिन आकास छाइयो ।।३६।।
दहदिस योगी फिरइ अगाह । एकलो रिण हकारइ नरनाह ।
सीगीनाद अवर घड़हड़इ । एक पड़इ तो दूणा होइ भिड़इ ।।३७।।
लखमसेन गल गथ्या अपार । अब जोगी कउ करूं स्यंघार ।
एक लउ मारइ जोगी पड़इ । मांहो मांहि ए मते जुड़इ ।।३८।।
खापर काती एकइं करइ । दह दिसि वेढि रहाउ छइ धरइ ।
लहलइं जीभ पड़इ मुख लाल । जाणी वेढ्यउ मांखी मुंहाल ।।३९।।
पदमावती करि झूंबी जाइ । जे हुं कहुं ते साभलि राय ।
छंड्यो स्वामी जाण विनाण । धणहर संधि देइ गुण काण ।।४०।।
लखमसेन धणहर संधीयउ । कांप्यउ इन्द्र अंबर तजि गयउ ।
काटि सीस रहि रसि धरइ । पडत प्रमाण ते जोगी मरइ ।।४१।।
इणि परि योगी आव्यउ अंत । एकलउ भूप तिहां भिड़इ तुरंत ।
जब लगि काती लीधी करा । तब लगि सिध नीपजइ धरा ।।४१।।
पणि दूजा तोल्याभो डंड । सिध जाइ लागीउ ब्रह्मांड ।
हाकै लखमसेन सिर परां । भयउ विहंगम पंखियउ धरा ।।४३।।

पग दोइ न्हास चाहइ जाण । मुह पसारइ दोड़इ खाण ।
लखमसेन अचंभो जाम । पदमावती मुह चाहइ ताम ।।४४।।
सिर ऊपरि भमरा रुणझुणइ । तब लगि सिध न कूण ही मरइ ।
सुणि स्वामी ऊमारइ ठाई । तब ए सिध न जीवतउ जाइ ।।४५।।
पहिर धोवती ऊपमि गयउ । काढ़ि खड्ग भमर तिणि हयउ ।
मारयउ भमर धरणि पर पड्यो । तिमहि सिधि जोगी होई उड्यो ।।४६।।
पणि चउथउ मार्यो सिर तोड़ि । घुम्यउ घुल्यउ गयो धरि मोड़ि ।
जिण अतुली बल जीतउ खेत । पुहप माल सिर घाल्यो नेत ।।४७।।

## वस्तु

हयो योगी हयो योगी गयो धरि मोडि ।
पणि चाल्यो तिहां वेग करि गयउ राव जिहां मूंध बैठी ।
पणि हरखित चित भयउ जब सु राव नयणेहि दीठउ ।
आप समाणी दोई बहनड़ी, संभलि सखिय विचार ।
अयसउ वरजउ प्रीय मिलइ, जइ तूसइ त्रिपुरारि ।।४८।।

## चउपही

लखमसेन बोलइ तिणि ठाई । हम घर चालउ देहु पठाई ।
ईण बोलइ गह बरचउ भूआलि । धीय उच्छंग लीयइ तिणि वार ।।४९।।
कापड़ लीया चीर नवरंग । मणि माणिक अर हीर सुरंग ।
जण परियण मिलिया तिण हेवि । अधिक माई अवधीरइ देवि ।।५०।।
बेहुं राव मिल्या मन रंग । अंतेउर मंदीय सुरंग ।
द्यइ आसीस धीय हइ माई । दोई कुमरि तब देई पठाई ।।५१।।
हरीयो सेठ मिलीयो ततक्षणा । वंश उगारयो तुम्ह अम्ह तणा ।
लखमसेन भड़ इणि परि भणइ । बाहुड़ जाइ ठाम आपणइ ।।५२।।
मन चिन्तयो धनुष अर बाण । जब धोवती पइहरी निरवाण ।
गढ सामउर हंस तिहां राय । चाल्यउ वीर गयो तिण ठाय ।।५३।।
नरवइ आयो राव सूं कहइ । लोक महाजन मिलीयां जिहइ ।
सिंघासण बइसारयो राव । ढोल नीसाणइ पडियउ घाव ।।५४।।
हंसराय राणी प्रति कहइ । पदमावती उछंग लेइ रहइ ।
चीर हीर नेऊर झुणकार । पदमावती करइ शृंगार ।।५५।।
दूजी चन्द्रावती सूजाण । राजा लखमसेन अगेवाण ।
पाट बइसाड़ी अंचल जोड़ । तव हरख्या तेत्रीसइ कोड़ ।।५६।।
हंसराव घरि विधि आचार । घरि घरि बंध्या तोरणि बार ।
दोइ कर जोड़ी बोलइ राय । अम्ह लखणउती देहु पठाई ।।५७।।

ईण बोलई तब हरख्यो राय । हय गय वर दीन्हा पलगाय ।
दीधी पेई भरीय संजुत । मणि माणिक आपीया बहुत्त ।।५८।।
सासू जुहारण चाल्यउ राय । धीय उछंग धरी छइ माय ।
लखमसेन चाल्यउ ततक्षणा । नयरि लोक मिलि वलीया घणा ।।५६।।
दोई राजा मिलीया तिणिकाल । नयणां नीर वहइ असराल ।
हंसराय पाछौ बाहुड़ि गयौ । लखमसेन पयाणउ कीयउ ।।६०।।
घरि चाल्यउ लखणउती राय । ततक्षण पल्यउ नीसाणे घाय ।
जिणि मारगि संचरयउ पयालि । तिणि मारगि बाहुड्यो भूआलि ।।६१।।
तब दीठी लखणउती राय । अति आणंद हरख्यउ मन मांय ।
कहइ वधावउ आयउ राई । तव तिण लाधा बहुत पसाई ।।६२।।
लखमसेन लखणोती गयउ । राज मांहि वधावउ भयउ ।
बंभण भाट करइ कइवार । मिलियो वेगि सहू परिवार ।।६३।।
मिल्या महाजन राजा तणा । नयर देस मउड़उ घाघणा ।
माय पूत अर धीय कुमारि । लखमसेन भेट्यउ तिणि वारि ।।६४।।
भणइ प्रधान स्वामी अवधारि । कांइ देव रहीया इण वार ।
योगी सरिसउ मइं दुख सह्यउ । घाल्यउ कूआ कष्ट भोगयउ ।।६५।।
गढ सामउर रहइ छइ राय । तास धीय परणी रंग मांहि ।
पछइ कपूर धार हूं गयउ । चन्द्रावती वीवाहण कीउ ।।६६।।
अब आयउ लखणोती राय । कुटुंब सहित हूं मिलीयो भाय ।
लखमराय तणउ संयोग । सुणउ कथा या परिमल भोग ।।६७।।
अंतरी सयल सहज सुभाइ । रमइ जेम लखणऊती राय ।
खाओ पीऊ नित विलस्यउ भोग । सांभलई तेहनइ नहीं वियोग ।।६८।।
ईणइ ठाइ जे आपइ दान । मात पिता तसु गंग सनान ।
हाथ उचाई दान यो दीयइ । ते वासउ वइकुंठां लीयइ ।।६९।।
सुणवि कथा जे आपइ दान । गाई गाई दक्षणा अर कापड़ पान ।
वीर कथा संभलइ जे रली । तिहि वीयोग नहीं एका घड़ी ।।७०।।
हरि जल हरि थल हरि पयालि । हरि कंसासुर बधीयो बालि ।
दैत्य स्यंघारण त्रिभुवन राय । सुरता जे वैकुंठा ठाई ।।७१।।
ईगुणीस विश्वा एकण राज । रचइ कवित कवि दामउ साच ।
ईणी कथा कउ योही विरतंत । हम तुम्ह गयउ गवरि कउ कंत ।।७२।।
इति श्री वीरकथा लखमसेन पदमावती संपूर्ण समाप्ता ।।
संवत् १६६९ वर्षे नाह ७ फूलखेड़ा मध्ये ।।

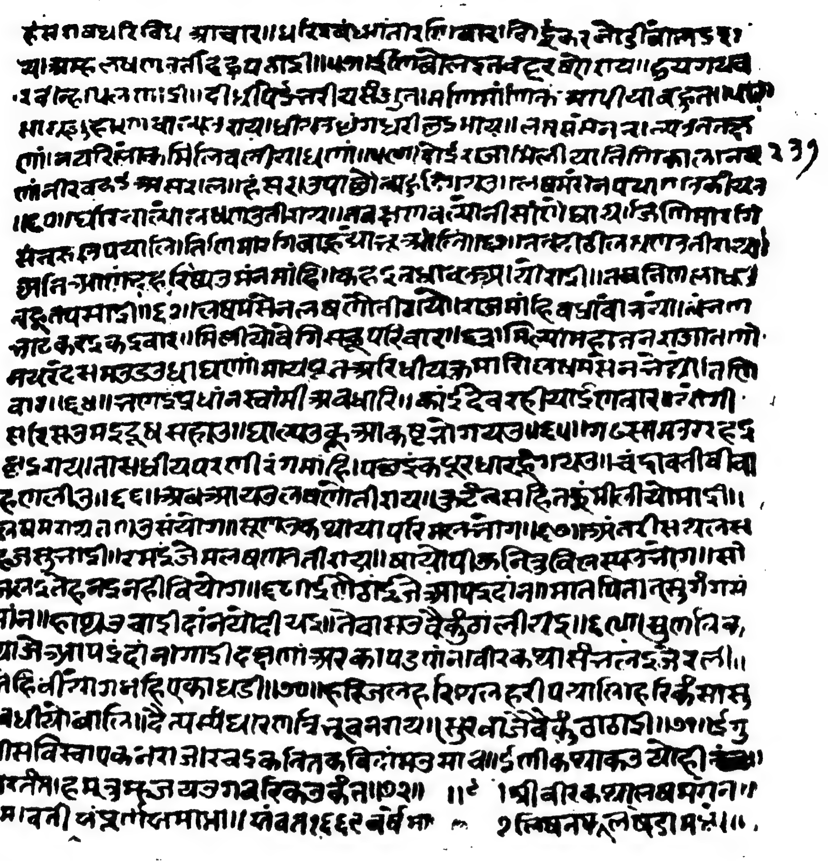

ग्रंथ का अंतिम पृष्ठ

डा० भोगी लाल ज० सांडेसरा

# मध्यकालीन गुजरात में नाटक

'मध्यकालीन गुजरात में नाटक' की चर्चा करने के लिए विषय निरूपण को हम चार विभागों में विभक्त करेंगे। (१) मध्यकालीन गुजरात में लिखित और अभिनीत नाटक अर्थात् मध्यकालीन गुजरात का नाटक साहित्य और उसका मूल्यांकन (२) नाटक और जनता (३) नौटंकी और (४) मध्यकालीन गुजरात में रंगभूमि के अस्तित्व-अनस्तित्व विषयक चर्चा

(१)

बहुत प्राचीन काल से गुजरात का संस्कृत साहित्य मिलता है। श्रीकृष्ण के पुत्र सांब की लिखी हुई मानी जाती 'सांबपंचाशिका' पिछले समय की कृति मानी जाय तो भी वलभी राज्य काल से तो संस्कृत साहित्य विपुल संख्या में प्राप्त होता है वलभीपुर के बाद गुजरात की राजधानी श्रीमाल हुई। श्रीमाल में रचित संस्कृत साहित्य से आज भी गुजरात गौरवान्वित हो सकता है। किन्तु वलभीपुर या श्रीमाल में लिखित एक भी नाटक आज हमें प्राप्त नहीं होता। अद्यावत् प्राप्त साधनों से निर्णय करने पर काश्मीरी कवि बिल्हण की 'कर्णसुन्दरी' को ही गुजरात की प्रथम संस्कृत नाटिका मानना चाहिए।[1]

अपनी मातृ-भूमि को छोड़कर अनेक प्रदेशों में घूमते-घूमते बिल्हण पाटण में कर्ण सोलंकी के अमात्य शान्तु-संपत्कर के आश्रय में आकर रहा और वहाँ उसने यह नाटिका लिखी। 'कर्णसुन्दरी' की नायिका कर्णसुन्दरी विद्याधरी है। इस नाटिका में कर्ण राजा के साथ उसका प्रणय और अंत में विवाह निरूपित किया गया है। नायिका कर्णसुन्दरी सिद्धराज की माता एवं कर्णाटक की राजपुत्री मयणल्ला ही है। नाटिका वर्ण्य विषय कालिदास कृत 'मालविकाग्निमित्र' एवं हर्षकृत 'रत्नावली' पर ही आधारित है। अमात्य संपत्कर केवल मंत्री यौगंधरायण का अनुकरण है और इस विवाह संबंध के द्वारा

---

१. शीलाचार्य या शीलांकसूरि नामक जैन आचार्य ने 'महापुरिसचरियं' नामक अपने प्राकृत ग्रन्थ में विबुधानन्द नामक एकांकी नाटक ग्रथित किया है; जिसका समय प्रायः विक्रम की १० वीं शताब्दी का प्रारम्भ ठहरता है।—संपादक

कर्ण को चक्रवर्ती बनाने का उसका हेतु है। इसका रचना काल स्पष्ट रूप से विक्रम की बारहवीं शताब्दी का पूर्वार्ध है। शान्तुमहेता की आज्ञा से पाटण में आदिनाथ के यात्रा महोत्सव के समय पर इसे अभिनीत किया गया था, ऐसा उल्लेख इसकी प्रस्तावना में हैं।

तदनंतर सिद्धराज की सभा में दिगम्बर कुमुदचन्द्र और श्वेतंबरवादी देवसूरि के बीच सोलह दिन का वाद-विवाद, अंत में कुमुदचन्द्र की पराजय, और फलस्वरूप दिगम्बरों का गुजरात से चला जाना—इस विषय को नाटक में निरूपित करने वाले सपादलक्ष के राजा के आश्रित यशचंद्र का 'मुदितकुमुदचंद्र प्रकरण' नाटक आता है। इस नाटक से सिद्धराज की राजसभा का सुन्दर वर्णन हमें प्राप्त होता है। यशचन्द्र लिखित दूसरा नाटक 'राजीमती प्रबोध' है। इस नाटक का विषय नेमिनाथ-राजीमती का सुप्रसिद्ध कथानक ही है। इसकी प्रस्तावना में सूत्रधार के कथन से प्रतीत होता है कि यशचन्द्र ने दो महाकाव्य एवं चार नाटक लिखे थे। परंतु ये दो नाटक तथा महाकाव्य अब प्राप्त नहीं होते हैं।

कलिकाल सर्वज्ञ श्री हेमचन्द्र सिद्धराज के समकालीन ही हैं। मुदितकुमुदचन्द्र प्रकरण में सिद्धराज के सभाजनों में से एक सोमचन्द्र का नाम आता है। वे ही हेमचन्द्र होंगे ऐसा माना जाता है; क्योंकि सूरिपद प्राप्त करने से पूर्वकाल में हेमचन्द्र का नाम सोमचन्द्र था। हेमचन्द्र ने अपने सुप्रसिद्ध अलंकार ग्रंथ काव्यानुशासन में नाट्यालंकारों के विषय में लिखा है; परन्तु उन्होंने कोई नाटक लिखा हो ऐसा विदित नहीं होता। अनेक लौकिक विषयों पर से ग्यारह उत्तम नाटक लिखने का यश उनके मुख्य शिष्य रामचंद्र को मिला है। रामचंद्र तो नाट्यशास्त्र के भी अच्छे ज्ञाता थे। संस्कृत नाट्यशास्त्र के प्रसिद्ध ग्रंथों में उनके 'नाट्यदर्पण' का विशिष्ट स्थान है, अपरंच रस एवं अभिनय के विषय में किए हुए नूतन विधानों से परम्परा से जकड़े हुए युग में उनकी स्वतंत्र शक्ति का हमें खयाल आता है और इसके लिए रामचन्द्र सम्मान के अधिकारी हैं। 'रघुविलास' 'नलविलास' 'यदुविलास' 'सत्य हरिश्चंद्र' 'निर्भय भीमव्यायोग' 'मल्लिकामकरंद प्रकरण, 'राघवाभ्युदय' 'रोहिणी मृगांक प्रकरण' 'बनमाला नाटिका' 'कौमुदी मित्रांगद' और 'यादवाभ्युदय' ये रामचन्द्र के ग्यारह नाटक अब तक विदित हुए हैं। गुजरात के नाटक साहित्य में रामचंद्र की कृतियों का एक विशिष्ट स्थान है। नाट्यशास्त्र का कवि का

---

२. नाटक की नायिकाओं को कोई लोकोत्तर जाति के पात्र के रूप में वर्णन करने कीं संस्कृत नाटक रचयिताओं की रीति प्रसिद्ध है। 'कर्ण सुन्दरी' नाटिका की नायिका मयणल्ला को बिल्हण ने विद्याधरी बनाया है। धारा के राजा अर्जुनवर्म देव ने गुजरात के राजा अभिनव जयसिंह को पराजित करके उसकी पुत्री के साथ विवाह किया था, ऐसा धारा के राजगुरु मदन लिखित 'पारिजात मंजरी' नाटिका में—अर्जुनवर्म के गले में पारिजात की माला-विजय माला-गिरी, वह एक कन्या हो गई। राजाने वह कन्या कंचुकी को दी। अर्थात् अंत:पुरमें भेजी—ऐसा रुपकात्मक वर्णन है। अतः यहाँ भी चंद्रलेखा विद्याधरी का ही जल्हणा देवी होने की पूरी संभावना है।

अभ्यास, भाषा प्रभुत्व, नाटक का मार्मिक बिनोद, सरल, विशद एवं मधुर सूक्तियाँ कथानक के प्रसंगों को नाट्यानुकूल बनाने की क्षमता—इन सभी से संस्कृत नाट्य रचयिताओं की प्रथम नहीं तो द्वितीय कोटि में वे अवश्य आ सकते हैं।

हेमचन्द्र के एक दूसरे शिष्य देवचन्द्र लिखित 'चन्द्रलेखा विजय-प्रकरण' नाटक मिलता है। चन्द्रलेखा विद्याधरी इसकी नायिका है, परन्तु कुमारपाल की सपादलक्ष के राजा अर्णोराज पर जीत के प्रसंग को वर्णन करने वाला यह नाटक है। नाटक की नायिका चन्द्रलेखा विद्याधरी अर्णोराज की बहन जल्हणा देवी है—जिसका विवाह कुमारपाल से किया गया था—ऐसा मेरा अनुमान है।[१]

कुमारपाल के अर्णोराज पर विजय का० सं० १२०७ के करीब है, अत: नाटक भी उसी समय में लिखा गया होगा। कुमारपाल की आज्ञा से पाटण में कुमार विहार में अजितनाथ के वसंतोत्सव के समय पर यह अभिनीत हुआ था, ऐसा प्रस्तावना में लिखा गया है।

तदनंतर कुमारपाल के मंत्री यशःपाल द्वारा रचित 'मोहपराजय' नाटक आता है। यह नाटक सं० १२२६ और सं० १२३२ के बीच में रचा गया हो ऐसा माना जाता है। कुमारपाल द्वारा जैन धर्म स्वीकार करनेवाला यह आलेखन रुपकात्मक नाटक है। इसमें बताया गया है कि किस तरह कुमारपाल विनय द्वारा मोह पर विजय प्राप्त करता है एवं धर्मराजा और विरति देवी की पुत्री कृपा सुंदरी का कुमारपाल के साथ महावीर एवं हेमाचार्य के समक्ष पाणिग्रहण होता है। इसकी तिथि नाटक में सं० १२१६ के मार्गशीर्ष शुक्ल पक्ष की दूज दी गई है। कुमारमाल नें सचमुच जैन धर्म को स्वीकार किया था या नहीं, इस विषय में विद्वानों के अभी भिन्न-भिन्न विचार हैं। इस विषय में सत्य के अनुसंधान के लिए इस नाटक का सूक्ष्म अभ्यास आवश्यक है। 'मोहराज पराजय' नाटक थराद में कुमारपाल निर्मित कुमार विहार में महावीर स्वामी के यात्रा महोत्सब पर अभिनीत हुआ था।

आबू के परमार धारावर्ष के भाई प्रह्लादन देव ने सं० १२२६ के करीब विराट नगर में अर्जुन के पराक्रमों का निरूपण करते हुए 'पार्थ पराक्रम व्यायोग' लिखा था और उह आबू पर श्री अचलेश्वर के पवित्र कारोपण पर्व में धारावर्ष की आज्ञा से अभिनीत हुआ था। नाटक के प्रतीत होता है कि उस समय प्रह्लादन राज्यासन का उत्तराधिकारी था। मत्स्य वेध के सुप्रसिद्ध पौराणिक प्रसंग का वर्णन करने वाला विजयपाल का "द्रौपदी स्वयंवर" नाटक पाटण में त्रिपुरुष प्रासाद में वसंतोत्सव के प्रसंग पर भीमदेव दूसरे की आज्ञा से अभिनीत हुआ था।

जैनमुनि रामभद्र का 'प्रबुद्ध रौहिणेय' नाटक सं० १२५६ के अर्से में जालोर में यशोवीर एवं अजयपाल नामक दो वणिक् बन्धुओं द्वारा निर्मित आदीश्वर के मंदिर के यात्रोत्सव के समय पर अभिनीत हुआ था। इसमें महावीर एवं बुद्ध के समकालीन एक प्रसंग का निरूपण किया गया है। रौहिणेय नामक चोर राजगृह में चोरी करता है, पर वह पकड़ा नहीं जाता। श्रेणिक का पुत्र अभयकुमार अपने बुद्धि-बल से उसे पकड़ता है और चोरी कबूल कराने के लिए एक योजना बनाता है। एक कमरे को इन्द्रभुवन के समान समलंकृत

करके उसमें अप्सराओं के स्थान पर वश्याओं को भेजता है। और तदनंतर सोये हुए चोर को वहीं छोड़ देता है। रौहिणेय के जागने पर वेश्याएं उससे पूछतीं हैं कि "पूर्व जन्म में कौन-कौन से सत्कृत्य करने से आपको यह स्वर्ग मिला ?" रौहिणेय के पिता ने रौहिणेय को शिक्षा दी थी कि महावीर का वचन कदापि नहीं सुनना, किन्तु एक बार पैर में लगे हुए कंटक को निकालते हुए महावीर के उपदेश के कई शब्द अकस्मात् ही उसने सुन लिये थे। उसमें "देवों के नेत्र बंद नहीं होते और चरण भूमि पर नहीं पड़ते" ऐसा सुना था। महावीर के इसी एक ही वचन के प्रभाव से चोर नकली स्वर्गभुवन की योजना को जान गया। महावीर के एक ही वचन का इतना प्रभाव हो सकता है तो उनके अनुयायी बनने से मोक्ष की प्राप्ति क्यों नहीं होगी ? ऐसा सोचकर रौहिणेय चोर महावीर की शरण में गया। यह भी प्रतीत होता है कि इस नाटक का कथानक लोकवार्ता के तुलनात्मक अभ्यास की दृष्टि से भी उपयोगी है।

धोलका के राजा वीरधवल के सुप्रसिद्ध मंत्री वस्तुपाल के आश्रित कवि बालचंद्र का 'करुणा वज्रायुधनाटक' सं० १२७७ में शत्रुंजय पर ऋषभनाथ के यात्रा महोत्सव के प्रसंग पर अभिनीत हुआ था। वज्रायुध चक्रवर्ती ने प्राण देकर भी कपोत का रक्षण किया था। इसी प्रसिद्ध वस्तु को लक्ष्य में रखकर यह नाटक लिखा गया है।

वीरधवल के पुरोहित एवं वस्तुपाल के इष्ट मित्र "कीर्ति कौमुदी" एवं "सुरथोत्सव" के रचयिता सोमेश्वर का "उल्लास राघव" नाटक द्वारिका के जगतमंदिर में प्रबोधिनी एकादशी के दिन अभिनीत हुई थी। 'सुर् थोत्सव' की प्रशस्ति में ऐसा लिखा गया है कि सोमेश्वर ने भीम की सभा को यामार्ध में एक नाटक लिख कर हर्षित किया था। वह नाटक 'उल्लासराघव' से तो भिन्न ही हो सकता है, क्योंकि उसमें स्पष्ट लिखा गया है कि सोमेश्वर ने अपने पुत्र भल्ल शर्मा की प्रार्थना पर 'उल्लास राघव' लिखा था।

गुजरात पर दक्षिण से आक्रमण करने वाले यादव राजा सिंहण और उत्तर से आक्रमण करने वाले मीलच्छीकार (सुलतान अल्तमश)[१] को वस्तुपाल ने एक साथ ही पराजित किया था। इस विषय पर जयसिंह सूरि का 'हम्मीर मद मर्दन' नाटक खंभात में वस्तुपाल के पुत्र जयन्तसिंह की आज्ञा से भीमेश्वर देव के यात्रामहोत्सव के समय पर अभिनीत हुआ था। यह नाटक सं० १२७६ और १२८५ के बीच में लिखा गया था, ऐसा मानने के लिए अनेक प्रमाण हैं।

अंगद विष्टि के पौराणिक प्रसंग का आलेखन करने वाला 'दूतांगद' नाटक त्रिभुवन पाल की सभा की आज्ञा से पाटण म कुमारपाल से प्रतिष्ठापित शिवमूर्ति के दोलोत्सव के प्रसंग पर अभिनीत हुआ था। त्रिभुवनपाल का राज्यकाल सं० १२६८ से सं० १३०० तक है, अतः यह नाटक भी उसी समय म लिखा गया होगा। दशार्णभद्र राजर्षि के चरित्र का निरूपण करने वाला मेघप्रभाचार्य का धर्माभ्युदय नाटक भी संघ की आज्ञा से अभिनीत हुआ था।

सं० १३५० में करण वाघेला की हार हुई, गुजरात के अंतिम स्वतंत्र हिन्दू राज्य का विनाश हुआ एवं मुस्लिम शासन के प्रारंभ का श्रीगणेश सारे गुजरात पर हुआ। विद्या को राज्याश्रय मिलना बंद हुआ। राजदरबारों से विद्वानों और शास्त्राचार्यों

को देश निकाला मिला। फिर भी गुजरात सौराष्ट्र के अन्य हिन्दू राजाओं एवं धनिकों द्वारा विद्या को यथा शक्ति सहायता मिलती रही। फलस्वरूप मुस्लिम शासन की स्थापना के बाद भी गुजरात में संस्कृत का सारस्वत प्रवाह हमेशा के लिए गतिशील रहा है।

सं० १५०५ के करीब हमें "गंगादास प्रतापविलास" नामक नव अंक वाला नाटक मिलता है। चांपानेर के राजा गंगादास ने अहमदाबाद के सुलतान मुहम्मद एवं उसके आश्रित ईडर के राजा को पराजित किया—इस विषय पर लिखा गया यह एक वीर रस प्रधान नाटक है। चांपानेर के राजकवि गंगाधर इसके रचयिता हैं। पावागढ़ और चांपानेर की समृद्धि प्रजा की महाकाली से प्रति भक्ति एवं गंगादास की ६७ प्रतिज्ञा इन सभी का इसमें वर्णन आता है। महाकाली के मन्दिर के सभागृह में यह नाटक अभिनीत हुआ था।

"धर्म विजय नाटक" नामक पाँच अंक वाला नाटक दिल्लीपति के दानवेतनाध्यक्ष कायस्थ केशवदास के लिए लिखा गया था। भूदेव शुक्ल इसके रचयिता हैं। "स्मार्त आचारों से युक्त जीवन के पारलौकिक लाभ" प्रदर्शित करनेवाला यह रूपक है। सं० १८३२ की इसकी हस्तलिखित प्रति मिलती है। अतः इस समय के पूर्व ही यह नाटक लिखा गया होगा।

रविदास का "पाखंड खंडन नाटक" भी ढोंग और आडंबर का खंडन करके वेद-धर्म का प्रतिपादन करनेवाला रूपक है। नान्दी में श्रीदेवी, सूर्य, पार्वती, वाग्देवी, राम, शिव, और गणेश का आवाहन किया है। नेपथ्य से वेदध्वनि और सरस्वती की वीणा का नाद सुनाई देता है। वेद और सरस्वती वैदिक धर्म के विप्लावन होन की प्रार्थना करते हैं। धर्म के नाम पर ढोंग करने वाले मिथ्याभिमानियों ने वैदिक धर्म की कैसी दुर्दशा की थी यह उसमें से देख सकते हैं। रचयिता ने इसमें सरस्वती एवं वेदों के अतिरिक्त विष्णु भक्ति, न्याय, मीमांसा, वेदांत, प्रशस्त पौराणिक, विटावतंस इत्यादि पात्रों की कल्पना करके वैदिक धर्म की सत्यता प्रतिपादित की है। अंत में प्रशस्त पौराणिक के प्रयत्नों से ढोंगी धूर्त भाग जाते हैं और नास्तिक आस्तिक हो जाते हैं। लेखक ने यह नाटक "द्वारवती यति के प्रिय के लिए लिखा है" ऐसा इसमें लिखा गया है, परन्तु इसकी रचना के समय के बारे में कुछ विदित नहीं होता। अवश्य, वह बहुत प्राचीन तो नहीं है।

रामकृष्ण देवजी का "गोपाल केलिचन्द्रिका" नाटक श्री कृष्ण की वृन्दावन की

---

१. 'हम्मीरमर्दन' का मीलच्छीकार एवं 'प्रबंध कोश' का मोजदीन दोनों एक ही हैं। किन्तु मीलच्छीकार अथवा मोजदीन नामक कोई सुलतान दिल्ली की गद्दी पर नहीं हुआ। मोजदीन गुलाम वंश का सुल्तान शम्सुद्दीन अल्तमश है, ऐसा मेरा अभिमत है (देखिए 'गुजराती' के १९३४ के दीपोत्सवी अंक में मेरा लेख 'प्रबंधकोश का मुइजुद्दीन कौन ?') श्री दुर्गाशंकर शास्त्री का भी यही अभिमत है (गुजरात का मध्यकालीन राजपूत इतिहास भाग २ पृष्ठ ३८१) इसके विरुद्ध श्री रसिकलाल परीख यह मोजदीन ही मुहम्मद गोरी है ऐसा मानते हैं। देखिए "जैन साहित्य संशोधक" खंड ३ अंक १ में उनका लेख "एक ऐतिहासिक श्रुतिपरम्परा और उसकी समीक्षा"।

लीलाओं का भक्ति भाव से निरूपण करता है। प्रश्नोरा कवि जगन्नाथ से सं० १८५१ म लिखित "भाग्यमहोदय" विविध अलंकार और पात्रों की कल्पना करके भावनगर के महाराजा वखतसिंह एवं उनकी सभा का वर्णन करता है।[४]

अब प्रश्न यह है कि साहित्यिक दृष्टि से इन सभी नाटकों का मूल्य क्या है ? हेमचंद्र के शिष्य रामचन्द्र के नाटकों को छोड़कर शुद्ध साहित्यिक दृष्टि से इन सभी नाटकों का मूल्य बहुत नहीं है। माघ और बाण के पश्चात् संस्कृत में उच्च साहित्य-सृजन लगभग समाप्त होगया था। अत: मध्यकाल में तो हिन्द के सभी प्रांतों में यह दशा थी। हमारे नाटकों का उद्देश्य पात्रों के बाह्य या आंतरिक संघर्ष के निरूपण का नहीं अपितु प्रेक्षक के मन में रस की निष्पत्ति करने का था। अर्थात् जैसे कि "काव्येषु नाटकं रम्यम्" उक्ति अभिव्यक्त करती है वैसे ही नाटक भी काव्य का ही एक प्रकार था। प्रत्येक कविता का हेतु भाव की अभिव्यक्ति है, अत: इस हेतु के प्रतिकूल प्रत्येक वस्तु के प्रति नाटककार को दुर्लक्ष्य बनाना चाहिए—ऐसे ही विचारों के फलस्वरूप संस्कृत नाटक की अवनति हुई है। हमारा प्राचीन नाटक शुद्ध भावनावादी है। नाटक में वस्तु गौण तत्व है। हकीकतों के प्रति दुर्लक्ष्य, व्यक्ति का नहीं परंतु आदर्श का ही आलेखन, वास्तविकता के प्रति अज्ञात अप्रसन्नता, कर्म के सिद्धांत का पालन करने से नाटक में अचित्य दु:खों का अभाव, शास्त्रों की कट्टर मान्यताएं—इन सभी कारणों से पांडित्ययुग में जब पूर्वकालीन तेजस्वी सर्जन अस्तंगत होने जा रहा था तब, नाटक की अवनति करने में अपना योग दिया। व्यक्ति की उदासीनता की वजह से संभाषण नीरस होते गये, एवं आदर्श प्रति की भक्ति से श्लोक मुक्तक जैसे—सविशेष लालित्यपूर्ण बनते गये। लेखकों का ध्यान ऐसे मुक्तक लिखने में ही केन्द्रस्थ होता गया, और नाटक के अन्य अंगों का विकास ही नहीं हो पाया।

गुजरात के संस्कृत नाटक इस अवनतिकाल के नाटक हैं, इससे कोई भी इनकार नहीं कर सकता। परंतु इतिहास और समाज शास्त्र के अभ्यास की दृष्टि से इन सभी नाटकों का मूल्य बहुत ही है। इन नाटकों में से कई तत्कालीन ऐतिहासिक प्रसंगों के आधार पर लिखे गये हैं, कई धार्मिक प्रचार की दृष्टि से लिखे गये हैं और बहुत से सार्वजनिक उत्सवों के समय पर विशिष्ट योजना से अभिनीत हुए हैं। गुजरात के मध्यकालीन इतिहास और जीवन को समझने के लिए ये नाटक भी बहुत सहायता दे सकते है।

(२)

मध्यकालीन गुजरात में नाटक सामान्यत: राजाश्रित या धनिकाधीन था। राजा की आज्ञा से जिस तरह बारबार नाटक खेले जाते, उसी तरह धनिक लोगों की आज्ञा से भी नाटक अभिनीत होते। उपर्युक्त नाटकों में से बहुत राजाज्ञा से अभिनीत हुए थे यह हम देख चुके हैं। रामचन्द्र का "प्रबुद्ध रौहिणेय" नाटक जालोर में दो वणिक् बन्धुओं की

४. इसके बाद भी गुजरात में संस्कृत नाटक लिखे गये हैं। करीब ५० ६० वर्ष पहले लिखित शास्त्री शंकरलाल महेश्वर के "सावित्री चरित" आदि एवं नदियाड के श्री मूलशंकर माणेकलाल याज्ञिक के "संयोगितास्वयंवरम्" संस्कृत नाट्य शास्त्र के अनुरूप ही है। परंतु इन सभी का विवरण इस लेख में अप्रस्तुत है।

सूचना से अभिनीत हुआ था। "प्रबंध चिन्तामणि" में भोज प्रबंध में एक ऐसा प्रसंग आता है कि—भोजराजा नगरचर्या देखने के लिए गया था। उसने देखा कि एक जगह पर शिव मंदिर में एक वणिक् नाटक अभिनीत करा रहा था। उसकी समृद्धि देखकर राजा ने सोचा उस पर डाका डालना चाहिए। इस कथानक में चाहे सत्यांश न हो, परंतु देव-मंदिरों में सामान्य लोग भी नाटक खेलने की व्यवस्था करते थे, यह उपयोगी तथ्य इसमें से मिलता है। देवमन्दिरों में देवों की सालगिरह, यात्रा महोत्सव, वसंतोत्सव इत्यादि प्रसंगों पर विशिष्ट नाटक खेले जाते बंगाल में अभी भी 'यात्रा' अभिनीत होती है।

पूर्वकाल में नाटक केवल उच्च वर्ग के-राजा और उनके दरबारियों के आनंद विनोद का साधन था। परंतु मध्यकालीन गुजरात में धार्मिक प्रचार के लिए भी नाटक का उपयोग होता हम देख सकते हैं। इस तरह नाटक जन-समूह का स्पर्श भी करने लगा। 'मोहराज पराजय' 'प्रबुद्ध रौहिणेय' 'करुणावज्रायुध' और 'धर्माभ्युदय' जैन धर्म के प्रचार के लिये ही लिखे तथा खेले गये थे। 'करुणावज्रायुद्ध' यात्रा धाम शत्रुंजय में वस्तुपाल के संघ के परितोष के लिए खेला गया था, यह भी कम महत्व की बात नहीं है। 'धर्म विजय' 'मिथ्या ज्ञान खंडन' इत्यादि नाटक इसी तरह वैदिक धर्म के प्रचार के लिए लिखे गये थे।

नाटक सामान्यत: मंदिर के चौक में खेले जाते थे; क्योंकि प्राचीन काल का मन्दिर ही सार्वजनिक सम्मेलन का एक मात्र स्थान था। नाटक देखने के लिए लोग बहुत ही उत्साह से जाते, और कविकुल गुरु कालिदास की उक्ति 'नाट्यं भिन्नरुचेर्जनस्य बहुधाप्येकं समाराधनम्' को सार्थक करते, ऐसा प्रबन्धों के वाचन से प्रतीत होता है। समाज का मध्यम एवं धनिक वर्ग सामान्य संस्कृत संभाषण तो समझ सकता होगा—जैसे कि आज अंग्रेजी समझता है—यह मानने के लिए पर्याप्त प्रमाण हैं। आज भी मलबार में 'आश्चर्य मंजरी' 'प्रतिज्ञा यौगंधरायण' एवं 'नागानंद' नाटक अभिनीत होते हैं और देखने वाले उन्हें समझते हैं। यह हो सकता है कि कई बार राजा इत्यादि प्रतिष्ठा के लिए ललित कलाओं के ज्ञाता होने का आडंबर करते हों, जैसा कि आज भी धनिक वर्ग में देखा जाता है।

(३)

भांड और कौतुकी विषयक अनेक उल्लेख प्रबन्धों में से मिलते हैं। अजयपाल को जैन देवालयों के विनाश के कृत्य में से रोकने वाले सीलण भांड का प्रसंग प्रसिद्ध है। भांड लोग वाकचातुर्य, हस्त कौशल और जादूगरी के खेल करते होंगे। उन लोगों की एक अलग जाति ही होनी चाहिए।[1] उच्च वर्ग के लिए यदि संस्कृत नाटक हो तो निम्न वर्गों के लिए नौटंकी या ऐसा ही कोई नाट्य प्रकार होना चाहिए। परन्तु इस विषय में कोई मंडनात्मक प्रमाण प्राचीन ग्रन्थों में से नहीं मिलता। स्व० हरिलाल ध्रुव ने 'भवाई' की व्युत्पत्ति संस्कृत 'भाव' से सिद्ध की है, वह उचित प्रतीत होती है।

---

१. महेसाणा के पास भांडु नाम का गांव है। वहाँ पहले भांड लोग ही बसते थे ऐसा कहा जाता है। आब भी भाट लोगों की जनसंख्या वहाँ ठीक प्रमाण में है।

भवाई के विषय में सुप्रसिद्ध नट श्री जयशंकर 'सुन्दरी' ने अहमदाबाद की रंग भूमि परिषद के समक्ष व्यक्त किए हुए निबंध में एक लोकवार्ता का उल्लेख किया है जो बहुत ही मूल्यवान् है:—

उंझा के हेमाला नाम के एक पटेल की सौंदर्यवती कन्या गंगा को मुसलिम सुबा उठा गया था। पटेल के एक ब्राह्मण मित्र आसायत ने अपनी गायन, वादन एवं अभिनय कला से सुबा को प्रसन्न करके, 'यह तो मेरी पुत्री है' ऐसा कह कर गंगा को छुड़ाया। परीक्षा लेने के लिए सुबा ने दोनों को एक ही थाली में खाना खिलाया। अत: ब्राह्मणों ने आसायत का जाति-बहिष्कार किया, परन्तु पटेलों ने उसे अनेक अधिकार दिये, जो आज भी उनके वंशजों के पास है। तदनंतर आसायत ने भवाई के ३६० 'वेश' लिखे। खुद तो कवि, वक्ता और गायक था ही इसलिए अपने तीन पुत्रों की सहायता से इन 'वेशों' का अभिनय करने लगा। वे 'तीन घर वाले'-'तरगाला'-नाम से प्रसिद्ध हुए। जैन धर्मा बने हुए श्री माली ब्राह्मणों ने-भोजको ने-उनके साथ विवाह का व्यवहार बांधा, इसलिए उनकी एक जाति हो गई। इस तरह आसायत आज की नायक जाति का पूर्वज है।

यह आसायत अवश्य ऐतिहासिक व्यक्ति है; क्योंकि सं० १४१० में उससे लिखी हुई 'हंसवत्स कथा' मिलती है। उसके यह काव्य की हस्तलिखित प्रति सं० १७२० में एक छबीलदास नायक के लिए फिर से लिखी गई थी। यह भी अपनी जाति में अपनी लोकप्रियता का सूचन करती है। उसने भवाई के 'वेश' नये न लिखे हो, परंतु पुराने 'वेशों' का संपादन-संस्करण किया हो—ऐसा होना अधिक संभव है। भवाई में आज जो अश्लील तत्व दिखाई देते हैं, उन पर भाँड़, प्रहसन, इत्यादि संस्कृत नाटिका-प्रकारों का प्रभाव हो सकता है। भवाई लोकसमाज के मनोरंजन का प्रयोग है; इसलिए अन्य कई तत्व भी उसमें प्रविष्ट हो गये हैं। विकृत हास्य का उद्भव स्थान ग्रामीण अश्लीलता है; फिर अज्ञानी नटों को ऐसे ही अज्ञानी दर्शकों का मनोरंजन करना हो तो अश्लीलता का आश्रय लिया जाय इसमें क्या आश्चर्य है?[२]

(४)

अब मध्यकालीन गुजरात में रंगभूमि के अस्तित्व-अनस्तित्व के प्रश्न की चर्चा करें। हिन्दू राज्यकाल में अर्थात् सं० १३६० से पूर्व तो रंगभूमि अवश्य थी। यह बताने के

२. भवाई की अश्लीलता बहुत ही निन्दित और कुप्रसिद्ध हो गई थी। "भांड भवैया" विषयक अनेक गुजराती कहावतें तथा 'गालियाँ देने' के अर्थ में 'भांडवु' शब्द इसके उदाहरण हैं। 'कालकाचार्य कथा' का सोलहवीं शताब्दी में लिखा हुआ एक गुजराती प्रतीक मुझे पाटण से मिला था। उसमें गर्दभिल्ल राजा कालकाचार्य की बहन सरस्वती को उठा जाता है उस प्रसंग पर उद्धृत एक संस्कृत सुभाषित भी देखने लायक है:—

यत्रास्ति राजा स्वयमेव चोरो भांडीबहो यत्र पुरोहितश्च।
वनं भजध्वं ननु नागरा भो यतः शरज्याद्भयमत्र जातम्॥

स्व० महीपतराम नीलकंड ने भवाई के अश्लील तत्वों को दूर करके उसे परिष्कृत करने का प्रयत्न किया था, पर वह निष्फल गया। और अब भवाई मृतप्राय ही है।

लिए पूर्वप्रदर्शित कई नाटकों की प्रस्तावनाएं ही पर्याप्त हैं। परंतु हिन्दू राज्यकाल के बाद सोलहवीं, सत्रहवीं, अठारहवीं सदी में गुजरात में व्यवस्थित रंगभूमि थी या नहीं इसका विचार करना चाहिए। 'प्रेमानंद के नाटकों' के कर्तृत्व के विषय में चर्चा करते हुए स्व० साक्षर श्री नरसिंहराव ने एक खंडनात्मक प्रमाण यह भी दिया था कि उस काल में अथवा उससे पहले बहुत समय तक गुजरात में किसी भी स्वरूप में रंगभूमि न थी। 'प्रेमानंद के नाटकों' के कर्तृत्व के साथ हमारा कोई संबंध नहीं—निस्संदेह वे नाटक प्रेमानंद के हैं ही नहीं—परंतु प्रेमानंद और इसके पहले रंगभूमि के अनस्तित्व का प्रतिपादन करते हुए श्री नरसिंहराव रावभाई के प्रमाण का अब थोड़ा सा परीक्षण करना आवश्यक है।

हिन्दू राज्य काल में जिस रंगभूमि का अस्तित्व था और जिस पर कम से कम दो दर्जन नाटक खेले जाने के प्रमाण आज भी हमारे पास हैं, उस रंगभूमि का मुस्लिम राज्य शासन की स्थापना होते ही शीघ्र ध्वंस हो जाय यह असंभव था। मुस्लिम काल में ही लिखित नाटकों में से 'गंगादास प्रतापविलास' नाटक सं० १५०५ के अर्से में चांपानेर में महाकाली के मन्दिर में अभिनीत हुआ था। सत्रहवीं या अठारहवीं शताब्दी में लिखित 'धर्मविजय' नाटक भी अभिनीत हुआ था। इसके अतिरिक्त अन्य नाटक अभिनीत हुए थे या नहीं यह नहीं कहा जा सकता, तथापि उपर्युक्त दो दृष्टांत श्री नरसिंहराव के कथन के बल को कम कर देते हैं। कहने का यही आशय है कि रामलीला या भवाई से अन्य तरह की रंगभूमि गुजरात में अस्तित्व में थी यह मानने के लिए हमारे पास कई प्रमाण हैं। राजाओं या धनिकों की विशेष सूचना से लिखित नाटकों का प्रयोग भी नाट्यशास्त्र की दृष्टि से ही होना चाहिए।

विक्रम की उन्नीसवीं शताब्दी या इसके पूर्व गुजराती भाषा में कोई नाटक लिखा गया हो, ऐसा अभी तक विदित नहीं हुआ। नाटक से समीपतम साहित्य-प्रकार 'मनमति संवाद' 'संपलक्ष्मी संवाद' 'लोचनमन नो झघडो' या 'रावणमंदोदरी संवाद' जैसे पद्यात्मक संवादों का है।

अनुवादक:—
श्री० नटवरलाल अंबालाल व्यास

डॉ० रवीन्द्रकुमार जैन

# कविवर बनारसीदास
## जीवनी और कृतित्व

आज हमारे सभी लब्धप्रतिष्ठ साहित्यकार यह मुक्तकण्ठ से स्वीकार कर चुके हैं कि हिन्दी साहित्य का इतिहास जैन साहित्य के अध्ययन-मनन के बिना अपूर्ण एवं पंगु ही रहेगा। भक्ति-कालीन साहित्य के निर्माण में तो जैन साहित्यकारों का और भी महत्व-पूर्ण हाथ रहा है। इस युग की प्राणभूत अध्यात्मधारा को इन साहित्यकारों ने जिस दृढ़ता एवं शालीनता से परिपुष्ट किया तथा अपनी मौलिक चिन्तक दृष्टि से अधिकाधिक समृद्ध बनाया वह सर्वत्र अविस्मरणीय रहेगी। भक्तिकालीन अनेक जैन साहित्यकारों में कविवर बनारसीदास अग्रगण्य हैं।

बनारसीदास ने अपने जीवन काल में सम्राट् अकबर, जहाँगीर और शाहजहाँ के साम्राज्य देखे थे। पूर्वजों द्वारा बाबर और हुमायूँ की चर्चाएँ सुनी थी। इस प्रकार औरंग-जेब के अपवाद के साथ प्रायः सम्पूर्ण मुगल-काल के सर्वतोमुखी वायुमण्डल से हमारे कवि का घना सम्पर्क रहा है।

भारतवर्ष के इतिहास में मुगल सम्राटों ने कई दृष्टियों से एक युगान्तर ही उपस्थित कर दिया। शासन व्यवस्था, आर्थिक व्यवस्था, धर्म, वेषभूषा-इत्यादि जीवन के सभी अंगों पर एक गहरा प्रभाव, अपने शासन के लगभग २०० वर्षों में मुगल सम्राटों ने डाला। मुगलों की राज्य व्यवस्था का स्वर्णकाल अकबर द्वारा ही उपस्थित किया गया और उसके पश्चात् फिर अपरान्ह आरम्भ हुआ।

कविवर बनारसीदास के अर्धकयानक 'आत्मचरित्र' द्वारा भी मुगलकालीन शासन सम्बन्धी, राजनैतिक एवं विभिन्न सामाजिक परम्पराओं का सुन्दर एवं युक्तिसंगत परिचय मिलता है। इतिहास की ऐसी अनेक घटनाएँ हैं जिन पर इतिहासज्ञों का अभी तक ध्यान ही नहीं गया है, और यदि कुछ पर गया है तो बहुत कम मात्रा में—वह भी मुगल इतिहासकारों के ग्रन्थों द्वारा। कविवर बनारसीदास के आत्मचरित्र द्वारा इतिहास की अनेक बहुमूल्य घटनाएं आज भी प्राप्त की जा सकती हैं। कवि का अनुभव और

अक्षिसाक्ष्य अवश्य ही इतिहास को कुछ नये अध्याय दे सकेगा और कुछ की तो कायापलट भी करेगा।

## सामाजिक स्थिति

मुगलकालीन सामाजिक स्थिति के सम्बन्ध में निश्चित रूप से कहा जा सकता है और प्रायः सभी इतिहासकार एकमत हैं कि वह सन्तोषजनक नहीं थी। मुगलों की पिछली संतान बहुत कुछ नष्ट हो चुकी थी, शिक्षा की कमी और असभ्य समाज के कारण उनका पतन हो गया था। असंयम और मद्यपान ने उन्हें अवनति के गर्त में फेक दिया था। देश में स्थित प्रत्येक वर्ग के लोग घोर अंधकार में पड़े हुए थे। निर्धन और धनवान का प्रत्येक कार्य ज्योतिष के अनुसार ही होता था। धार्मिक पुरुषों की इतनी भक्ति होती थी कि उनकी मृत्यु के पश्चात् उनके स्मारकों की भी पूजा की जाती थी। वास्तव में जनता के साधारणतम व्यक्ति से लेकर सम्राट्पर्यन्त सभी को अपने पुरुषत्व की अपेक्षा भाग्य पर अधिक विश्वास था। यदि मुगल युग को एक दृष्टि से धार्मिक अति विश्वासों का युग कहा जाय तो अनुचित न होगा, यद्यपि धर्म-ऐक्य और समन्वय के प्रयत्न भी चल रहे थे। नाथपन्थियों का, शैवी कनफटे तथा लिंगायत साधुओं का, सूफियों का, तान्त्रिकों का और सबसे बढ़कर दैवी चमत्कारों का जनता पर अटूट प्रभाव था। कविवर बनारसीदास पर भी अनेक धर्मों, सम्प्रदायों, तान्त्रिक क्रियाओं तथा अन्य विश्वासों का प्रभाव पड़ा था जिसका उन्हें बाद में भारी पश्चात्ताप भी करना पड़ा।

## धार्मिक सम्प्रदायों में जैन धर्म के विविध पंथ

आधुनिक भारतीय साहित्यों का उद्भव और विकास कुछ निश्चित धार्मिक सम्प्रदायों से घनिष्ठ रूप से सम्बद्ध है, जिन्होंने दशम शताब्दी से आगे के समय में जन-जीवन को इस दिशा में उद्वेलित किया था। साहित्य का एक प्रमुख लक्ष्य सदैव से रहा है। विश्व के सभी देशों में और विशेष रूप से धर्मप्रधान भारत में तो ऐसा हुआ है। वास्तविक रूप से भारतीय साहित्य के इतिहास से कुछ प्रमुख धर्मों का इतिहास ऐसा लिपटा हुआ है कि उसके अध्ययन के अभाव में तत्कालीन साहित्य का प्रामाणिक अध्ययन सम्भव नहीं है।

कविवर बनारसीदास का जीवन एक ऐसे साहित्यकार का जीवन था जिसने जैन परम्परा के अन्तर्गत रहकर ही साहित्य सेवा की। सम्पूर्ण जैन साहित्य का प्राणतत्व धर्म ही रहा है। इस बात को जैन साहित्यकारों ने लज्जा से नहीं गौरव से स्वीकार किया है।

शैव, शाक्त, इस्लाम, सिक्ख, जैन, बौद्ध एवं वैष्णव धर्म तथा कबीर पंथ, दादूपंथ आदि अनेक पंथों ने भक्तिकालीन साहित्य को भारी मात्रा में प्रभावित किया है।

जैन धर्म का लिपिबद्ध इतिहास भगवान महावीर के पश्चात् से ही प्राप्त होता है। इसके दिगम्बर और श्वेताम्बर रूप में प्रमुख दो भेद हैं। बाद में इन दोनों ही सम्प्रदायों की अनेक शाखायें प्रचलित हो गईं। ये सभी शाखाएं थोड़े बहुत ऊपरी अन्तर

के अतिरिक्त प्राय: एक ही रही हैं। दिगम्बर सम्प्रदाय में भगवान की वैराग्यावस्था की तथा श्वेताम्बर सम्प्रदाय में राज्यावस्था की उपासना की जाती है। इन दोनों में कुछ थोड़ा सा सैद्धान्तिक अन्तर भी है परन्तु मूलत: वे एक ही हैं।

## जैन साहित्यकारों की परम्परा

संस्कृत, प्राकृत, अपभ्रंश एवं प्रान्तीय भाषाओं की दृष्टि से जैन साहित्य की परम्परा सुनिश्चितरूपेण अत्यन्त विशाल एवं चिरकालीन है। भगवान महावीर की वाणी ही इस साहित्य का मूलाधार है। संस्कृत और प्राकृत भाषा में जैनों का विपुल साहित्य है। सम्पूर्ण हिन्दी साहित्य एवं हिन्दी जैन साहित्य की परम्परा का सूत्रपात अपभ्रंश (हिन्दी-जननी) के महाकवि स्वयंभू से होता है। आठवीं शताब्दी से आज तक हिन्दी साहित्यकारों की एक सुदृढ़ एवं विशाल परम्परा रही है।

जहां जैन साहित्यकारों के साहित्य-सेवा के स्वरूप की बात है आज तक के जैन साहित्य से यह स्पष्ट हो जाता है कि देश एवं काल की परिस्थितियों के कारण इसकी भाषा एवं शैली में समय समय पर अन्तर अवश्य हुआ है जो स्वाभाविक भी था। परन्तु विषय-चयन में जैन साहित्यकार सदा एक से रहे हैं। हां, सामाजिक एवं राजनीतिक दशाओं का चित्रण (धर्ममूलक) यथावसर थोड़ा बहुत अवश्य हो गया है। संसार भर के साहित्य के मूल में धर्म प्रमुखरूपेण रहा है। धर्म और अध्यात्म को समझे बिना जैन साहित्य का अध्ययन सम्भव नहीं है।

## जीवनवृत्त

आत्मकथा लेखन में भारतीय साहित्यकारों ने कभी रुचि नहीं दिखाई। यही कारण है कि सम्पूर्ण साहित्य में एक भी आत्मकथा नहीं मिलती। कविवर बनारसीदास ने १७ वीं शताब्दी में सर्वप्रथम अपनी मौलिक एवं आदर्श आत्मकथा रचकर संसार को एक नयी दिशा दी।

संवत् १६४३ में श्वेताम्बर—श्रीमाल सम्प्रदाय के अन्तर्गत जौनपुर के प्रसिद्ध व्यापारी खरगसेन के घर बनारसीदास का जन्म हुआ। बाल्यकाल सुख-दुख के उतार चढ़ाव में व्यतीत हुआ। विद्याध्ययन विशेष न हो सका। विषयपरक रुचि हो जाने के कारण अनेक प्रकार के शारीरिक एवं मानसिक कष्ट भी सहे। तीन विवाह हुए, नौ सन्तानें हुईं और एक भी जीवित नहीं रह सकी। इधर जीवन भर व्यापार में भी असफलता ही हाथ लगती रही। इन सब बातों से कवि संसार की नश्वरता को स्पष्ट समझ गया और अध्यात्म में सदा के लिए दीक्षित हो गया। भोगों और दुखों की अति ने कवि को सच्चे जीवन की ओर मोड़ दिया। कितने साहस और संघर्षों का जीवन कवि का रहा यह बात उनकी आत्मकथा से स्पष्ट है। ये विद्यार्थी थे, विषयी थे, यदाकदा गृह-चोर थे, व्यापारी थे, शैव थे, वैष्णव थे, श्वेताम्बर थे, दिगम्बर थे, रागी थे, विरागी थे, इत्यादि न जाने कितनी विविधताओं से उनका जीवन घिरा था किन्तु उक्त सभी अवस्थाओं में उनकी हृदयगत सरलता, सहिष्णुता एवं परदुखकातरता सर्वत्र देखी जा सकती है। वे जो कुछ भी थे संसार के सामने उसी रूप में स्वयं को प्रस्तुत कर दिया। उनके

व्यक्तिगत एवं सामाजिक जीवन के रूप पृथक्-पृथक् न थे। अपनी दुर्बलताओं पर उन्होंने जीवन के उत्तरार्द्ध में पूर्ण विजय प्राप्त की और संसार को उज्ज्वल रचनाएं भी दीं। कविवर ने इस भारतवसुन्धरा को संवत् १७०० तक अलंकृत किया।

## रचनाएँ

कविवर बनारसीदास की रचनाएं काव्य-विधाओं की दृष्टि से अनेक प्रकार की हैं—यथा महाकाव्य, खण्डकाव्य, मुक्तक काव्य, कोष एवं आत्मकथा आदि। इन विभिन्न विधात्मक रचनाओं में हमें कवि के बहुमुखी व्यक्तित्व, कृतित्व एवं विषय चयन आदि दृष्टियों के दर्शन होते हैं। एक ओर अध्यात्म के भव्य धरातल पर उनका देदीप्यमान एवं सुलझा हुआ व्यक्तित्व हमें 'समयसार दर्पण' में स्पष्ट दृष्टिगोचर होता है तो दूसरी ओर 'बनारसीविलास' के अनेक स्थलों में चारित्रिक दृढ़ता के लिये उनकी भारी आस्था देखी जा सकती है। शुष्क कल्पना, निर्बल भावुकता एवं व्यर्थ के शब्दों अथवा अलंकारों में वे कभी नहीं बहे, उनकी कविता में आद्यन्त वास्तविक जीवन-दर्शन ने ही स्थान पाया। नाममाला, (शब्दकोष) में उनका भाषा की उन्नति के लिए उत्सुक रूप हमें मिलता है। अर्द्धकथानक कवि के जीवन के ५५ वर्षों के मार्मिक चित्र प्रस्तुत करता है। अद्भुत सरलता एवं सरसता इस आत्मकथा में पदे-पदे देखी जा सकती हैं। वे अपने किसी भी निन्द्य अथवा गोपनीय कर्म को अत्यन्त निर्भीकतापूर्वक प्रस्तुत करते हैं—और इस चुनौती के साथ कि भद्र अथवा अभद्र जो कुछ भी हो, हूं, यह हूं। किसी की निन्दा अथवा प्रशंसा की मानो उन्हें कोई चिन्ता नहीं है।

कविवर में समयसार जैसे प्रबन्ध काव्य के लिये सागर सदृश गम्भीरता तथा हिमालय जैसी ऊँचाई भी है। सम्पूर्ण काव्य में अध्यात्म की व्याख्या में कहीं भी उनकी कवित्व शक्ति शिथिल एवं नीरस नहीं हुई है। 'बनारसीविलास'! में बनारसीदास की मुक्तक—प्रणयन की स्वाभाविक प्रतिभा पाठक को वशंवद बना ही लती है। कवि की भाषा एवं शैली में भाव प्रेषणीयता कितनी अद्भुत कोटि की है—प्रस्तुत पद से स्पष्ट है—स्थिर ज्ञानी सभी दशाओं में अविचल ही रहते हैं:—

जिनके सुमति जागी, भोग सों भये विरागी।
परसंग त्यागी वे पुरुष त्रिभुवन में।।
रागादिक भावनि सों जिनकी रहनि न्यारी।
कबहूं मगन ह्वै रहे न धाम धन में।।
वे सदैव आपको विचारें सरवांग सुद्ध,
जिनकें विकलता न व्यापे कहूंमन में।।
तेई मोख मारग के कहावें जीव,
भावे रहो मंदिर में भावे रहो बन में।

'मोह, विवेक' युद्ध और ज्ञान-वर्धिनी, माझा तथा २-३ फुटकर पद कविवर के नाम से प्रचलित हैं और इनके सम्बन्ध में विद्वानों में भारी मतभेद है। स्पष्ट है कि

भाषा, शैली और विषय-व्यवस्था बनारसीदास की अत्यन्त उच्च कोटि की थी जो उक्त रचनाओं में नहीं है। अतः उन्हें बनारसीदास कृत बताना युक्तिसंगत नहीं है।

## रचनाओं की भाषा

अध्यात्म मन्त कविवर बनारसीदास की सम्पूर्ण रचनाओं को दृष्टि में रखकर सहसा नहीं कहा जा सकता कि इनमें अमुक भाषा का प्रयोग हुआ है। कविवर का जीवन एक ओर एक पर्यटक एवं व्यापारी का रहा है तो दूसरी ओर उनमें विद्वानों का सम्पर्क और विद्याव्यसन भी खूब रहा है फलतः उनकी रचनाओं में एक ओर सामान्य बोलचाल की भाषा और दूसरी ओर साहित्यिक भाषा के स्पष्ट दर्शन होते हैं। आत्म-कथा अर्धकथानक में सरल एवं प्रभावयुक्त दैनन्दिनी भाषा द्वारा ही कवि ने अपने घटना बहुल जीवन का दिग्दर्शन कराया है। अर्धकथानक के अतिरिक्त सभी रचनाओं में साहित्यिकता, सालंकारता, शब्द गठन तथा शैली की अभिरामता बरेण्य है।

## बनारसीदास में धार्मिक, आध्यात्मिक तथा दार्शनिक तत्व

कविवर बनारसीदास के सम्पूर्ण साहित्य में धर्म की एक वेगवती धारा प्रवाहित हुई है। आचार विचार दोनों पक्षों की जीवन में आवश्यकता है। इनके सन्तुलन के अभाव में मानव कल्याण सम्भव नहीं है। कविवर बनारसीदास ने अपने जीवन के बहु भाग में धर्मों के विविध दृश्य देखे, स्वयं बड़ी तत्परता से स्वाध्याय किया और अन्त में वे इसी निष्कर्ष पर पहुँचे कि मनुष्य यदि स्वयं दृढ़ हो तो थोड़े से सहायक कारणों से अपने आत्मबल द्वारा सहज में ही कल्याण कर सकता है। उसे संसार के बोझिल क्रिया-कांड में पड़ने की आवश्यकता नहीं है।

जहां तक अध्यात्म की बात है बनारसीदास उसके सच्चे मर्मज्ञ थे। उनका समयसार नाटक, संसार के समक्ष उनकी अध्यात्म दृढ़ता का स्पष्ट प्रमाण है। जैन सिद्धान्त के अनुसार आत्मा अनादि अनन्त है, स्वतन्त्र है, संसार की जड़ वस्तुओं से उसका कोई सम्पर्क नहीं है और न वे उसे प्रभावित ही कर सकते हैं। यह जीव कर्मों का कर्त्ता और भोक्ता कहा गया है यह केवल भ्रम के ही कारण। कवि ने बड़ी कुशलता से स्पष्ट किया है:—

जैसे महा धूप की तपनि में, तिसाओं मृग,
भरमसों मिथ्याजल पीवन को आयों है, ।।
जैसे अन्धकार माहि जेवरी निरखि नर,
भरम सों डरपि सरपि मान आयों है ।।
अपने सुभाव जैसे सागर सुथिर सदा,
पवन सजोग सों उछरि अकुलायो है ।।
तैसे जीव जड़ सों अव्यापक सहज रूप,
भरम सों करम को करता कहायो है ।।

बनारसीदास के साहित्य में जैन दर्शन का भी मार्मिक विवेचन हुआ है। संसार के सम्पूर्ण दर्शनों में जैन दर्शन का एक विशिष्ट स्थान है। इसकी आत्मा और जगत् के सम्बन्ध की विचार धारा सर्वथा मौलिक है। जैन धर्म की आधार शिला उसकी आचार विचार मूलक दृष्टि है। उसका सम्पूर्ण आचार अहिंसामूलक है और विचार अनेकान्त दृष्टि पर आधारित ।

यह दृश्यमान एवं परोक्ष सत्तात्मक जगत् जड़ और चेतन रूप दो भागों में विभक्त है। यह अनादि अनन्त है। इसी जड़ चेतन की सत्ता को जीव पुद्गल, धर्म, अधर्म, आकाश और काल इन छह भेदों में विभक्त किया जाता है। इसी सिद्धान्त का वर्णन कविवर के समय सार नाटक में अत्यन्त प्रभावपूर्ण ढंग से हुआ है।

भारतीय संस्कृति के विकास में भी कविवर बनारसीदास की देन अक्षुण्ण है। उनके साहित्य में मानव मात्र की एकरूपता का उद्घोष बड़ी दृढ़ता से हुआ है।

एक रूप हिन्दू तुरक दूजी दशा न कोय।
मन की दुविधा मानकर, भय एक सों दोय।

श्रीमती डा० विमला गौड़

# मीरां के भाव-तत्व के मूल स्रोतों का अनुसंधान

मीरां के पद हिन्दी-साहित्य की अमूल्य निधि हैं। अतः विद्वानों द्वारा इनके पद-साहित्य पर विविध प्रकार से विचार किया गया है, तथा इनके पदों के कितने ही संग्रह भी प्रकाशित हो चुके हैं। परन्तु अभी तक उनकी समस्त पद-रचना में जिन तत्वों का समावेश है, उनका उद्‌घाटन नहीं किया गया। मीरां के व्यक्तित्व पर जो कुछ विचार किया गया है, वह सामान्य अध्ययन से बनने वाली धारणा का ही फल है। उसका सूक्ष्म वैज्ञानिक विश्लेषण नहीं किया गया। इस प्रबंध के द्वारा ऐसा ही विश्लेषण देने का प्रयत्न किया गया है। इस प्रकार के वैज्ञानिक विवेचन के लिए सर्वप्रथम यह आवश्यक था कि मीरां के नाम से उपलब्ध समस्त प्रकाशित व अप्रकाशित पद-साहित्य का एकत्रीकरण किया जाय। अपनी सामर्थ्य भर इस प्रबंध के लिए पहले एक ऐसा ही संग्रह प्रस्तुत किया गया। इस प्रबंध के प्रथम अध्याय में ऐसे एकत्रीकरण अथवा संग्रह के उद्योग का विवरण है। जिन प्रकाशित-संग्रहों, हस्तलिखित-संग्रहों और मौखिक-परम्पराओं से पद-संग्रह प्रस्तुत किया गया है उनका उल्लेख इसमें किया गया है। इसके अनुसार मीरां के अब तक उपलब्ध पदों की संख्या १४३५ स्थिर हो पाई है। निश्चय ही यह संख्या अब तक के प्रकाशित समस्त संग्रहों से कहीं अधिक है।

दूसरे अध्याय में इस प्रकार संग्रहित समस्त पद-साहित्य के भावों का विश्लेषण किया गया है, जिसके अनुसार साधिका का अनुराग अपनी अनुभूत दशा पर पहुँच कर प्रकाश करने लगा है। यही मीरा की भाव-भावना है, जिसे वे वैष्णवों द्वारा मान्य साधना की प्रवर्तक-दशा और साधक-दशा द्वारा प्राप्त करती हैं। इस भावराशि से ही रस का उद्‌गम होता है, जिसके लिए मानसिक और बाह्य आधार स्थायीभाव, संचारीभाव, विभाव, अनुभाव आदि की सहायता भी अपेक्षित है। इसी का विवेचन वैष्णव आचार्यों ने अपने ग्रंथों में दिया है, जिसके अनुसार साधक-मात्र को भाव-प्राप्ति होती है। इसी भावांतर की चरम दशा का नाम दशा-प्राप्ति है, जिसे महाभाव, प्रेम-वैचित्र्य, दिव्योन्माद आदि कहते हैं। विप्रलंभ प्रेम का उद्दीपक होने के कारण आचार्यों ने इसे भी प्रधानता दी

है। अतः वैष्णव आचार्यों द्वारा मान्य इस भाव-साधना के अनुसार मीरां के पद-साहित्य में प्रीतिभक्ति रस और साधन-भक्ति के ६४ अंगों का दिग्दर्शन कराया गया है। वैष्णव साधना के अतिरिक्त कुछ पदों में निर्गुणी-संतों की अभिव्यक्ति तथा नाथ-परम्परा से प्रभावित अभिव्यक्ति भी है, परन्तु इस ओर भी साधन-भक्ति की भिन्नता-मात्र है, उनका लक्ष्य एकमात्र प्रेम ही है। यह होते हुए भी इस अध्याय में प्रमुख दृष्टि यही है कि मीरां के समस्त पदों के भावों का विश्लेषण करके उनका सम्यक् वर्गीकरण किया जा सके, और उसे शास्त्रीय पद्धति में देखा जा सके।

तृतीय अध्याय में मीरां के समस्त कृतित्व में प्राप्त केन्द्रीय-भावों का निम्न रूप में उल्लेख किया गया है:—

१—मीरां की प्रेम-साधना।
२—मीरां में निर्गुण-साधना।
३—मीरां के गिरधरनागर और उनका स्वरूप।
४—मीरां की भक्ति-साधना।
५—मीरां की लीला-साधना।
६—मीरां में नाम-साधना।
७—मीरां की योग-साधना।
८—मीरां के जीवन संबंधी-पद।
९—मीरां के पदों की भाषा।

उक्त केन्द्रीय-भावों की परम्परा को वैदिक काल से मीरां के समय तक एक ऐतिहासिक क्रम में रखने का प्रयत्न किया गया है, जिससे प्रत्येक भाव के मूल स्रोत के स्वरूप की ओर इंगित हो सके। इस परम्परा को प्रतिपादित करने से पूर्व प्रत्येक केन्द्रीय भाव का वह रूप निर्देशित किया गया है जो तद्विषयक मीरां के समस्त पदों से उभरता है। इसके लिए मीरां के तद्विषयक समस्त पदों के संकेत भी साथ में दिये गये हैं। यहीं एक विश्लेषण भी दिया गया है कि इन भावों में से कौन से भाव पर किस संप्रदाय से संभावित प्रभाव हो सकता है। इस प्रकार मीरां की समस्त भाव-संपत्ति के स्रोतों का निरूपण इसमें हो जाता है।

चतुर्थ अध्याय में मीरां के पदों में उपलब्ध केन्द्रीय-भावों के सहायक भावों की परम्परा उसका विकास और मीरां का उसमें योग बतलाया गया है। इसके अनुसार यह उद्धरित करने का प्रयत्न किया गया है कि सहायक-भावों में से कितने किस सम्प्रदाय से प्रभावित होकर आए हैं।

पंचम अध्याय में मीरां के कृतित्व के आधारभूत समस्त विषयों पर प्रकाश डाला गया है, जिनका क्रम निम्न प्रकार से है:—

| मुख्य विषय | सहायक विषय |
| --- | --- |
| १—प्रेम | मिलन और विरह |
| २—निर्गुण | — |

| | |
|---|---|
| ३—मीरां के गिरधरनागर और उनका स्वरूप | — |
| ४—भक्ति | — |
| ५—लीला | अक्रूर, वृन्दावन, उद्धव, कुबजा, राधा-कृष्ण की लीला |
| ६—नाम | — |
| ७—योग | — |
| ८—मीरां के जीवन संबंधी पद | — |
| ९—मीरां की भाषा | — |

उक्त सहायक विषय के अतिरिक्त निम्न विषय ऐसे हैं जो इन मुख्य विषयों के भी सहायक होकर आते हैं—

वैराग्य
प्रार्थना अथवा स्तुति
शरण
गुरु
भजन
सत्संग
साधु संत
संसार
मनुष्य जीवन
कर्मफल
कथा-प्रसंग
तीर्थ

National Academy
Administration, Mussoorie
Acc. No. 126533
Date

काशी तथा डाकोर की हस्तलिखित प्रति को प्राचीनतम होने के कारण ही विद्वानों न प्रामाणिक मान लिया है। उक्त समस्त विषयों को इस प्रति के पदों के विषयों से तुलनात्मक रूप में प्रस्तुत किया गया है, जिसके द्वारा ज्ञात होता है कि मीरां के विषय किस क्षेत्र से प्रभावित होकर आए हैं, और तथाकथित प्रामाणिक-संग्रह में उस विषय के कितने पद प्राप्त हैं। यह इसीलिए किया गया है कि मीरां के इस समस्त वृहत् कृतित्व में विविध विषयों का तथा कथित प्रामाणिक कृतित्व की तुलना में अनुपात के द्वारा शेष कृतित्व का भी मूल्यांकन किया जा सके।

षष्ठम् अध्याय में मीरां द्वारा प्रयोग में आए हुए प्रतीकों पर विचार किया गया है, तथा यथा-संभव मीरां से पूर्व के प्रतीकों का इतिहास भी दिया गया है, और मीरां के उपलब्ध साहित्य में प्राप्त होने वाले प्रतीकों की कुल संख्या, और प्रतीक-सम्पत्ति के मूल स्रोत का निरूपण किया गया है।

सप्तम् अध्याय में मीरां की रस-दृष्टि का स्वरूप बतलाते हुए भक्ति-रस का उद्गम बतलाया गया है, जिसके अनुसार रस की उत्पत्ति के विवेचन द्वारा वैष्णव आचार्यों

द्वारा मान्य भक्तिरस का दिग्दर्शन है। इस भक्ति-रस में भगवान विषयक रति ही स्थायी भाव होने के कारण भक्तों के स्वभाव के अनुसार इसके ५ भेद किए गए हैं, जिन्हें शान्ता, प्रीता, प्रेयस, अनुकम्पा और कांता कहा गया है। अतः सर्वश्रेष्ठ रस भक्तिरस ही है जिसे आत्मा सूक्ष्मतम आनन्दमय रस-रूप में अनुभव करती है। इसे ही मीरां ने अपने समस्त पद-साहित्य में व्यक्त किया है। निर्गुणी संतों तथा नाथ परपंरा से प्रभावित प्रयोगों में भी सर्वत्र कृष्ण रति रूप स्थायी-भाव ही दृष्टिगत होता है।

अष्टम् अध्याय में मीरां के पदों के रागों की ऐतिहासिक व्याख्या है। अन्य भक्त और संतों की भाँति मीरां ने भी अपने भावों की अभिव्यक्ति पदों में की है जो विभिन्न राग-रागिनियों में प्राप्त होते हैं। अतः प्रकाशित-संग्रहों में प्राप्त होने वाले मीरां के समस्त रागों को एकत्रित कर भारतीय-संगीत-कला के इतिहास द्वारा यह जानने का प्रयत्न किया गया है कि मीरां के इन रागों का मूल स्रोत कहाँ है।

उपसंहार में समस्त विषयों का सार देते हुए बतलाया है, कि संगीत और काव्य मीरां में गौण रूप से ही आए हैं, मुख्य तो उनकी साधना ही है, जो तत्कालीन सम्प्रदायों से एक मुख्य भाव प्रेम को ग्रहण करके चली है। जिसके फलस्वरूप उनकी साधना में सरलता, प्रेम और आनन्द का ही साम्राज्य है।

इसके उपरांत पाँच परिशिष्ट दिए गए हैं, जिनमें प्रथम परिशिष्ट में मीरां के समस्त पदों की (जिन्हें हमने विभिन्न संग्रहों से लेकर एकत्रित किया है) अनुक्रमणिका दी गई है। दूसरे परिशिष्ट में मीरां के उन पदों का उल्लेख किया गया है, जो विभिन्न संग्रहों में अन्य भक्त संतों के नाम से उसी रूप में प्राप्त होते हैं, तथा कुछ पद ऐसे भी संग्रहों में मिले हैं जिनमें मीरां की छाप न होने पर भी उन्हें मीरां के संग्रहों में सम्मिलित कर लिया गया है। तथा किसी-किसी संग्रह में उसी पद में मीरां की छाप है, किसी-किसी में नहीं है, अतः इन सबका पृथक्-पृथक् उल्लेख कर दिया गया है।

तीसरे परिशिष्ट में मीरां की अन्य रचनायें तथा तुलसी के पत्र का उल्लेख है, जिन्हें हमने अपने पद-संग्रह में सम्मिलित नहीं किया है।

चौथे परिशिष्ट में मीरां के शब्द-संग्रह का महत्व बतलाया गया है, जिसके अनुसार मीरां के समस्त एकत्रित पद-साहित्य में आने वाले प्रत्येक शब्द का संकलन कर के, विविध संग्रहों के अनुसार उन शब्दों के प्राप्ति-स्थल के उल्लेख द्वारा प्रत्येक शब्द के प्रयोग की स्थिति का ज्ञान कराया गया है, जिसके द्वारा यह ज्ञात होता है कि कौनसा शब्द कितनी बार प्रयोग में आया है और कुल कितने शब्द हैं। कौनसा शब्द किस भाषा क्षेत्र से संबंधित है इसका भी निर्देश किया गया है। इसके अतिरिक्त उन शब्दों की संख्या का भी निर्देश है जो केवल तुक के लिये विकृत किए गए हैं, और उन शब्दों की संख्या का भी उल्लेख किया गया है, जिनके विकारी तथा पर्याय और पर्यायविकारी रूप आए हैं। इस प्रकार यह शब्द-संग्रह मीरां के समय की भाषा संस्कृति और व्यक्तिगत भाव-संपन्नता का ज्ञान कराने में सहायक है।

पाँचवें परिशिष्ट में सहायक-ग्रंथों की सूची है।

डा० रामबाबू शर्मा

# हिन्दी साहित्य के काव्यरूपों का अध्ययन

इस प्रबन्ध में १५वीं से १७वीं शताब्दी (विक्रमी) तक के हिन्दी-साहित्य के काव्य-रूपों का अध्ययन प्रस्तुत किया गया है। हिन्दी-साहित्य में इस काल के काव्यरूपों का व्यवस्थित रूप से किया गया यह अध्ययन सर्वथा नवीन उद्योग है। काव्यरूप, उनके निर्धारक तत्व एवं उनमें होने वाले परिवर्तनों के कारणों का पूर्व-पीठिका में विवेचन किया गया है। उसमें दिखाया गया है कि काव्यरूप किस प्रकार बनता है। अनुभूति की अभिव्यक्ति ही काव्य होती है। उसका क्रम-अनुभूति-अभिव्यक्ति (शब्द-अर्थ)-रूप यह रहता है। रूपभेद के कारणों पर दार्शनिक दृष्टिकोण से विचार करके यह निष्कर्ष निकाला गया है कि रूप अनुभूति (जो कि यथार्थ में काव्य की आत्मा है) तक पहुँचने का माध्यम है तथा अनुभूति एवं उपादानों सहित अभिव्यक्ति का अद्वैत ही काव्यरूप है तथा अनुभूति में देश, काल एवं परिस्थितियों के प्रभाव के कारण वैविध्य उत्पन्न होता है और अनुभूति भेद से ही रूप-भेद उत्पन्न होता है। तत्पश्चात् छन्द, गीत, शैली, विषय तथा संख्या के आधार पर काव्य के वर्गीकरण का औचित्य सिद्ध किया है।

काव्यरूपों के अध्ययन के लिये यह आवश्यक है कि जिस काल के काव्यरूपों का अध्ययन किया गया उस काल की राजनैतिक, सांस्कृतिक एवं साहित्यिक दशा का ज्ञान हो। क्योंकि किसी काल की इन परिस्थितियों से संबंधित पृष्ठभूमि ही काव्य रूप के उद्भव, विकास एवं निर्धारण में सहायक होती है। बिना इस पृष्ठभूमि को समझे काव्य-रूपों का व्यवस्थित अध्ययन नहीं हो सकता। इसी कारण इस प्रबन्ध के प्रथम अध्याय में आलोच्यकाल की पृष्ठभूमि पर राजनैतिक, सांस्कृतिक तथा साहित्यिक दृष्टिकोण से विचार किया गया है। राजनैतिक दशा के अन्तर्गत शासक वंश, शासन केन्द्र, युद्ध, विद्रोह

(शासकीय विद्रोह, अधिकारियों के विद्रोह, प्रजा का विद्रोह), सीमा-विस्तार और राज्य-क्षय, शासकों की योग्यता तथा राजनीति का स्वरूप इन शीर्षकों के अन्तर्गत विवेचन हुआ है। सांस्कृतिक दशा में तत्कालीन सामाजिक दशा, शासकीय दृष्टिकोण, हिन्दुओं की दशा, कुरीतियों तथा स्त्रियों की दशा का विवेचन करते हुए भारतीय समाज पर शासक धर्म के प्रभाव को स्पष्ट किया गया है। इस काल के उद्योग एवं व्यापार का वर्णन करते हुए तत्कालीन समाज की आर्थिक दशा का भी विवेचन हुआ है। कला के प्रसंग में वास्तुकला, चित्रकला एवं संगीत पर विस्तार से विचार हुआ है। संगीतकला के अन्तर्गत उस काल के संगीतज्ञों की श्रेणियों पर विचार करते समय लोक-गीतों एवं लोक-प्रचलित काव्यरूपों के तत्कालीन समाज पर पड़ने वाले प्रभाव को भी स्पष्ट किया गया है।

साहित्यिक पृष्ठभूमि पर विचार करते समय दिखाया गया है कि तत्कालीन साहित्य पर राजनैतिक एवं सामाजिक दशा का प्रभाव स्पष्ट है। आलोच्यकाल के साहित्य की सभी प्रवृत्तियों पर विचार करते हुए यह स्पष्ट किया गया है कि तत्कालीन परिस्थितियों ने इन प्रवृत्तियों के विकास के लिए मार्ग प्रशस्त करने में अपूर्व योग दिया।

दूसरे अध्याय में तत्कालीन साहित्य के स्वरूप का सर्वेक्षण प्रस्तुत किया गया है। प्रथम अध्याय में 'साहित्यिक दशा' के अन्तर्गत इस काल की जिन प्रवृत्तियों का उल्लेख हुआ था उन पर इस प्रकरण में कुछ अधिक विस्तार से विचार हुआ है। इस प्रसंग में प्रत्येक प्रवृत्ति के अन्तर्गत होने वाले प्रमुख-प्रमुख कवि एवं उनकी रचनाओं के स्वरूप पर विचार हुआ है। तत्पश्चात् इस काल के साहित्य की भाषा पर विविध प्रवृत्तियों के माध्यम से ही विचार किया गया है। प्रत्येक धारा के प्रमुख-प्रमुख कवियों की भाषा पर कुछ विस्तार से विचार करते हुए ब्रजभाषा, अवधी, डिंगल एवं राजस्थानी-गुर्जर के तत्कालीन स्वरूप पर विचार किया गया है।

इसी अध्याय में अब तक के अनुसन्धान में प्राप्त समस्त ग्रंथ एवं ग्रंथकारों के विवरण के साथ-साथ उनकी प्रामाणिकता पर भी विचार किया गया है। इस काल के समस्त ग्रंथ एवं ग्रंथकारों के विवरण के लिए हिन्दी-साहित्य के विविध इतिहासों, खोज विवरणों एवं स्वयं लेखक द्वारा अध्ययन की गई हस्तलिखित प्रतियों का आश्रय लिया गया है। यहां इन सभी स्रोतों के आधार पर ग्रंथ अथवा कवियों के रचनाकाल को स्वीकार कर लिया गया है। ग्रंथ एवं ग्रंथकारों का विवरण—क्रमसंख्या, ग्रंथकार, ग्रंथ, रचनाकाल, आधार एवं विशेष इस क्रम से प्रस्तुत प्रबन्ध के परिशिष्ट सं० १ में दिया गया है। ग्रंथों की प्रामाणिकता पर विचार करते समय आलोच्यकाल के कवियों की

रचनाओं की प्रामाणिकता पर तथा कुछ कवियों के रचनाकाल पर विचार किया गया है। इस प्रसंग में जो भी निष्कर्ष हैं वह खोज विवरणों, हस्तलिखित प्रतियों के उल्लेखों एवं हिन्दी-साहित्य के विद्वानों के बहुमत के आधार पर निकाले गये हैं। ग्रन्थों की प्रामाणिकता पर विचार करते समय सर्व प्रथम कबीर के ग्रंथों की प्रामाणिकता पर विचार किया गया है। अन्य प्रमाणों के अभाव में संज्ञा के आधार पर ही कबीर के "कबीर गोरखगोष्ठी", "कबीर जी की साखी", "भक्ति का अंग" तथा "मुहम्मद बोध" को अप्रामाणिक माना गया है। अनन्तदास के ग्रंथों पर विचार करते समय हमने उन्हें एक ही कवि मानकर उनका रचनाकाल १६३८ से १६६० के मध्य निश्चित किया है। मिश्रबन्धु विनोद की दो अनन्तदास वाली कल्पना का खंडन किया गया है। सूरदास के ग्रंथों की प्रामाणिकता पर विचार करते समय विभिन्न विद्वानों के मतों को उद्धृत किया गया है। "सूरसागर" को सभी विद्वानों ने सूर की रचना माना है, शेष रचनाओं के विषय में विवाद है इसलिए यहाँ भी अकेले "सूरसागर" को ही उनकी प्रामाणिक रचना माना गया है। नन्ददास के ग्रंथों पर विचार करते समय विभिन्न स्रोतों से प्राप्त उनके द्वारा रचे गए ग्रंथों की तालिका देकर उमाशंकर शुक्ल (जिन्होंने कि नन्ददास के ग्रंथों के परीक्षण में पर्याप्त श्रम किया है), के मत को स्वीकार किया गया है। तुलसीदास के नागरी प्रचारिणी सभा से प्रकाशित १२ ग्रंथों के अतिरिक्त शैली साम्य के कारण "कलिधर्माधर्म निरूपण" को भी प्रामाणिक माना गया है। हरिदास नाम के कई कवि होने के कारण सखी सम्प्रदाय के प्रवर्तक स्वामी हरिदास के ग्रंथों की संख्या भी मिश्रबन्धु विनोद में ७ बताई गई थी। लेखक ने खोज रिपोर्ट एवं वृन्दावन मे प्राप्त प्रातियों के आधार पर "केलिमाल" एवं 'पद' इन्हीं दो ग्रंथों को उनकी प्रामाणिक रचनाएँ माना है। मीराबाई के ग्रंथों की संख्या भी विवादास्पद है। यह सर्वमान्य है कि उन्होंने पदों की रचना की थी। लेखक ने राजस्थान में प्राप्त कुछ प्रतियों के आधार पर "नरसी को माहेरो" को भी मीरा कृत सिद्ध किया है।

कवियों की रचनाओं की प्रामाणिकता पर विचार करने के साथ-साथ कुछ कवियों के रचनाकालों पर भी विचार किया गया है। गोरखनाथ जिनका रचनाकाल 'मिश्रबन्धु विनोद' में १४०७ वि० के लगभग बताया गया है वास्तव में १३वीं शताब्दी से पूर्व किसी समय वर्तमान थे। विभिन्न विद्वानों के मतों को उद्धृत करके उनका समय निर्धारण किया गया है और उनकी रचनाओं पर आलोच्यकाल से पूर्व की मान कर विचार नहीं किया है। नामदेव का रचनाकाल 'मिश्रबन्धु विनोद' में १४८० दिया गया है। लेखक ने अनेक उल्लेखों के आधार पर उनका रचनाकाल १४०७ वि० निश्चित करके उनके ग्रंथों को आलोच्यकाल में विवेचन के लिए ग्रहण किया है। कृष्णदास पयहारी के काल पर विचार करके उन्हें १६वीं शती के मध्य का कवि न मानते हुए

१६वीं शती के अंत एवं १७वीं शती के प्रारंभ का कवि सिद्ध किया गया है। 'शालिहोत्र' के कर्त्ता चेतनदास का समय ग्रंथ की हस्तलिखित प्रति के आधार पर १६१६ वि० सिद्ध करके मिश्रबन्धु विनोद के उस मत का खंडन किया गया है जिसमें कवि का जन्मकाल १६१६ वि० तथा रचनाकाल १६४१ वि० बताया गया था। चतुर्भुजदास (अष्टछाप) तथा चतुर्भुजदास राधावल्लभी को दो भिन्न-भिन्न कवि सिद्ध करते हुए उनकी रचनाओं पर भी विचार किया गया है। अब तक प्रचलित अनेक मतों का खंडन करते हुए इन दोनों की रचनाओं को अलग-अलग कर दिया गया है। अष्टछाप के चतुर्भुजदास की रचना 'पद' तथा राधावल्लभी चतुर्भुजदास के ग्रंथ 'द्वादश यश' तथा 'हितजू का मंगल' सिद्ध किये गए हैं। अब तक प्रचलित सभी मतों एवं खोज विवरणों में हुए उल्लेखों के आधार पर श्री भट्टदेव कृत 'आदिवाणी' का रचनाकाल १६५२ वि० माना गया है और हस्तलिखित प्रति में दिये गए 'नैन बान पुनि राम शशि' पाठ को अनेक कारणों से अशुद्ध मान कर 'नैन बान पुनि राग शशि' पाठ को उचित ठहराया गया है। नागरी प्रचारिणी सभा के १३वें खोज विवरण में प्राप्त बोधा कवि की बाग-वर्णन, बारहमासी, फूलमाला' पक्षी मंजरी और पशु जाति नायिक-नायिका कथन ग्रंथों के आधार पर लेखक ने दो बोधा कवि सिद्ध करने का प्रयास किया है। इन दोनों बोधा कवियों के रचनाकालों में २०० वर्ष का अन्तर है। खोज विवरण में प्राप्त बोधा का रचनाकाल १६३६ वि० के लगभग है। खोज विवरण के आधार पर 'सुखमनी' का कर्त्ता नानक को न मान कर गुरु अर्जुन को माना गया है और इसीलिए इसका रचनाकाल भी १६३६-१६६३ वि० के बीच निर्धारित होता है। खेमदास दादूपंथी का समय-निर्धारण करते समय खोज विवरण में प्राप्त प्रति एवं मेनारिया के मत को आधार मान कर 'मिश्रबन्धु विनोद' के मत का खंडन किया गया है और उनका रचनाकाल १८वीं शताब्दी का पूर्वार्द्ध निश्चित किया गया है। इसी प्रकार दयालदास एवं चरणदास के रचनाकालों को भी क्रमशः १८वीं एवं १६वीं शती का सिद्ध किया गया है। आनन्दराम कायस्थ के रचनाकाल पर विचार करते समय विभिन्न खोज विवरणों के आधार पर विनोद के मत का खंडन करते हुए उनका रचनाकाल १६६० से १६७६ वि० के मध्य सिद्ध किया गया है। इस अध्याय के अंत में इस काल के दो प्रसिद्ध कवि अहमद एवं ताहिर के सम्बन्ध में प्रचलित विवाद पर कुछ विस्तार से विचार किया गया है। अहमद और ताहिर दो व्यक्ति थे या एक, यदि वह दो थे तो उनमें क्या सम्बन्ध था और 'कोकसार' (जिसका रचयिता विभिन्न स्थानों पर अहमद अथवा ताहिर को बताया गया है), का रचयिता कौन था ? इन प्रश्नों को हल करने का प्रयास किया गया है। प्रस्तुत लेखक ने इन दोनों कवियों के अनेक हस्तलिखित ग्रंथों एवं खोज विवरणों में दिये गए विवरण के आधार पर यह सिद्ध कर दिया है कि यह दोनों दो भिन्न-भिन्न व्यक्ति थे और अहमद ताहिर

के गुरु थे। अहमद ने 'बारहमासी' एवं 'स्फुट काव्य' दो ग्रंथों की रचना की तथा (कोकसार 'कोकशास्त्र अथवा गुनसागर) का कर्त्ता ताहिर था। इसी अध्याय में नरपति नाल्ह कृत 'बीसलदेव रासो' ग्रंथ की अनेक विद्वानों के मतों के आधार पर १६वीं शताब्दी की रचना मान कर आलोच्य काल में विवेचन के लिए ग्रहण किया गया है।

तीसरे अध्याय में इस काल की प्रामाणिक मानी गई समस्त रचनाओं का विवरण प्रस्तुत प्रबन्ध के परिशिष्ट नं० २ में दिया गया है। कुल प्रामाणिक ग्रंथों की संख्या, जिनका इस अध्याय में विवरण दिया गया है ८३२ है। इन ग्रंथों में से १७६ प्रकाशित रूप में और १८७ हस्तलिखित ग्रंथों के रूप में देखे गए हैं। हस्तलिखित ग्रंथों में जिन्हें लेखक ने देखा है, अनेक ऐसे हैं जिनका उन भंडारों के अतिरिक्त, जिनमें कि वह सुरक्षित हैं, अन्यत्र उल्लेख भी नहीं हुआ है। इस काल की समस्त रचनाओं को २५-२५ वर्षों के १२ भागों में विभक्त करके, प्रत्येक काल की कुल रचनाओं एवं उनमें प्रयुक्त काव्यरूपों की तालिका प्रस्तुत की गई है। आलोच्यकाल में प्राप्त होने वाले समस्त काव्यरूपों की संख्या २४ है। काव्यरूप यह हैं—१. बानी, २. चरित-काव्य, ३. रास, ४. कथा-वार्ता-काव्य, ५. पद, सबद, लीला के पद, ६. स्तोत्र, स्तुति, विनती-काव्य, ७. सिद्धान्त एवं उपदेशपरक-काव्य, ८. प्रशस्तिकाव्य, ९. पुराण, १०. ऐतिहासिक-काव्य, ११. मंगलकाव्य, १२. लीला-काव्य, १३. साखी, १४. छंद-गीतपरक-काव्य, १५. माल या माला-काव्य, १६. सम्वाद, बादु, गोष्ठी, बोध संज्ञक काव्य, १७. बारहखड़ी या बावनी, १८. बारहमासा, १९. संख्यापरक-काव्य, २०. भ्रमरगीत, २१. कथा, २२. अष्टयाम, २३. नखशिख, तथा २४. नाटक। काव्यरूपों का यह क्रम उनके उद्‌भवकाल के आधार पर निश्चित किया गया है।

चौथे अध्याय में समस्त काव्यरूपों का ऐतिहासिक अध्ययन प्रस्तुत किया गया है। प्रत्येक काव्यरूप के मूल स्रोत का अनुसंधान एवं वर्णन करते हुए आलोच्यकाल से पूव तक के साहित्य में उसके विकास को दिखाया गया है। तत्पश्चात् आलोच्यकाल में उस रूप के अन्तर्गत रची गई समस्त रचनाओं के विवेचन के साथ-साथ विषय, शैली आदि के आधार पर उनका वर्गीकरण भी कर दिया गया है। किसी काल विशेष की समस्त रचनाओं का इस आधार पर वर्गीकरण अब तक हिन्दी-साहित्य में नहीं प्राप्त होता। अतः यह प्रयास पूर्णतः नवीन है।

इस अध्याय में हुए विवेचन को इस प्रकार प्रगट किया जा सकता है—

| क्रम संख्या | काव्य रूप का क्रम | प्रथम प्रयोग | रचना संख्या | कोटियाँ | विशेष |
|---|---|---|---|---|---|
| १. | बानी | गोरख बानी | २८ | १—संतों की बानी<br>२—भक्तों की वाणी | |
| २. | चरित काव्य | अश्वघोष कृत बुद्धचरित | ६१ | १—पौराणिक चरितकाव्य<br>२—ऐतिहासिक चरितकाव्य<br>३—धार्मिक चरितकाव्य<br>(अ) जैन चरित्रों के<br>(आ) हिन्दू संत तथा महात्माओं के<br>(इ) आत्म-चरित | यह रूप संस्कृत की महाकाव्य परम्परा का ही अग्रसरित रूप है। |
| ३. | रास | शालिभद्र सूरि कृत भरत वाहुवली रास (११८५ ई०) | ६१ | १—ऐतिहासिक पौराणिक चरित्रों से संबंधित<br>२—काल्पनिक प्रेम-कथाओं से संबंधित<br>३—धार्मिक सिद्धांत संबंधी<br>(क) रसात्मक कथा-वार्त्ता-काव्य | |
| ४. | कथा-वार्त्ता-काव्य | गुणाढ्य कृत बृहत्कथा | ५२ | १—सूफी प्रेमाख्यान<br>२—भारतीय प्रेमाख्यान<br>(अ) बात संज्ञक<br>(आ) अन्य | |

| क्रम संख्या | काव्य रूप का क्रम | प्रथम प्रयोग | रचना संख्या | कोटियाँ | विशेष |
|---|---|---|---|---|---|
| | | | | (ख) इतिवृत्तात्मक कथाएँ<br>१—लोक कथा<br>२—नीति कथा<br>३—अन्य कथाएं (काल्पनिक) | |
| ५. | पद, सबद, लीला के पद | पद–सिद्ध। तथा नाथ योगियों में<br>सबद–गोरखनाथ कृत सबदी।<br>लीला के पद–जयदेव कृत गीत गोविन्द | ४२ | | ११वीं शताब्दी में लीला के पद गान की परम्परा संपूर्ण उत्तर भारत में व्याप्त थी। |
| ६. | स्तोत्र, स्तुति, विनती काव्य | कालिदास कृत श्यामला दशक | ३१ | १—देवी देवताओं की स्तुति संबंधी<br>२—भक्त एवं गुरुओं की स्तुति संबंधी | वेदों एवं पुराणों में देवी देवताओं की स्तुति संबंधी अनेक स्तोत्र हैं। |
| ७. | सिद्धान्त एवं . उपदेशपरक काव्य | गोरखनाथ के ग्रंथ अभैगान आदि | १५८ | १—ज्ञान संज्ञक<br>२—उपदेश संज्ञक<br>३—चितावणी संज्ञक<br>४—बोध संज्ञक<br>५—प्रबोध संज्ञक,<br>६—संबोध संज्ञक | प्रारंभिक सिद्ध एवं नाथ कवियों के सिद्धान्त एवं उपदेश-परक अनेक फुटकर पद तथा दोहे प्राप्त होते हैं। |

| क्रम संख्या | काव्य रूप का क्रम | प्रथम प्रयोग | रचना संख्या | कोटियाँ | विशेष |
|---|---|---|---|---|---|
| | | | | ७—निरूपण संज्ञक<br>८—नामा संज्ञक<br>९—विचार संज्ञक<br>१०—सिद्धान्त संज्ञक<br>११—संग्रह तथा सिद्धांत संज्ञक<br>१२—लीला संज्ञक<br>१३—विप्रमतीसी<br>१४—चरित संज्ञक तथा<br>१५—अन्य रचनाएँ। | |
| ८. | प्रशस्ति-काव्य | केशवदास चारण कृत अमरसिंह रा दूहा | ३ | ... | संस्कृत साहित्य में राज-स्तुति का प्रयास, 'प्राकृत पैंगलम्' में अनेक राजस्तुतिपरक छंद संग्रहीत। |
| ९. | पुराण | संस्कृत के १८ पुराण | ३१ | ... | महाभारत से पुराणों का जन्म माना जाता है। आलोच्यकाल में पुराण नहीं लिखे गए पुराण तथा महाभारत के अनुवाद ही प्रस्तुत किए गए। एक जैन कवि ने भी जैन पुराण का अनुवाद किया। |
| १०. | ऐतिहासिक-काव्य | श्रीधर कृत रणमल्ल छंद | ७ | ... | इस रूप का बीज संस्कृत के ऐतिहासिक चरित काव्यों में मिलता है। |

| क्रम संख्या | काव्य रूप का क्रम | प्रथम प्रयोग | रचना संख्या | कोटियाँ | विशेष |
|---|---|---|---|---|---|
| ११. | मंगल-काव्य | जिनप्रभु सूरि कृत अंतरंग विवाह | २२ | ... | हेमचन्द कृत 'त्रिष्टिशलाका पुरुष चरित' में ऋषभदेव तथा सुमंगला के लगन का विस्तृत वर्णन मिलता है। बंगाल का 'मनसा मंगल' भी पर्याप्त प्राचीन है। |
| १२. | लीला-काव्य | विष्णुदास कृत सनेह लीला | ३८ | ... | लीला के पदों के साथ ही इस रूप का उद्भव माना जा सकता है लेकिन पदों से भिन्न छंदों में लिखे जाने के कारण इसे भिन्न रूप स्वीकार किया गया है। |
| १३. | साखी | गोरखनाथ कृत ज्ञानेश्वरी साखी | ८ | ... | सिद्ध कण्हपा के समय से ही साखी शब्द का विशिष्ट अर्थ में प्रयोग प्रारंभ हुआ। कबीर से पूर्व पर्याप्त प्रचलित था। नामदेव की वाणी में साखियाँ संग्रहीत हैं। |
| १४. | छंद-गीतपरक-काव्य | 'विक्रमोर्वशी' में सबसे पुराना प्रयोग | | १—दोहा | छंद तथा गीत का प्रयोग तो कविता के जन्म के साथ ही होने लगा होगा। |
| | | 'उपदेशरसायन-रास' | ७७ | २—पद्धडियाबंध | प्रत्येक छंद का विवेचन करने से पूर्व उसके प्रयोग का ऐतिहासिक विवरण प्रस्तुत किया गया है। |

| क्रम संख्या | काव्य रूप का क्रम | प्रथम प्रयोग | रचना संख्या | कोटियाँ | विशेष |
|---|---|---|---|---|---|
| | | सरहपा सिद्ध की रचना में | | ३—दोहा-चौपाई बंध | |
| | | चन्द कृत पृथ्वीराज रासो में प्रयोग | | ४—छप्पय बंध | |
| | | अग्रदास कृत कुंडलिया | | ५—कुंडलिया | |
| | | विक्रमोर्वशी में प्रयोग | | ६—चर्चरी या चांचर | |
| | | जिनप्रबोध सूरि कृत जिनचन्दसूरि फागु | | ७—फागु | हर्ष कृत रत्नावली में फागु का सर्व प्रथम उल्लेख। |
| | | तुलसी कृत 'रामलला नहछू' | | ८—सोहर | लोक प्रचलित गीत। |
| | | कबीर कृत कहरा | | ९—कहरा | |
| | | रहीम कृत बरवै | | १०—बरवै | |
| | | वाच्छाश्रावक कृत चहुंगति वेलि | | ११—वेलि | |
| | | कबीर कृत विरहुली | | १२—विरहुली | लोक प्रचलित गीत। |
| | | कबीर कृत 'रामसार सोरठा' | | १३—सोरठा | दोहे के साथ-साथ प्रयोग। |

| क्रम संख्या | काव्य रूप का क्रम | प्रथम प्रयोग | रचना संख्या | कोटियाँ | विशेष |
|---|---|---|---|---|---|
| | | जटमल कृत गजल ग्रंथ | | १४–गजल | खुसरो में सर्वप्रथम प्रयोग। |
| | | कबीर कृत रेखता | | १५–रेखता | |
| | | सुन्दरदास कृत गुन-उत्पत्ति नीसाणीं | | १६–नीसाणीं | |
| | | कबीर कृत झूलना | | १७–झूलना | |
| | | | | १८–गीत—लौकिक गीत शास्त्रीय राग | |
| | | | | १९–कुछ अन्य छंद गीत-परक ग्रंथ | |
| १५. | माल या माला काव्य | अमरसिंह कृत 'अमरकोश' | १८ | १–कोश ग्रंथ | 'अमरकोश' से पूर्व के 'नाममाला' संज्ञक ग्रंथ बताए जाते हैं जो अब अप्राप्य हैं। |
| | | | | २–संग्रह ग्रंथ | |
| | | | | ३–नामस्मरण ग्रंथ | |
| १६. | संवाद, बादु, गोष्ठी, बोध संज्ञक काव्य | संवाद सुन्दर | १० | ... | वेदों के 'आख्यान सूक्त' इसी शैली में हैं। |

| क्रम संख्या | काव्य रूप का क्रम | प्रथम प्रयोग | रचना संख्या | कोटियाँ | विशेष |
|---|---|---|---|---|---|
| १७. | बारहखड़ी या बावनी | पृथ्वीचन्द कृत मातृका प्रथमाक्षर दोहका | ११ | ... | ... |
| १८. | बारहमासा | जिनधर्म सूरि बारह नांवउ | ११ | ... | ... |
| १९. | संख्यापरक काव्य | अमरुक शतक | ५२ | ... | संस्कृत में अनेक पचक, अष्टक, दशक, शतक आदि नामों वाले ग्रंथ लिखे जाते थे। |
| २० | भ्रमरगीत | नन्ददास कृत भंवरगीत | ३ | ... | इस प्रसंग का मूल 'श्रीमद्भागवत' है तथा काव्य में सर्वप्रथम प्रयोग 'सूरसागर' में हुआ है। |
| २१. | कथा | ब्रह्म रायमल कृत श्रुतिपंचमी कथा | ८ | १—अनुष्ठान कथा<br>२—महात्म्य कथा | पुराणों के अनेक आख्यानों में प्रसंग-वश अनेक कथाओं का समावेश है। |
| २२. | अष्टयाम | नागरीदास कृत समय प्रबंध | ४ | ... | कालिदास के 'ऋतु-संहार' में अष्टयाम का बीज मिलता है। |
| २३. | नखशिख | बलभद्र कृत नख-शिख | ४ | ... | कुमारसंभव में पार्वती के नखशिख सौन्दर्य का वर्णन है। |
| २४. | नाटक | बलभद्रकृत हनुमन्नाटक | ५ | ... | यह नाटक संस्कृत के नाटकों से बिल्कुल पृथक शैली में लिखे गए। |

इन रूपों के अतिरिक्त आलोच्यकाल में अनेक शास्त्रीय ग्रंथ भी प्राप्त होते हैं। ऐसे ग्रंथों को 'शास्त्रीय ग्रंथ' शीर्षक के अन्तर्गत विषय के आधार पर वर्गीकृत कर दिया गया है। शेष ग्रंथ जो न तो शास्त्रीय ग्रंथों के अन्तर्गत ही आते हैं और न उक्त काव्यरूपों के ही अन्तर्गत रखे जा सकते हैं, वह इस काल में नए रूप खड़े किए जाने को किए गए प्रयोग मात्र हैं। ऐसे ग्रंथ 'कुछ अन्य प्रयोग' शीर्षक के अन्तर्गत दे दिए गए हैं।

पंचम अध्याय में ऊपर बताये गए २४ काव्यरूपों का, आलोच्यकाल में उनके अन्तर्गत रची गई रचनाओं के आधार पर विस्तृत अध्ययन प्रस्तुत किया गया है। इन काव्यरूपों में से जो शास्त्रीय रूप हैं उनकी शास्त्र में दी हुई परिभाषा देकर उनकी आलोच्यकाल की रचनाओं के आधार पर व्याख्या की गई है और उनमें हुए विकास के आधार पर नई परिभाषा बनाई गई है। नवीन काव्यरूपों के लिए उनके प्रारंभिक समय से लेकर आलोच्यकाल तक के स्वरूप की व्याख्या के आधार पर उनकी परिभाषा दी गयी है। प्रत्येक काव्यरूप की परिभाषा एवं व्याख्या के पश्चात् उसकी उपयोगिता दिखाते हुए उसके वर्णित विषय पर विचार किया गया है। अनुभूति एवं अभिव्यक्ति को भली-भाँति समझने के लिए, रूप एवं विषय के समन्वय को स्पष्ट करके संक्षेप में काव्यरूप की विशेषताओं को स्पष्ट कर दिया गया है।

(१) बानी काव्यरूप को उसमें हुए विकास के आधार पर तीन कोटियों में विभक्त किया गया है:—

- बानी
  - प्रारंभिक अथवा संग्रहात्मक रूप
  - संतों की वाणियां
  - भक्तों की वाणियां

बानी के सम्बन्ध में यह दृष्टव्य है कि बानी काव्यों का प्रारंभिक रूप संग्रहात्मक था। कबीर के तथा उसके पश्चात् गुरु की गुरुत्व युक्त मौलिक वचनावली को जो अपौरुषेय जैसी श्रद्धाभाजन थी बानी कहा गया। भक्त कवियों ने पूज्य एवं श्रद्धास्पद गुरु के मुख से प्रस्फुटित समस्त वाणियों को 'बानी' संज्ञा दी। यह रूप अन्य अनेक काव्यरूप के संग्रह के रूप में दिखायी देता है।

(२) **चरित-काव्य**—प्राचीन काल में इसकी शिथिल परिभाषा प्रचलित थी। यह रूप अनेक शास्त्रीय रूपों के मिश्रण का परिणाम है। आलोच्यकाल में इसको निम्न प्रकार विभाजित किया गया है—

- चरित-काव्य
  - पौराणिक
  - ऐतिहासिक
  - धार्मिक
    - जैन धर्म सम्बन्धी
    - संत एवं भक्तों के जीवन चरित
    - आत्मचरित

इस काल में लिखे गए नरपति नाल्ह कृत 'बीसलदेव रासो' ग्रंथ पर विचार करके उसे ऐतिहासिक चरित-काव्य के अन्तर्गत स्थान दिया गया है।

(३) **रास**—रास ग्रंथों की समस्त प्राचीन आचार्यों द्वारा दी गयी परिभाषाओं पर विचार करके यह निष्कर्ष निकाला गया है कि यह प्रारंभ में लोकनृत्य के रूप में प्रचलित था और बाद में अभिनीत होने के लिए साहित्य में आया। १५ वीं शताब्दी के बाद से जैन धर्म के चरित्रों से सम्बन्धित कथावस्तु प्रधान बड़े रास ग्रंथ लिखना प्रारंभ हुआ। रास एवं रासो का एक ही मूल से विकसित होना सिद्ध किया गया है और यह दिखाया गया है कि प्रारंभिक रासो संज्ञक ग्रंथ भी गेय रहे होंगे। इस काव्यरूप का कोटियों में विभाजन इस प्रकार किया गया है—

- रास
  - पौराणिक ऐतिहासिक चरित्रों से सम्बन्धित
  - काल्पनिक प्रेम-कथाओं से सम्बन्धित
  - सिद्धान्त सम्बन्धी

(४) **कथा-वार्ता-काव्य**—संस्कृत के आचार्यों की परिभाषाओं पर विचार करते हुए कथा-वार्ता-काव्य के लक्षण स्पष्ट करते हुए उसका विभाजन इस प्रकार किया गया है:—

- कथा-वार्ता-काव्य
  - रसात्मक कथा-वार्ता काव्य
    - सूफी कवियों के प्रेमाख्यान
    - भारतीय प्रेमाख्यान
      - बात संज्ञक
      - अन्य
  - इतिवृत्तात्मक कथा-वार्ता-काव्य
    - लोक-कथा
    - नीति-कथा
    - काल्पनिक कथा

इस विभाजन के अन्तर्गत आने वाली समस्त रचनाओं के स्वरूप पर विचार करते हुए इनमें प्रयुक्त भारतीय तथा ईरानी कथानक रूढ़ियों, प्रतीक शैली, दोहा-चौपाई बंध आदि के प्रयोग को समीचीन ठहराया गया है। कथानकों के आधार पर भारतीय प्रेमाख्यानों को पुनः तीन कोटियों में विभाजित किया गया है। अंत में इस काव्यरूप का लोकतत्व से सम्बन्ध दिखाया गया है।

(५) **पद, सबद, लीला के पद:**—रूप का विभाजन इस प्रकार है—

- पद, सबद, लीला के पद
  - पद
    - संत कवियों के पद
    - भक्त तथा अन्य कवियों के पद
  - सबद
  - लीला के पद
    - प्रबन्ध रूप में
      - कीर्तन काव्य
      - मात्र कीर्तन
    - स्फुट रूप म

इस रूप के अन्तर्गत सबद के स्वरूप पर विस्तार से विचार हुआ है। 'सबद' को गुरु श्रेणी के संतों के पदों को दी जाने वाली संज्ञा सिद्ध करके पद तथा सबद के भेद को स्पष्ट किया गया है। प्रबन्ध रूप से लीला के पदों के अन्तर्गत "सूरसागर" को "कीर्तन काव्य" की तथा 'परमानन्द सागर" को "मात्र कीर्तन" कहा गया है। "सूरसागर" के स्वरूप का विवेचन करके इस विभाजन का औचित्य सिद्ध किया गया है।

(६) **स्त्रोत्र, स्तुति, विनती काव्य**—इस काव्यरूप का विभाजन इस प्रकार किया गया है—

- स्तोत्र, स्तुति, विनती-काव्य
  - देवी देवताओं की स्तुति संबंधी
  - भक्त एवं गुरुओं की स्तुति संबंधी

स्तुति सकाम एवं निष्काम दो प्रकार की प्राप्त होती है। अधिकांश रचनाएँ गय होने के कारण संगीत तत्व से युक्त हैं।

(७) **सिद्धान्त एवं उपदेशपरक-काव्य**—इस काव्यरूप का उसके अन्तर्गत आने वाले ग्रंथों की संज्ञा के आधार पर १८ भागों में विभाजन किया गया है। जिन ग्रंथों का विभाजन इस आधार पर नहीं हो सका है उन्हें 'कुछ अन्य रचनाएं' के अन्तर्गत स्थान दिया गया है। इस रूप का सम्बन्ध विषय से है और काव्यरूप की संज्ञा उसके वर्णित-विषय को स्पष्ट करने में समर्थ है।

(८) **प्रशस्ति-काव्य**—आश्रयदाता की प्रशंसा में किये गये अतिरंजित वर्णनों वाले फुटकल छंदों के संग्रहीत रूप वाली रचनाएं इस रूप के अन्तर्गत आती हैं। इन ग्रंथों में प्रशंसा स्तुति रूप में की जाती है। फुटकल रूप से रचना करने वाले दरबारी कवियों को यह रूप अत्यन्त ही प्रिय था।

(९) **पुराण**—हिन्दू एवं जैन पुराणों की परिभाषाओं एवं लक्षणों पर विचार करते हुए इस काल के दोनों प्रकार के पुराणों के स्वरूप की व्याख्या की गयी है। इस काल

के पुराण ग्रंथ संस्कृत के पुराणों के भाषानुवाद हैं। उनमें व्यवहृत शैली की विशेषताओं पर विचार करते हुए चरित काव्यों में व्यवहृत शैली से उनका भेद स्पष्ट किया गया है।

(१०) **ऐतिहासिक-काव्य**—ऐतिहासिक चरित-काव्य, प्रशस्ति-काव्य एवं ऐतिहासिक-काव्य का अन्तर स्पष्ट करते हुए, ऐतिहासिक-काव्य के स्वरूप की व्याख्या की गयी है। ऐतिहासिक-काव्य में चरितनायक उसका गुण तथा वह घटना जिससे उसके विशिष्ट गुण पर प्रकाश पड़ता हो, तीनों ही इतिहास सम्मत होनी चाहिए। प्रधानतः शौर्य एवं वीरता आदि गुणों का भी अधिक वर्णन किया गया है।

(११) **मंगल-काव्य**—मंगल-काव्य तीन प्रकार के प्राप्त होते हैं:—

मंगल-काव्य

- विवाह अथवा विवाह के अवसर की किसी क्रिया के वर्णन से युक्त
- मंगल छंद में तथा मांगलिक अवसर पर गाने के लिए
- क्षेत्रीय प्रभाव (बंगाल) से प्रभावित

इस काव्यरूप के सम्बन्ध में यह उल्लेखनीय है कि मंगल-काव्यों का यह विभाजन मौलिक है। आलोच्यकाल के "माहेरो" संज्ञक दोनों ग्रंथ मंगल-काव्य हैं और प्रथम कोटि के अन्तर्गत आते हैं। कबीर के तीनों "मंगल" संज्ञक ग्रंथों को तीसरी कोटि में रखा गया है जो बंगला के मंगल-काव्यों से प्रभावित हैं। "आर्द्रकुमार धवल" "धवल बंध" शैली का एक अन्य मंगल-काव्य है।

(१२) **लीला-काव्य**—पदों से भिन्न छंदों में लिखे गए लीला ग्रंथ इस काव्यरूप के अन्तर्गत आते हैं। पदों में प्रबन्धरूप से लीलागान कठिन कार्य था। इसीलिए अन्य छंदों का प्रयोग किया जाने लगा। बंगाल में कृष्ण की लीलाओं के गान की परम्परा तथा वृन्दावन में "रासमंडल" की स्थापना ने इस काव्यरूप के विकास का मार्ग प्रशस्त किया। इन लीलाओं में गोपी-कृष्ण-प्रेम प्रसंग ही अधिकतर वर्णन किए गए। विष्णुदास कृत "सनेह-लीला" ग्रंथ को जो भ्रमरगीत-प्रसंग पर आधारित है, लीलागान की प्रमुखता होने के कारण इसी काव्यरूप के अन्तर्गत स्थान दिया गया है।

(१३) **साखी**—साखियों को दो कोटियों में विभक्त किया गया है:—

साखी

- संतों की
- भक्तों की

इस सम्बन्ध में दृष्टव्य है कि विशिष्ट विषयों के वर्णन वाले दोहे, दोहे न कहलाकर साखी कहे जाने लगे। प्रारंभ में गुरु श्रेणी के संतों के वचन ही साखी कहे जाते थे। बाद में सभी संतों के उपदेशपूर्ण दोहे साखी कहलाने लगे। गुरु का साक्षात् स्वरूप होने से साखी का अंगों में विभाजन किया जाने लगा। भक्तों की साखियों के विषय संतों से कुछ भिन्नता लिए हुए प्राप्त होते हैं।

(१४) **छंद-गीतपरक-काव्य**—आलोच्यकाल में छंदों एवं गीतों के आधार पर जो काव्यरूप खड़े किये गए उनमें इसी तत्व की प्रधानता है। जो प्रमुख छंद, गीत अथवा बंध प्राप्त होते हैं, यह हैं—१. दोहा बंध, २. पद्धडिया बंध, ३. दोहा-चौपाई बंध, ४. छप्पय बंध (छप्पय, कवित्त,सवैया:,) ५. कुंडलिया, ६. चर्चरी या चांचर, ७. फागु, ८. सोहर, ९. कहरा, १०. बरव, ११. वेलि, १२. विरहुली, १३. सोरठा, १४. गजल, १५. रेखता, १६. नीसाणीं, १७. झूलना, १८. (गीत:लौकिक गीत, शास्त्रीय) राग:तथा १९. कुछ अन्य छंद-गीतपरक ग्रंथ। इस काव्यरूप में इन छंद, बंध तथा गीतों के लक्षणों पर विचार हुआ है।

(१५) **माला या माल काव्य**—यह काव्यरूप तीन कोटियों में विभक्त किया गया है:—

माल या माल काव्य

कोश ग्रंथ | संग्रह ग्रंथ | नाम स्मरण ग्रंथ

इस रूप में शैली प्रधान है। कोश ग्रंथों में समानार्थक तथा नानार्थक शब्द तथा अनेक शब्दों के लिए एक ही शब्द, संग्रह ग्रंथों में एक प्रकार की अनेक वस्तुओं के संग्रह तथा नामस्मरण ग्रंथ में एक ही वस्तु के अनेक नामों के संग्रह प्राप्त होते हैं।

(१६) **सम्वाद, बादु, गोष्ठी, बोध संज्ञक-काव्य**—यह शैली प्रधान काव्यरूप हैं। वर्णित विषय के आधार पर इस काव्यरूप का विभाजन इस प्रकार किया गया है—

सम्वाद, बादु, गोष्ठी, बोध संज्ञक काव्य

आध्यात्मिक विषय | सामान्य विषय

यह उल्लेखनीय है कि इस रूप में उक्त चारों संज्ञाओं के औचित्य पर विचार करते हुए उन्हें उचित ठहराया गया है। सिद्धान्तों को अधिक प्रभावशाली ढंग से प्रस्तुत करने में यह शैली अत्यन्त ही सफल हुई। पुराण-काल की इस बहुप्रचलित शैली का इस काल में आध्यात्मिक विषयों के साथ फिर सम्बन्ध जुड़ता दिखाई देता है।

(१७) **बारहखड़ी या बावनी**—इस काव्यरूप की प्राप्त होने वाली विविध संज्ञाओं पर विचार करते हुए उनके रूप को स्पष्ट किया गया है। संज्ञाएँ यह हैं—बारहखड़ी : बाराखड़ी : बावनी, कवक, ककहरा, अखरावट, अलिफनामा, चौंतीसा तथा बावनी आखरी। गुजरात की प्राचीन रचनाओं की संज्ञा 'मातृका' प्राप्त होती है। काव्यरूप एवं वर्णित विषय के समन्वय को भी स्पष्ट किया गया है।

(१८) **बारहमासा**—विरह वर्णन का यह प्रमुख प्रकार है। इस काव्यरूप में शैली के आधार पर किया गया विरह वर्णन ही इसका वर्णित-विषय है। बारहमासे असाढ़, चैत्र तथा अगहन से प्रारंभ होते हैं। संयोग के बारहमासे भी मिलते हैं। संतों में इस रूप का प्रयोग ज्ञान वर्णन के लिए हुआ है।

(१९) **संख्यापरक काव्य**—इस काव्यरूप में यह संज्ञाएँ प्राप्त होती हैं—अष्टक, पचीसी, बत्तीसी, चौंतीसा, छत्तीसी, पंचाशिका, बावनी, चौबनी, चौहत्तरी, चौरासी, शतक तथा सतसई।

(२०) **भ्रमरगीत**—काव्यरूप के नामकरण के कारण का उल्लेख करते हुए उसके स्वरूप की पूर्ण व्याख्या की गयी है। विष्णुदास कृत 'सनेह लीला' की लीला-गान की अधिकता के कारण इस प्रसंग से सम्बन्धित रचना होने पर भी इस रूप की प्रारंभिक रचना नहीं माना गया है। इस प्रसंग का वर्णन करने वाले ग्रंथों की कथा का इसके मूल (श्रीमद्भागवत) की कथा से अन्तर स्पष्ट किया गया है।

(२१) **कथा**—कथा दो प्रकार की प्राप्त होती हैं—

कथा

अनुष्ठान कथा | महात्म्य कथा

कथा में वक्ता-श्रोता की अनिवार्य योजना होती है। घटनाओं का क्रम निश्चित होता है। अनुष्ठान कथाएं पर्व-विशेष पर किये जाने वाले अनुष्ठान का अंग होती हैं। इनमें फल का उल्लेख प्रतीयमान रहता है। महात्म्य कथा में फल का उल्लेख बार-बार होता है। जैन कवियों द्वारा लिखित कथाएं भी प्राप्त होती हैं।

(२२) **अष्टयाम**—हिन्दी का निजी काव्यरूप है। वर्णित-विषय कृष्ण एवं राम की दिनचर्या है। सात समय की क्रीड़ाओं का जहां वर्णन है वहां संज्ञा समयप्रबन्ध दी गई है।

(२३) **नखशिख**—विशिष्ट शैली में किया गया स्त्री-सौन्दर्य-वर्णन 'नखशिख' काव्यरूप के अन्तर्गत आता है। इस वर्णन में क्रम तथा विषय ही मुख्य हैं। इस शैली में होने वाले वर्णनों में अंगों का क्रम यह रहता है—केश, ललाट, भौंह, नेत्र, नासिका, ओष्ठ, दंत, कंबु, स्तन, कटि आदि। रूप में विषय एवं शैली का सामंजस्य रहता है।

(२४) **नाटक**—यह हिन्दी का काव्यरू है जो संस्कृत के नाटकों की परम्परा से विकसित न होकर लोक-प्रचलित जन-नाटकों की शैली को आधार बना कर विकसित हुआ है। जैनों के रासग्रंथ एवं ब्रज में प्रचलित रास-लीला का इस रूप पर सीधा प्रभाव पड़ा है। यह नाटक उस काल में लोक-प्रचलित होने लगे थे और उनका अभिनय भी किया जाता था। रामलीला के विकास में इस रूप का पर्याप्त योग है।

षष्ठ अध्याय में विक्रम की अठाहरवीं शताब्दी के प्रारंभ से लेकर भारतेन्दु हरिश्चन्द्र से पूर्व तक की प्रमुख रचनाओं के आधार पर इन काव्यरूपों की परम्परा प्रस्तुत की गई है। भारतेन्दु का काल हिन्दी साहित्य में सन्क्रान्ति का काल है। भारतेन्दु के पश्चात् हिन्दी भाषा तथा साहित्य में नवीन युग का सूत्रपात हुआ। पश्चात्य साहित्य के प्रभाव से काव्य के नए मानदंड स्थिर किये गए। अत: उस काल से पूर्व तक ही इस अध्ययन को सीमित रखा गया है। इस प्रकरण में प्रत्येक काव्यरूप के अन्तर्गत रची जाने वाली प्रमुख-प्रमुख रचनाओं का हिन्दी साहित्य के विविध इतिहासों, खोज विवरणों

तथा हस्तलिखित प्रतियों के आधार पर विवरण प्रस्तुत किया गया है। ग्रंथों के उल्लेख के आधार को भी ग्रंथ के नाम के साथ ही दे दिया गया है।

उपसंहार में इस अध्ययन के आधार पर प्रकाशित तथा हस्तलिखित ग्रंथों की संख्या दी गयी है। साथ ही आलोच्यकाल में प्राप्त होने वाले कुल रूपों का वर्णन करके यह दिखाया गया है कि उन रूपों में से कितनों को काव्यरूप का पद प्राप्त हुआ है तथा कितने प्रयोग ही रह गए हैं। इस काल के काव्यरूपों में जो नवीन हैं उनके प्रचलन के कारणों पर भी संक्षेप में प्रकाश डाला गया है।

डा० विश्वनाथ प्रसाद

# प्रेम अभिलाष*

व्रजभूमि भक्ति के लिए सदा से अत्यंत उर्वर रही है। इसकी वीथियों और गलियों में आकर बड़े-बड़े राजमहलों में रहनेवाले राजाओं, महाराजाओं और बादशाहों की भी ठसक कपूर की भाँति उड़ गई और वे भी उसी प्रवाह में ऊम-चूम होने लगे, जिसमें कभी उद्धव जी की भारी-भरकम ज्ञान-गठरी बह गई थी। अत: भक्ति की इस पावन पुण्य-स्थली में भक्तों का रम जाना स्वाभाविक ही है। यहाँ आकर अनेक भक्तों ने अपनी-अपनी वाणी में भगवान् और उनकी भव्य भावना-भूमि की अनेक झाँकियाँ प्रस्तुत की हैं। व्रज के प्रसिद्ध स्थानों, मथुरा, गोकुल, वृन्दावन, गोवर्द्धन, बरसाना, नंदगाँव आदि स्थानों की चर्चा सम्प्रदायानुसार होती है। पुष्टि-सम्प्रदाय में श्रीकृष्ण की बाल्य क्रीड़ाओं का मुख्य स्थल गोकुल माना जाता है। इसलिये उस सम्प्रदाय के अनुयायी गोकुल को गोलोक की संज्ञा देकर गोलोक-विहारी का चिन्तन-मनन करते हैं। किन्तु दूसरे वैष्णव सम्प्रदाय श्रीकृष्ण की लीला-भूमि वृन्दावन को ही मुख्य स्थल मानकर अपने आराध्य के श्री चरणों में लीन होना अपना मुख्य ध्येय समझते हैं। तदनुसार प्रस्तुत ग्रंथ के रचयिता ने वृन्दावन-विहारी को अपने इष्ट के रूप में स्मरण किया है।

व्रज-प्रदेश में वृन्दावन-बिहारी का गुणगान करते समय श्रीमद्भागवत और महा-कवि सूरदास का स्मरण न आए, यह असंभव है। इन दोनों ग्रंथों में प्रत्येक भक्त को अपने मनचाहे भाव की सामग्री मिल जाती है और फिर "जाकी रही भावना जैसी, हरि मूरति देखा तिन तैसी" के अनुसार उनमें से जिस रस की चाहना होती है उसी रस की भाव-धारा में डुबकियाँ लगाई जाती हैं। श्रीकृष्ण का चरित्र एक तो ऐसे ही अमृतोतम है और उसमें यदि भक्ति की चासनी पड़ गई तब उसकी मिठास का क्या कहना! रसना ऐसी तृप्त हो जाती है, कर्ण-कुहर ऐसे लबालब भर जाते हैं कि उनमें किसी और की गुंजाइश ही नहीं रह जाती। फिर उस अलौकिक अनुभव के स्वाद का बखान कौन करे! नंद-नंदन वृन्दावन-चंद की बाँकी चितवन के जाल में जो पड़ा सो पड़ा। न बँधनेवाले

---

*ले०—स्व० मुंशी साहबसिंह भटनागर; प्रकाशिका, श्रीमती सुमति भटनागर, कानपुर, सन् १९५५, मूल्य ७)

को बंधन दिखता है, न बंधन को बँधनेवाला ही अपने से भिन्न दिखाई देता है। इस ग्रंथ के विषय में ग्रंथकर्ता ने स्वयं यह सूचना दी है—

यह जो मैं हरि गाथा गाई, ता सूचनिका सुनिये भाई।
या में सब नब्बे अध्यायी, जिनमें हरि लीला मन भाई।
द्वादश चौपाई प्रति दोहा, अरु एक अधिक सोरठा सोहा।
छप्पय कवित गीतिका छंदा, जुगन प्रमान किये प्रति वंदा।
अष्ट सहस षष्ठ शतभानो, अष्ट अधिक चौपाई जानो।
सप्त सत्त षट विंशति दोहा, यही प्रमान सोरठा सोहा।
त्रय शत षष्टादिक अरु दो, छप्पय छंद कवित्त गिन लो।
आयत वेद सतषट सब जानो, यहि प्रमान कर ग्रंथ बखानो।

इस सूचना के अनुसार ग्रंथ में ९० अध्याय हैं, जिनमें आठ हजार छः सौ आठ चौपाइयाँ, सात सौ छब्बीस दोहे और इतने ही सोरठे भी हैं, तीन सौ बासठ कवित्त, छप्पय आदि हैं। ग्रंथ-विस्तार की इस सीमा को देखकर कवि की जागरूकता का पता चलता है। सूफी ग्रंथों में पाँच अर्द्धालियों के बाद एक दोहा और एक सोरठा देने का नियम था।[1] उसमें आगे चलकर कुछ सूफियों ने सोरठे को तो छोड़ दिया, पर दोहे को बना रहने दिया। बाद में गोस्वामी जी ने इसमें और इजाफ़ा किया। उन्होंने अर्द्धालियों की संख्या आठ करके उसे चौपाई बना दिया और अपने रामचरित मानस में प्रायः आठ अर्द्धालियों के बाद एक दोहा दिया है। कहीं-कहीं इसमें व्यक्तिक्रम भी हुआ है। बीच-बीच में कहीं-कहीं अन्य छंद-हरिगीतिका आदि भी दिए गए हैं। गोस्वामी जी के बाद के सूफियों ने चौपाई के क्रम का निर्वाह तो किया है, पर सोरठे और दोहे की प्रणाली को नहीं माना, जैसे, भाषा प्रेमप्रगास, अनुराग बाँसुरी आदि में। दूसरी ओर हम देखते हैं कि आलम ने अपने माधवानल-कामकंदला में वही पुरानी पद्धति कायम रखी है। 'प्रेम अभिलाष' के रचयिता ने अवधी के छन्दों और शैली को अपनाया है और साथ ही उस पुरानी पद्धति को अंगीकार करके बारह चौपाइयों के बाद एक दोहा और फिर एक सोरठा दिया है। स्थान-स्थान पर दोहे और सोरठे के पहले रामचरित मानस का अनुगमन करते हुए छंद नाम से कुछ अन्य रचनाएँ दी गई हैं, जो भावपूर्ण हैं। इससे जान पड़ता है कि ग्रंथकर्त्ता पुरानी परिपाटी से भली भाँति परिचित थे और उसकी मर्यादा का पालन करना अपना कर्त्तव्य समझते थे। छन्दों की यह योजना सर्वथा अनूठी है।

भक्ति और उसकी माधुरी से भक्त का हृदय-कमल खिल जाता है। उस अवस्था में वह अपने इष्ट का ध्यान तो क्या प्रत्यक्ष दर्शन का अनुभव करता है तथा अपने और उसमें

---

१. साधन, मैनासत·········हस्तलेख।
२. आलम, माधवानल कामकंदला, हस्तलेख, सन् ९९१ हि० = १५८३ ई०।
३. जायसी, अखरावट, नागरी-प्रचारिणी सभा, काशी, षष्ठ संस्करण, सं० २०१३ वि०।

कोई भेद नहीं पाता। इस भावना के दर्शन कवि की रचना में अनेक स्थलों पर होते हैं। इसी भाव से ओत-प्रोत होकर कवि ने वृन्दावन का बड़ा सजीव वर्णन किया है—

मथुरा मंडल सब ब्रज धामा, चौरासी कोसै अभिराभा।
जन्मपुरी हरि पावन धारी, तीन लोक ते मथुरा न्यारी।
अति पुनीत सब व्रजअस्थाना, वृन्दावन सुखधाम प्रमाना।
मधुवन ताल कुदर वृन्दावन, काम कोकिला जमुना दाहिन।
उत्तर जमुन भंडेर महाबन, भाट भद्रवन लौह वेल बन।
बारह बन उपवन हैं बारह, वार पार अरु जमुन किनारा।
श्रीगोवर्द्धन परमसुहावन, कामा गिरि अति सुंदर पावन।
नंदगाँव वरसानो कहिये, गोकुल आदि निरखि सुख लहिये।

× × × ×

श्री वृन्दावन हरिपद पावन, ब्रह्म कमल दल शोभ सुहावन।
निरगुन ब्रह्म अद्वैत अखंडा, रोम कोटि ब्रह्मांड प्रचंडा।
सो परब्रह्म जहँ करत निवासा, सच्चिदानंद ज्ञान परकासा।
ज्ञान विपिन विज्ञान धरातल, जोग अनल वैराग्य अमल जल।

× × × ×

भक्ति मोक्ष को पद निरबाना, तेहि पटतर को दीजै आना।
पुर वैकुंठ न तासम तोला, स्वर्ग अपवर्ग ज्ञान के ढोला।
ध्यान विपिन हरि भक्ति सुबागा, सुर नर मुनि जिनको अनुरागा।
हरि भक्ती बन बाग सुहावा, हरिजन निरमल ध्यान लगावा।
हरि चर्चा की भूमि सुहाई, गुण प्रबोध की गहरी खाई।
चारों मुक्ति चार दरवाजे, प्रभु पद रति के पट तिन साजे।
संयम नेम जहँ कूप तड़ागा, प्रेम सलिल भरि जल अनुरागा।

इन पंक्तियों से स्पष्ट ही विदित होता कि कवि के मन में श्री वृन्दावन के प्रति प्रगाढ़ आस्था है। "तीन लोक ते मथुरा न्यारी" इस लोकोक्ति की यह कैसी विशद व्याख्या है। भगवान् के अनेक रूपों के निवास-स्थल को भली भाँति देखने के लिए जितनी निष्ठा होनी चाहिए उतनी शत-प्रतिशत इस ग्रंथ के रचयिता में विद्यमान है।

ग्रंथकर्त्ता ने प्रस्तावना में कहा है :—

ब्रज विलास विरचो रुचिर श्री ब्रजवासी दास।
तिन छाया परभाव लिखि बरनौ साहब दास॥

अर्थात् कवि साहब दास नें श्री ब्रजवासी दास के ब्रजविलास के भावानुसार इस ग्रंथ की रचना की। उन्होंने यह भी लिखा है कि किन परिस्थितियों में इस ग्रंथ का निर्माण हुआ। अपने कुल-कुटुम्ब का वर्णन करते हुए उन्होंने लिखा है :—

उपज्यो हृदयविषाद बीतत है अब चौथपन।
करि आयो बरबाद जन्म गयो हरि-भजन बिन ।।
मथुरा गयो इंगलिसा लागो, लगि हरिपुरी प्रेम अनुरागो।

चौथापन आते-आते जब वैराग्य उत्पन्न हुआ, तब कवि मथुरा चले गए। वहाँ भक्ति और वैराग्य में उनका मन ऐसा रमा कि संसार का और सब कुछ भूल गया।

भाव-भूमि के लिए कवि के सामने कृष्ण का विमोहक चरित्र था, जिसका ब्रज-विलास में भली-भाँति वर्णन है और छंद-योजना के लिए गोस्वामी जी के रामचरितमानस का सहारा आद्योपान्त लिया है। भाषा के साज-शृंगार के लिए भी उन्होंने मानस का ही आदर्श सामने रखा है। कवि की दृष्टि भाषा के टकसालीपन को छोड़कर चलतेपन पर अधिक रही है और मानस के प्रभाव से उसमें जहाँ तहाँ अवधी के भी प्रयोग मिलते हैं। यह मिश्रण कथा के प्रवाह को आगे बढ़ाने में सहायक ही सिद्ध हुआ है।

कृष्ण-लीला में वस्तुत: गीतात्मक तत्त्वों की ही प्रधानता है। प्रबन्धात्मकता के लिए जो कथा-भूमि का उपयुक्त विस्तार चाहिए, उसका उसमें अपेक्षाकृत अभाव है। महाभारत के कृष्ण-चरित्र में इसके लिए अधिक विस्तीर्ण क्षेत्र है, जिसका आधार ग्रहण करके रामायण के समान 'कृष्णायन' जैसे काव्य-ग्रंथों की रचना हुई है, पर लीलात्मक कृष्ण-चरित्र में इसकी गुंजाइश कम है। प्रेम अभिलाष के लेखक की मौलिकता इस बात में है कि ब्रजबिहारी श्रीकृष्ण के चरित्र को उन्होंने प्रबन्ध-काव्य का कलित कलेवर देकर प्रस्तुत किया है। उनकी मौलिकता का दूसरा पक्ष नव-नव प्रसंगों की एक से एक मनोहर लीलाओं की कल्पना में है। कृष्ण-लीला के कवियों की प्रतिभा की मुख्य कसौटी वही है और इस कसौटी पर 'प्रेम अभिलाष' का कुशल कवि सभी प्रकार से खरा उतरा है।

लीलाओं के वर्णन में उसने साधारण तन्मयता दिखाई है। इसमें श्री मधुबाँसुरी लीला बड़ी सुंदर बन पड़ी है। पहले तो गोपियों ने मुरली को सौत के रूप में लेकर उपालंभ वाक्य कहे हैं, पर पीछे त्याग और तपस्या के आधार पर उसके भगवत्प्रेम के अधिकार को हृदयंगम किया है। भगवत्कृपा के लिए त्याग का उज्ज्वल आदर्श इन पंक्तियों में कितनी मार्मिकता के साथ उपस्थित किया गया है।

.........................' तब हरि मुरली अधर चढ़ाई।*
कहँ लगि कीजें तेहि प्रशंसा, यह तो हरि मन मानस हंसा।
परस अधर रस जब यह बाजै, तान तरंग नाद धुनि साजै।
फिर असको जनमो जग माहीं,यह धुनि सुनिकै मोहित नाहीं ।।

*प्रेम अभिलाष, पृ० २७७।

दो०—चेत पाय अधरामृत छुटत मौन मुरझाय।
क्यों न श्याम हित तेहि करे, अमरत जीवन जाय ।।

कथा के प्रसंगों का निर्वाह सर्वत्र चतुराई से किया गया है। भाषा भी तदनुरूप ही रखने का प्रयास किया गया है। चाहे सावन में हिंडोरे झूलने का प्रसंग हो, चाहे फागुन में रंग की पिचकारी लिए नन्दनन्दन की टोली की धमा-चौकड़ी हो, कवि प्रत्येक स्थल पर सजग रहा है और मौके की कोई भी बात उससे छूटने नहीं पाई है। होली का एक प्रसंग यों प्रस्तुत किया गया है:—

कमखाबी लहँगा चटकीलो, घेरदार ब्रहु रंग रंगीलो ।
लसे नवल तन जरकस सारी, हरित पीत रँग हेम किनारी ।
सुभग अंग भूषन सब साजे, कंगन कंकन नुपुर बाजे ।
रंग पतंग केशरा केसर, मारे रंग घोर मटकत भर ।

×	×	×	×	×

पिचकारी रंग कुंकुम न्यारी, तकि तकि मारत प्यारे प्यारी ।
चहुँ दिशि उड़ै गुलालन ढेरी, भई घोर तन घटा घनेरी ।
रँग गुलाल अँबीरन कीचा, फैल रहे थल मारग बीचा ।
जो जो जाके वश पड़ि जावत, मूँड़ रंग मटुकी उलड़ावत ।
भीजि लपटि रहे चीर तनन सों, छवि उपमा बड़ि चीर हरन सों ।

इन पंक्तियों में कवि ने जो चित्र खींचा है, उसकी सटीक झाँकी किसी भावुक भक्त से ओझल नहीं हो सकती। कथाओं के झुरमुट में वृंदावन-बिहारी की झाँकी सर्वोपरि रहती है। यही तो किसी सच्चे भक्त की कसौटी है कि वह सब में अपने इष्टदेव को ही देखे। तभी तो "यो मां पश्यति सर्वत्र सर्वं च मयि पश्यति। तस्याहं न प्रणश्यामि ·····§"की अवस्था उत्पन्न होती है। व्रज की अटपटी गलियों, वीथियों और कुंजों में गोपसखाओं के साथ कवि सर्वत्र अपना तादात्म्य बनाये रखता है। उसमें कहीं तिलभर का भी व्यवधान नहीं पड़ने पाता।

कथा-प्रवाह को प्रभावोत्पादक बनाए रखने के लिए भी कवि सर्वत्र सावधान रहता है। घटनाओं के मनकों को कवि. कथा के सूत्र में ऐसा पिरोता है कि उसकी छवि देखते ही बनती है। प्याजी छिलके के समान एक के बाद एक कथा निकलकर पाठक के मानस-पटल पर अंकित होती चली जाती है। भाषा अथवा वर्णन-शैली कहीं भी रस के आड़े नहीं आती। पाठक को रसानुभूति में कहीं बाधा न पड़े, यही तो सच्चे कवित्व की सफलता है। 'प्रेम अभिलाष' में यह गुण प्रचुर मात्रा में विद्यमान है। इस प्रकार यह कृति केवल भक्तों के लिए नहीं, काव्य-प्रेमियों के लिए भी कम महत्त्व की नहीं है। पुस्तक के प्रारंभ में डा० भगीरथ मिश्र का लिखा हुआ एक परिचयात्मक

§ भगवद्गीता, २—३०।

प्राक्कथन है। उसके बाद लेखक का वंश-परिचय दिया गया है। डा० मुंशीराम शर्मा ने परिचायिका में 'प्रेम अभिलाष' की विशेषताओं का विवेचन किया है।

इस महत्त्वपूर्ण कृति के प्रकाशन के लिए श्री कालका प्रसाद भटनागर, उप-कुलपति, आगरा विश्वविद्यालय तथा उनकी धर्मपत्नी श्रीमती सुमति भटनागर ने बड़ा प्रयास किया है। इसका प्रकाशन-भार आपने ही वहन किया है। ग्रंथ-लेखक मुंशी साहबसिंह भटनागर आपके प्रपितामह थे और उनकी यह रचना आपके परिवार में वर्षों से सुरक्षित थी। यह प्रति मूलत: नस्तालीक (फारसी) अक्षरों में लिखी गई थी। उसका नागरी अक्षरों में प्रतिलेखन तथा उचित शोधन कराकर प्रकाशित किया गया है।

लीलामय-कृष्ण-भक्ति-परम्परा की इस संग्रहणीय काव्य-कृति को साहित्य-जगत् के लिए सुलभ बनाकर आप लोगों ने अपने स्मरणीय पूर्वज की पवित्र स्मृति को ही स्थायित्व नहीं प्रदान किया है, वरन् वंशगत उत्तराधिकार रूप में प्राप्त अपने हिन्दी-प्रेम तथा काव्यानुराग को भी चरितार्थ किया है, जो अनुकरणीय है और जिसके लिए आप हिन्दी-साहित्य-संसार के साधुवाद के पात्र हैं।

उदय शङ्कर शास्त्री

# खेमदास रचित 'गोपीचन्द को वैराग बोध'

भारतीय साहित्य के गत अंक में खेमदास की 'मैना को सतु' नाम की एक रचना प्रकाशित हुई है। मैनासत के रचयिता खेमदास ने अपने को दादूपन्थी और मनोहर दास का शिष्य कहा है। उक्त खेमदास के परिचय के प्रसंग में श्री मोतीलाल मेनारिया के ग्रन्थों के हवाला देते हुए मैंने लिखा था कि यह खेमदास रज्जब जी के शिष्य खेमदास से भिन्न हैं।

संयोग से मेरे संग्रह के एक गुटके में रज्जब जी के शिष्य खेमदास रचित "बैराग बोध" नामक एक रचना दिखाई पड़ी, जिसे यहाँ अविकल रूप से प्रकाशित किया जा रहा है। इस ग्रंथ के आरंभ में खेमदास ने अपने परिचय के प्रसंग में लिखा है:—

पीर पकंवर सिध अर साध, निशदिन करै ब्रह्म आराध।
निज बंदा जहाँ ध्रू प्रह्लादू, नाम कबीर जपै जन दादू।
जिन संतनि कै हरि पद पेम, तिन बंदू का बंदा षेम।
आदि अंति संतनि सिर नाऊं, गुरु रज्जब की गमी गुन गाऊं।
भगवंत भगत तास जस कीजै, उभै समांनि सुमरि सूष लीजै।
कोट निन्याणवैसी जे राजा, भजै भगवंत सरै सब काजा।
जिन में गोपीचंद प्रसिधि, तिनको जस वरण्यू द्यौ बुधि।

इन पंक्तियों में खेमदास की गुरु परम्परा का पूरा परिचय मिलता है, पहिले कबीर फिर दादू और बाद में रज्जब जी को गुरु रूप से स्मरण किया गया है। परन्तु उक्त "मैना को सतु" के कर्त्ता खेमदास ने इस प्रकार का कोई पारम्परिक परिचय नहीं दिया है। उसने केवल अपने दादूपंथी होने की चर्चा करके गुरू 'मनोहर दास' का नाम लिया है और गुरु स्थान 'अवरोहा' (अमरोहा) का उल्लेख किया है। इस "बैराग बोध" में रचना काल नहीं दिया गया है, परन्तु श्री मोतीलाल मेनारिया के अनुसार इन खेमदास का रचनाकाल सं० १७०० के आस-पास माना जाता है और जिस गुटके में यह ग्रंथ लिखा है उसका लिपि काल सं० १७६० है।

इस "वैरागबोध" में गोपीचन्द के निर्वेद की कथा का वर्णन है। भर्तृहरि के बारे में प्रसिद्धि है कि एक घटनावश उन्हें अपनी सर्वाधिक प्रिय रानी पिंगला से वैराग्य हो गया था जिसके परिणाम स्वरूप वे नाथ संप्रदाय में दीक्षित हुए थे। दीक्षा देने के पूर्व गुरु ने एक शर्त रखी थी कि वे घर जाकर अपनी पत्नी को माता कह कर भिक्षा ले आवें, इसका आशय यह था कि यदि उन्हें स्थायी निर्वेद न हुआ होगा तो वह अपनी पत्नी के आकर्षण में पुन: आबद्ध हो जायंगे। तब उन्हें दीक्षा देने का कोई प्रश्न ही न उठेगा। और यदि उन्हें सचमुच का वैराग्य हुआ होगा तो वे उस नारी आकर्षण से मुक्त होकर आ जायंगे। निदान भर्तृहरि अपनी रानी पिंगला को माता कह कर भिक्षा ले आये और फिर उन्हें नाथ दीक्षा प्राप्त हुई। किंचित हेर फेर के साथ यही कथा खेमदास की इस रचना में में है। और उसकी रचना की कथा इस प्रकार है:—

गौड़ देश के धौलागिरि नगर के छलोचंद राजा के पुत्र का नाम गोपीचंद था। उसके सोलह सौ अर्द्धांङ्गिनियाँ थीं, उसका यश आस पास खूब व्याप्त था। वह अत्यन्त स्वरूपवान था। एक दिन उसकी कंचन जैसी काया को देख कर उसकी माता मैनावती उसे नाशवान समझ कर मन ही मन रो पड़ी। राजा ने माता के आँसू देख कर सोचा कि, महलों में निवास करने पर भी माता को क्या कष्ट है, जो माता दुखित सी दिख रही है। उसने अपनी पत्नियों, दास-दासियों सब से माता के दुख का कारण जानना चाहा पर उसे किसी ने नहीं बताया। तब वह विवश होकर स्वयं माता के पास गया और माता से पूछा—माता तेरी आँखों में आँसू कैसे आ गए। तब माता ने उसे संसार की अनित्यता दरसाते हुए उसकी सुन्दर से सुन्दर वस्तुओं का नाश हो जाने की बात बताई। सुनकर राजा ने, माता से कहा, माता! तू इसके लिये जो आज्ञा दे, म वह करने को तैयार हूँ। दान-पुण्य, तीर्थ-व्रत सब करूंगा। तब माता ने कहा, बेटा, तू राज-पाट छोड़ दे, हाथी-घोड़े, लाव-लश्कर सब छोड़ दे, सोलह सौ रानियों और बारह सौ कन्याओं को भी छोड़ दे, क्योंकि इस कलियुग में जीवन बहुत थोड़ा है इस लिये तू इन संसारी वस्तुओं को त्याग कर कुछ परलोक की चिन्ता कर। गोपीचन्द ने कहा, माता! मुझे बारह वर्ष तक और राज्य कर लेने दे, फिर मैं जोगी हो जाऊँगा। माता ने कहा, आज कल करने से क्या लाभ। राजा ने पूछा, माता! तू तो मेरी माँ है और है राजमहलों की महाराणी, फिर तूने यह ज्ञान कहाँ से सीखा है? माता ने उत्तर दिया—गोरखनाथ हमारे गुरु हैं और चर्पटनाथ मेरे गुरुभाई हैं। उन्हीं गुरु गोरखनाथ जी के उपदेश के अनुसार ही मैं तुझ से कह रही हूँ। राजा ने कहा, माता मैं जोग नहीं जानता हूँ और जोग की जुगुति भी नहीं जानता हूँ और मैं किसी गुरु के दरबार में भी नहीं गया हूँ, बचपन से ही राजकाज में लगा रहा हूँ अत: किस प्रकार काया की रक्षा कर सकता हूँ। माता ने कहा—तू इस की चिन्ता मत कर कि तू जोग-जुगुति नहीं जानता है, तू केवल सद्गुरु की सेवा कर, उसी से तुझे सब ज्ञान प्राप्त हो जायगा। माता ने सिद्धों का और सिद्धियों की बहुत सी चर्चा की, पर गोपीचंद को प्रबोध नहीं हुआ। जिस तरह से पारस (एक प्रकार का पत्थर, जिसके स्पर्श से लोहा सोना हो जाता है।) पास में होने पर भी बिना ज्ञान के कोई उसका उपयोग नहीं कर पाता उसी प्रकार ज्ञान के अनेक उपदेशों से गोपीचंद ने कोई लाभ नहीं उठाया।

तब माता ने अन्य युक्ति से काम लिया और मछिद्रनाथ की कथा सुनाई। उसने कहा काल किसी को छोड़ता नहीं है, सब को किसी न किसी प्रकार अपने पाश में अवश्य बांधता है। मैनावती ने कहा—सिद्ध जालंधर इस प्रकार रहते हैं, दक्षिण देश में उसके शिष्य कान्हीपाव और उनके साथ चौदह लौ चेलों ने प्रवेश किया। कान्हीपाव की जमात जिस जिस ओर गई सब तरफ उसने अपने मत का प्रसार किया। अनेक राजा महाराजा भी उसके अनुयायी हो गए। वह षटदरसनियों से वाद विवाद करता था। चारों ओर अतीतों का पहरा लगा रहता था, उसके आतंक से किसी अन्य साधु को भिक्षा तक नहीं मिलती थी। बहुत दिन तक इस प्रकार विचरण करते करते उसने कोट कांगड़े तक का फेरा लगाया। वहीं गोरखनाथ का निवास था। वह एक बाग में बैठा और शिष्यों को भिक्षा लाने के लिए नगर में भेजा। नगर के द्वारों पर पौरियों ने उन्हें रोका और कहा अगर यह नाद बजा सको तो नगर में जाओ। अतीतों के हाथ ही उस नाद तक नहीं पहुँचते थे अत: सब विवश होकर लौट आए। अतीतों ने लौटकर गोरखनाथ से सारी हकीकत बताई तो गोरखनाथ स्वयं चल पड़े। गोरख के पास पहुंचने पर छरीदारों ने रोका तो गोरख ने कहा कि हम अतीत हैं हमें नगर में जाने दो। तब पौरियों ने कहा इस नाद को बजाने के बाद ही नगर में प्रवेश कर सकते हो। गोरख ने नाद को आज्ञा दी। तब नाद अपने आप ही बजने लगा इससे लोगों को बड़ा आश्चर्य हुआ। धूंधलीमल और कान्हीपाव दोनों गोरखनाथ से मिलने आए। तब धूंधलीमल ने कहा कि आप तो बड़े सिद्ध मालूम पड़ते हैं तो अपने गुरू को माया के बंधन से क्यों नहीं बाहर करते। गोरखनाथ ने कहा! हमारे गुरू कभी बंधन में नहीं रह सकते। और अपने गुरू की ओर चल पड़े। सिंघलद्वीप में जा पहुँचे। सिंघलद्वीप में जाकर उन्होंने देखा कि बाघनीरूपी कामिनी ने गुरू जी का सब रस चूस लिया है। गोरखनाथ ने गुरु को पहचान कर प्रणाम किया। उन्होंने गुरु को बहुत प्रकार से समझाया तब मछिद्रनाथ ने कहा, कि मेरा रस कस सब बह गया अब मुझ से योग न होगा। गोरखनाथ ने अनेक यत्न करके गुरू को उस फंदे से निकाल लिया। मछिद्रनाथ सिंघलद्वीप में तपस्या करने गए थे वहां वे पद्मिनी स्त्रियों के वश में आगए और सारा जोग भूल गया। उन्हें गोरखनाथ ने निकाला। अत: वे धन्य है। कान्हीपाव धोला गिर गया, जहाँ जलंधरपाव का स्थान था। मैनावती ने सुना तो दर्शन करने के लिए आई। और अनेक प्रकार की वस्तुएँ भेंट की, परन्तु जलंधरपाव ने उन्हें स्वीकार नहीं किया। मैनावती ने गोपीचंद को भी गुरू का चरण स्पर्श कराया। गोपीचंद के सामने ही कान्हीपाव ने अपनी कई सिद्धियां प्रगट की जिनमें राज-पाट धन-वैभव आदि की असारता दिखाई पड़ती थी। राजा पर उसका बड़ा प्रभाव पड़ा। मैनावती ने कहा—नारी पुरुष की माता है और पुरुष स्त्री का पुत्र है इसलिए ज्ञान पूर्वक विचार करके अवधूत ने नारी को छोड़ दिया। इससे प्रभावित होकर राजा ने भी अपना सब राज-पाट छोड़ दिया और कंथा पहन कर चल पड़ा। महल छोड़कर भिक्षा भोजन का आश्रय लिया। उसने सोलह सौ रानियाँ, बारह सौ कन्यायें, नौकर-चाकर, हाथी-घोड़े नगर-देश सब छोड़ दिया। नगर के लोग तथा उसकी रानियों ने राजा को वापस बुलाने के बड़े प्रयत्न किए पर उन लोगों के सब प्रयत्न बेकार गए और राजा घर नहीं लौटा, वह वन में जाकर अपनी ध्यान-धारणा में लीन हो गया।

पूरी रचना में १५२ छंद हैं। जिनमें कबीर, दादू और रज्जब के नाम आए हैं। कहीं-कहीं इन महात्माओं के पूरे के बचन उद्धृत कर दिए गए हैं। लिपिक ने कहीं तो दोहे के लिए दोहा और कहीं साषी शब्द लिखा है। इसकी 'क' प्रति में छंद संख्या १३३ से आगे एक गीत सा दिया है जिसकी भाषा जयपुरी प्रतीत होती है। 'ख' प्रति में छंद संख्या १३३ से आगे तीन साखियाँ और देकर १३६ पर ग्रंथ समाप्त कर दिया गया है। इससे यह अनुमान होता है कि मूल ग्रंथ की छंद संख्या १३६ ही रही होगी। गीत की दो-दो कड़ियों को एक मान कर उन पर छंद संख्या के अंक लगा देने से ही वर्तमान छंद संख्या १५२ तक पहुँची है। अन्यथा पूरे गीत की एक संख्या ही मानी जाती तब ग्रंथ १३५ पर ही समाप्त हो गया होता।

## अथ गोपीचन्द जी को बैराग बोध लिषंते

### चौपई

ॐ वो नमो निरंजन देवा। अंजन रहत सु अलष अभेवा॥
कालकर्म नहीं लागै कोई। ताहि सुमरिब हो सदिगति होई॥१॥
सुमिरै जाकूं सेस महेसा। ब्रह्मा बिसन क जपै गणेसा॥
सारद नारद सब सिर नावै। रिधि सिधि मुकति ग्यांन पद पावै॥२॥
करै बंदगी धरणि अकासा। पाणी पवन हुकम के दासा॥
चंद सूर अग्या अनुसरै। सुर नर सीस चरननि धरै॥३॥
पीर पैकबंर सिध अर साध। निसि दिन करै ब्रह्म आराध॥
निज बंदा तहां ध्रू प्रहलादू। नाम कबीर जपै जन दादू॥४॥
जिन संतनि कै हरिपद पेम। तिन बंदू का बंदा षेम॥
आदि अंति संतनि सिर नाऊं। गुर रजब की गमी गुन गाँऊं॥५॥
भगवंत भगत तास जस कीजै। ऊभै समानि सुमरि सुष लीजै॥
कोट निन्याणवैसीजे राजा। भजै भगवंत सरै सब काजा॥६॥
तिनमें गोपीचन्द प्रसिधि। तिनको जस बरण्यूं द्यौ बुधि॥
अरज करूँ सब संतन आगै। गोपीचन्द कूँ वरण्यूं त्यागै॥७॥

### दोहा

आदि अंति सब संत मिलि देहू षेम कूं दान।
कहो कूंन बिधि उपज्यो गोपीचन्द कूँ ग्यान॥८॥

### चौपाई

गोड़ देस के गोड़ भुवाला। गढ़ धौलागर देश बंगाला॥
गंगाराम निरपति का नांव। गोपीचन्द पुत्र तिहि ठाँऊँ॥९॥

पिता पाटि गोपीचन्द राजै । सीस छत्र नृप धजा बिराजै ।।
अरक तेज तप गोपीचन्द । देस देस के नवै निरंद ।।१०।।
बडा नृपत सेवै ते पाव । लाषा कोड़न करे पसाव ।।
गज बाजन कह वार न पार । हीर कनंक नग भरे भँडार ।।११।।
बाजत न्यौबत गाजत व्यौम । थरकत अरनि धरनि परी स्यौम ।।
बहुगुन राग रंग सुष सागर । नौषंड गोपीचन्द उजागर ।।१२।।
सोलासै अरध्यंग्याँ नारी । बड भूमि निधी राज कुवांरी ।।
बारासै कन्या तिनि केरे । दासि षवास पासि बहूँ चेरी ।।१३।।
कनड़े पा इक जोध अनंत । दसूँ दसा घूमै मैमंत ।।
गढ़ घोलांगर तपै निरंद । कोड़ि कबीसर जस गोपीचन्द ।।१४।।

साषी

बालदसा षोडस बरस बहूँ तप तेज प्रकास ।
षेम नेम रवि उगवै किरिण कोट गुणन्नास ।।१५।।

चौपई

सुरग सुषासन नृपति बिराजै । आदि अंकूर प्रगट्यौ आजै ।।
ऐक समौ असो भयौ आई । तन मंजन बैठे नृप राई ।।१६।।
बसन उतारे तन का नूर । किलकिलांत मांनु प्रगट्यौ सूर ।।
सुंदर सोभत कंचन गाता । निरषत देषि बिसूरी माता ।।१७।।
माता मैणावतीं विसूँरा । असोऊँ तन ह्वैहै धूरा ।।
महल सतषणै बैठी माता । आँसू परे आई नृप गाता ।।१८।।
बादर मेह न तक्यूँ आकासा । निरषी माता मैहल आवासा ।।
राजा सोच्यो मनहि बिचारी । माता रुदन कौन दुष भारी ।।१९।।
घ्रिग मम राज सुष घ्रिग मेरो । मात सचिंत कहौ किह केरो ।।
करि मंजन नृप उठे सताब । लघु दीरघ पै बुझ्यौ जबाब ।।२०।।
नारी चेरी बूझे दासा । माता दुष पायौ कहिं पासा ।।
कर जोरे राजा सूँ कहै । ऐक अग्रमा आगे रहै ।।२१।।
लघु दीरघ बिनती यो करै । राज रजा सब सिर परि धरै ।।
महल गए निज गोपीचन्द । माता कै मनि भयो अनंद ।।२२।।
उत्तिम आनि बिछवणां कीनां । राजा बैठे आसण दीनां ।।
माता कहौ दुष जो दारन । नैन नीर आयो किहि कारण ।।२३।।
ताहि न कबहूँ देष्यूँ नैना । जिन माता कूँ कीयौ अचैना ।।
मम दुष को जहि पुत्र समरथ । माता नटै नृप मानें न कथ ।।२४।।

सुनि सुत साच मात प्रति बाचा । जल बुद बुदा आहि तन काचा ।।
कूँनि भाँति मनमैं दुष पायौ । नैन नीर जासूँ मा आयौ ।।२५।।
भोजन नीर भषूं तब माता । ज्यौ है त्यूँ बग हौ सति बाता ।।
कंचन बरन तरनपन एही । ह्वैहै सो सुत जल बल षेही ।।२६।।
सुंदर सौभित अति छवि गाता । बिनसत देषि बिसूरी माता ।।
जब सुत देह षेह ह्वै जाई । तब काकौ राज पाट बंध भाई ।।२७।।
हसतीं घोड़ा महल न माल । जब जीव आइ पहूँचै काल ।।
दास षवास सुंदरी सुलतानाँ । संगिन कौ सुत चलतैं प्रानाँ ।।२८।।
गाँव गढ़ सूपनैं ज्यूँ जाँही । जब या देहै मिलै धर माँही ।।
माता ग्याँन कह्यौ समुझाई । राजा सोचि रह्यौ सिर नाई ।।२९।।
फुनि राजा बोले सुनि माता । बिनस रतन सब रचे बिधाता ।।
क्यूं यौ रहै न बूझै राजा । डाव उपाव जांनि तन साजा ।।३०।।
जो तुम कहौ करौं मैं सोई । जिहि बिधि यहु तन असथिरि होई ।।
दांन पुंनि तुम कहो सू कीजै । सोना रूपा कपरा दीजै ।।३१।।
हाथी घोरा रतन भंडारा । षरचौ जौ तन रहै करारा ।।
तन समि माता तोलूं मोती । रहै जे देह षेह या होती ।।३२।।
तीरथ बरत जाप जिग करीयै । माता कहौ जहि भांति न मरीयै ।।
गोपीचन्द गिनावै माया । षरचे पुत्र न असथिर काया ।।३३।।

साषी

दान पुनि नीरथ बरत कटै न काल करम ।
षेम कहै मैणांवती धरि सुत ज़ोग धरम ।।३४।।

सबदी

राज तजबा रे पूता पाट तजबा तजिबा हसती घोड़ा ।
सत्ति सत्ति भाषत माता मैणावती कलि मैं जीवण थोड़ा ।।३५।।
सोला सै रांणी बारासै किन्यां बंगाला देस बड भोगी ।
बारावर्स मौने राज करण दे माता पीछैं होंगा जोगी ।।३६।।
आज आज करतां रे पूता काल्हि काल्हि करतां ।
काया झरै ज्यूं कलाल की भाठी ।।
सोव्रन रूप तुम्हारे पिता की काया होती ।
सौ भी जलि बलि भइ मंसाणा की माटी ।।३७।।

मरहूंगे मरजाहूंगे मसांणा होयगे छारं ।
कछू ऐक अमतत चीन्हौ हो राजा गोपीचन्द ज्यूं उतरो संसार को पारं ।।३८।।
सुषं राजं सुषं पाटं सुषं त्रिया सुषं मदरं ।
सुषं गज सुष बाजं क्यूं छूटत माता सुषं अस्थिरं ।।३९।।
राज न होसी रे पूता पाट न होसी ना होसी जल ब्यंद काया ।
सत्ति सति भाषंत माता मैणावती भरम न भूलो रे भाई ।।४०।।
राजा के घरि रांणी होती हम घर कहीऐ माई ।
सतषण कै चौबारै बैठी माता ऐ ग्यांन कहाथै लाई ।।४१।।
गरू हमारे गोरष बोलीऐ चरपट से गुरभाई ।
ऐक सबद गुर गोरष कह्यौ तेवौ लष्या मैणावती माई ।।४२।।
कूंण समाता हमकू भात परूसै कूंण पषालै पाई ।
काहा समै मेरै मैड़ी मिंदर कहा सु मैणावती आई ।।४३।।
अलष रे पूता तुमकूँ भात परूसै गंग पषालै पाई ।
रूष बिरष ते रै मैड़ी मंदिर घर घर मैणावती माई ।।४४।।
माता मै जोग न जाँणु जुगति न जाँणु नही भेटया सति गुर रायाँ ।
बाला राजा राजि बईठा कहि बिधि राषूं काया ।।४५।।
जोग जुगति कीरे पुता षवर बतासी करिलै सतिगुर सेवा ।
रहै अपर्छन कोई न समझै तुम ग्रिह जलंधरी देवा ।।४६।।

## चौपई

माता कह्यौ सिध पर कास । गोपीचन्द न समझै तास ।
दुरबल देही निर्मल गुण गति रहै । विण बूझे सिध ग्यांन न कहै ।।४७।।
मानि मुनेसुर सुमिरण गहे । आई बैसि राजा उठि गऐ ।।
बिना उपजि ग्यांन न भावै । त्रिषा बिना जल काहि पिलावै ।।४८।।
बालकु राजा समझै नांहीं । मोटी निधि आहि घर मांहि ।।
कामधेनी च्यंतामणि पाई । जाणौं नहि तौ निरफल जाई ।।४९।।
पारस है पणि पारष नांही । रहै नियादर घरही मांही ।।
समझि लेहु तो कारज सारै । बिन समझे हरि निकट न तारै ।।५०।।
इहि बिधि साध जुदा जगमाही । ज्यूं मणि सरप रहै इक ठांई ।।
जलचर कवल ऐक सर बासा । वो मल चषै वै अमी अभ्यासा ।।५१।।
ऐसै जन मन हर पद मांही । सठ चमदिष्टी समझै नांही ।।
जाणै दास बवेकी कोई । जाकै साध पारष्या होई ।।५२।।

पायगा रहै जलंधरी पाई । कौरे कणहि बीण करि षांई ।।
मैणावती पाक पहूंचावै । अमृत भोजन सिध न पावै ।।५३।।
हाजिर होइ ताहि ले दीजै । आत्म ज्ञान भेद नहीं कीजै ।।
चरवादार लोभ के लागे । तापस कौं दुष दीयौ अभागे ।।५४।।
दुष्टन दुष्टन मतौ बिचार्यौ । दीरघ षंदक ताहा ले डार्यौ ।।
लाद राष फूस दियो पूरि । सिध शरीर रह्यौ सो दूरि ।।५५।।
जीवन मृतग अटल धियानूं । सुष सागर मै भूलै प्रानूं ।।
कष्ट क्लेस न ब्यापै पीर । मारे मरै न सिध शरीर ।।५६।।
धरनि अगनि जल पवन अकासा । पांचो तत सिध के दासा ।।
बंदे कूंपीडां नहीं करें । अग्या हुकम मांहि अनुसरैं ।।५७।।
काल मीच जन सूं सब भागै । षडगधार विष त्रास न लागै ।।
अबनासी संगि षेले प्रान । देही रहै धरन असथांन ।।५८।।

साषी

षडगधार विष नां मरै गुण कोइ ब्यापै नांहि ।
रांम रहै त्यूं जन रहै काल जाल झल मांहि ।।५९।।
काल सजा दे जगति कूं साधू चढ़े न हाथि ।
षीवा अगनि न दहि सकै चंद षमू कै साथि ।।६०।।

चौपई

सिध जलंधरी ऐह बिधि रहै । जगत अग्यानी भेद न लहै।
बंइ सहरजाहां दषिणदेस । कन्हीपाव तहां सिध प्रवेस ।।६१।।
ताकै संगि चवदासै चेला । अरध प्रगट अरध गुपत षेला ।
बिद्र सहर कीनौ प्रमोदू । राजा प्रजा सिष सब बौदू ।।६२।।
जोजन दस नग्र बिसतारा । तामें और न ग्यांन बिचारा ।
लघु दीरघ सब सिष करि राषै । कन्हीपाव गुर जिण जिण भाषै ।।६३।।
सिध सिंघासन बैठे आई । राजा रहै षडी ऐक पाई ।
सगरी परगै होइ आधीना । सहर बंद सबही बस कीना ।।६४।।
फेरी सारै नंग्रह दुहाई । और अतीत न आवै भाई ।
चहुं दरवाजे गाढ करवावै । चाकर हूंकम तांहि समझावै ।।६५।।
कन्हीपाव सिध प्रछ्या करै । टांगे नाद कोट कांगुरे ।
जो या नाद साद बिन बजावै । सोई अतीत नग्र मै आवै ।।६६।।
चहूं दरवाजे बांधे नाद । कन्हीपाव षटदरसन बाद ।
केते दिन यूं भए बदीत । बैठि रहे चहुं दिसा अतीत ।।६७।।

कोइ अतीत न पावै भिछया । बंद्र सहर मझी सिध परिछ्या ।
घरि घरि सिध न सर सरहंस । तर तर सफल न गिर गिर अंस ॥६८॥

साषी

दादू चंदन के बन नहीं सूरन के दल नांहि ।
सकल समंद हीरा नहीं यूँ साधू जग माँहि ॥६९॥

चौपई

बहोतक दिन असी तहाँ भए । गोरषनाथ सहज ही गए ।
सूंदर सहर बाग एक भारी । सुफल ब्रिछ जल अंम्रत भारी ॥७०॥
अजब बाग में बैठे आई । भिछया कूँ सिष दीयो पठाई ।
सिष सहर दरवाजे गयो । उठि पोलीयो आडो भयो ॥७१॥
नाद पोरीऐ दीयो बताई । आगै पग अब देवौ बजाई ।
हाथ न पहूँचै नाद अतीत । सौचि बिचारि फिर चल्यौ अतीत ॥७२॥
जाइ अतीत कहौ सब भेव । पाषंड मड़चौ यहाँ गुर देव ।
कर ले पत्र चले सिधराव । देषैं इस नग्री कौ भाव ॥७३॥
गोरषनाथ पहूँते पोरि । छुरीदार आडे भए दोरि ।
हम अतीत अपूरब प्राँण । काहि न देह सर मै जाँण ॥७४॥
सोई अतीत सहर में जावै । बिन करि पहुँचे नाद बजावै ।
कछू एक बिलम पछावट कीनौ । गोरष हुकम नाद कूँ दीनौ ॥७५॥
नाद न साद सपत सुर लीना । आसन आऐ नाथ प्रबीना ।
बाजे च्यारौं नाँद अपारा । थरहर सहर भयौ झरि सारा ॥७६॥
गोरषनाथ कै दत्तात्रेये । धूधरमल कै ईसरये ।
राजा परजा चले बिचारि । कन्ही पाव कूँ ले दी दारि ॥७७॥
कन्हीपाव नीनौ आदेस । गोरष तरक बचन परवेस ।
घाली पुनि प्रोजन घात । असै गुर सिष भुगति न जात ॥७८॥
जो तुम ही असैं सिधराइ । तौ गुर गाडे काढौ किनि जाइ ।
गरु हमारे भंग न कौई । प्रिगरु तुमरौ नीकाँ जौई ॥७९॥
गुर घरबारी सिष अवधूत । भला बिगुता लंडी के पूत ।
चमक भए दहू चित न मिले । गोरषनाथ गुरू दिस चले ॥८०॥
सिंघलदीप भई यूँ साथि । बालक रूप कीयौ सिधनाथ ।
सिंघल देस मछंद्र भूप । तहा गोरषनाथ भवइ या रूप ॥८१॥
महा प्रवीन नाच अरु गावै । सैना सैन गरू समझावै ।
कै गरुजी कहौ कहा ए कीना । सब रस चोइ बाघनी लीना ॥८२॥

गावत कहत ग्यांन की गाथा । नाथ पिछाणें गोरषनाथा ।
गोरष जाइ चरन सिरिनायौ । बिबिध भाँति गरू समझायौ ॥८३॥
कस रस बहि गयौ रहि गई छोई । कहै मछंद्र जोग न होई ।
बाकस बहिगया रह गया सार । गोरष कहै गुरु जोग अपार ॥८४॥
मीननाथ सुत मारि जिवायौ । यूँ मछद्रराज पैड़ायौ ।
गुरगहि काढे गौरषनाथि । षोई बुसति चढ़ी पुनि हाथि ॥८५॥

साषी

धिन गोरष धिन ग्यांनमत गरू काढ़े करि भाव ।
कांनड तौ तांहा कूं चल्यौ जहाँ जलंदरी पाव ॥८६॥

चौपई

कनीपाव तहाँ दीना डेरा जाइ । धोलागर चहुँदिस घेरा ।
तहाँ मैणावती माई सुधिपाई । बैठे सुषासन दरसन आई ॥८७॥
बिबिध भाँति ले पूजा धरी । कन्हीपाब कबूल न करी ।
हम तुम माता ऐही सेठ । गुर दरसन करिले रे सुभेट ॥८८॥
माता अरजि करि माथौ नायौ । गोपीचन्द ले पाइ लगायौ ।
कन्हीपाव सिध पूरयौ नाद । धरम ही दियौ जलंद्री प्रसाद ॥८९॥
सिष चवदेसे नाद बजावै । केई प्रगट केई गुपत सुनावै ।
आनंद भयौ प्रतंग्या पूरी । षोदै धर न गुरु होन हजूरी ॥९०॥
षोदा धरणि चरण जांहां लागा । बैठे गुर तहाँ सुन्दर बागा ।
फूल सुगंध भवंर गुंजारा । फुल जल सकल अकल अहारा ॥९१॥
करी अरज गुर बार पधारन । पावैं दर्शन सकल संसारन ।
रुके फौल सुषासन साजे । करे जतन गुरु आन बिराजे ॥९२॥
जै जै कार सकल जुग कहै । बारा बरसि धरनि ग्रभ रहै ।
जैसे कनक न लागै काई । दिपत देह नग काट न षाई ॥९३॥
दरस देषि सब भयौ अनंदू । सोचै माता गोपीचंदू ।
किहि बिधि सरन चरन गहि लीजै । कनीपाव कहै सो कीजै ॥९४॥
सपत धात के पुतला सात । सूंदर दूध क सवारे गात ।
कन्हीपाव वीनती गुदरावै । राजा कहै पुतला सिर नावै ॥९५॥
सातौं पुतले सातें वार । कहर निजर सूं कीने चार ।
बार आठई राजा आयौ । कन्हीपाव गरू सिर नायौ ॥९६॥
मेरे षाली किए सराप । परले कन्हीपाव तिहि पाय ।
गुरु सौं कपट जगत सूं सांच । तो पंथ निरफल सिष की बाच ॥९७॥

साषी

षेम बड़ की बात कूं लोप्या भला न होइ ।
कन्हीपाव कै ग्रासंरै जलंध्री करी सजोइ ।।६८।।

कन्हीपाव के कपट ही रूठौ । जाहि जलंधी राज ही नूठौ ।
ग्रबगति की गति लषै न केही । काहू कौ ले काहू देही ।।६६।।

साषी

कबीर एक षडा ही नाल है एक षडा बललाइ ।
साँई मेरा सुलषना एक सूतां देह जगाइ ।।१००।।

चौपई

कहर नजरि कन्हीपाव जरे । तब राजा गोपीचंदड रे ।
ज्यूं डरि कीट भ्रंग होइ जाई । यूं 'सिध देषि पलटचो मनराई ।।१०१।।
मरषा रस प्राण जब भेंटचो पाह । कंचन भयो लोह मत मेटचो ।
भूल्यौ सकल भयौ भैभीत । हरता करता लषै ग्रतीत ।।१०२।।

साषी

कबीर भला भई जो मै पड़चा गई दसा सब भूलि ।
पाला गलि पाँणी भया ढूलि मिल्या उसकूल ।।१०३।।
भै भीत बिना मूल्यौ नहीं देह बदेह न होइ ।
जन रजब दिष्टांत कौ कीट भ्रंग लै जोइ ।।१०४।।

चौपई

सकल चिरत गोपीचन्द देष । तन धन राजट पाटिद्रिग लेषे ।
ध्रिग ये हरि बिन भोग विलास । राजा कौ मन भयौ उदास ।।१०५।।
माता बहोत भाँति समझावे । ऐसो संग नहीं सुत पावे ।
माता कही सुलागी मनि । सिध सरनो गहै चाले बनि ।।१०६।।

साखी

नारी माता पुरुष की पुरुष नारि का पूत ।
दादू ग्यान बिचारि करि छाँड़ि चले ग्रौधूत ।।१०७।।

चौपई

त्यागे राज पाट गढ़ देस । महल त्रीया तजि चले नरेस ।
हैवर गैवर विविध भंडार । तजे प्रगरह लष प्रवार ।।१०८।।
दल बल जोध षड़े सब त्यागे । गोपीचन्द जोग मनि लागे ।
तन सुष तजन भजन ग्रनौंरागी । त्रिया सिज्या तजि पट् पागी ।।१०६।।

कनक थाल तजि लीनौ षप्पर । कंथा पहरी छाँड़ि पटंबर ।
षड़ग त्यागि करि लीनौ दंड । छत्र छाहं तजि तरु सिर मंड ।।११०।।
महल तजे गिर सिषर निवास । भिष्या भोजन परम बिलास ।
चौवा चंनन षौर तजि अंगि । भूषण भसम बिराजै संगि ।।१११।।
सौलासै सुन्दर मंत्राणी । रोवत छांड़ी सब पटरानी ।
के रोवै षड़ी षड़ी सौवंती । के रोवै गौषा जौवंती ।।११२।।
के रो ै कंकण सिर फोड़े । के रोवत हार मौर सब तोड़ै ।
के हा रोवत चीर धरंछला कीना । के हा रोवत देह सिझादीना ।।११३।।
के रोवत केस बिलूरै । कर सिर कूटैं रानी झूरैं ।
भूषन कनक हीर नग तोड़े । के भीत्याँ सूं माथा फोड़े ।।११४।।
यूं छाड़ी सोलासै बिललंती । बारा सै कन्या कलपंती ।
राजा सब सूं तोड़्यौ मोह । कोई हसौ कोइ करौ अदोह ।।११५।।
कोई नहीं जीव कौ साथी । नारी चेरी हैवर हाथी ।
काया छाड़ि हंस जब जासी । गाँव देस गढ़ संग न आसी ।।११६।।
स्वारथ मीत मिले सब कोई । अकरम करम जीव संगि होई ।
संगी एक जु सिरजन हारा । राजा पकर्यौ ग्यान विचारा ।।११७।।
ग्यान पकरि कै पायौ जोग । नर नारी विलषै सब लोग ।
जीव जाति तन मिरतग होई । राजा चलत भई गति जोई ।।११८।।
गाँव देस गढ़ अंधियार । रुदन करैं न सूझै सार ।
पवण छतीसूं धाहा देही । भोजन नीर न बसतर लेही ।।११९।।
घर घर सोग भयौ अति भारी । माता पिता न त्रिया पियारी ।
सबहीको मन भयौ उदास । जाइ बैठे राजा के पास ।।१२०।।

साषी

राम भजन माया तजन महा पुरषि संगि होइ ।
भोग बिनाँ क्यूं पाइए षेम कहै सब कोइ ।।१२१।।
जे ते जूझन की कहै तेते सबै नसूर ।
षेम षेत बिरले रहै जब बाजै रिन तूर ।।१२२।।
साथि सती के नीकल षेम सहर के लोइ ।
देषि तमासा फिरि चल रहे सतीबर दोइ ।।१२३।।
देषा देषी सब चले पार न पहूंच्या जाइ ।
दादू आसण पहल कै फिरि फिरि बैठें आइ ।।१२४।।

### चौपई

राजा रह्यो रोपि पग आछै । सगरे लोग बाहुरे पाछै ।
रहे जलंधरि गोपीचंद । ध्यान समाधि भजै गोबिंद ।।१२५।।
सैल गुफा बन दीरघ दारन । तंहां सूंदरि चली कंथ कै कारन ।
सौलासै चाली ऐक साथि । जोग करो घरि आवौ नाथ ।।१२६।।
सुंदरि बोलै करनां बैन । गोपीचंद न चितवै नैन ।
अगर चंदन केरी मढ़ी बंधाऊं । कंचन की डीबी करवाउं ।।१२७।।
मढी हमारा गिगन सथांना । भिष्या गुर दीया पद निरबांना ।
सहज हमारै मनस्या डीबी । राजकाज नहीं भया गरीबी ।।१२८।।
सुंदरि बिना सुष नहीं पावौ । बाहुड़ि राज सिंघासन आवौ ।
कै सौलासै कौ लै असराप । त्रिया तजै बहु लागै पाप ।।१२९।।
सुंदरि सपत लीनी संगि । राजसिंघासन जोग अभंग ।
मजारि जे देह सरापा । मूसा भाजि गया नहीं पाप ।।१३०।।
हमहू जोग लहै तप साथि । गरै गूदरी षप्पर हाथि ।
झोरी डंड भस्म लगावैं । रानी कहै राजा संगि आवैं ।।१३१।।
घ्रित अगनि संग होइ न जमाव । करो जोग महल मैं जाव ।
पिछली मत सब धरो उतारी । अब हम पुत्र तुमै महतारी ।।१३२।।
तब मुरछि मुरछि धर परी अचेत । राजा जोग ध्यानसूं हेत ।
भयो अदोह मोह कर भूरी । सोलासै देषाह बिसूरी ।।१३३।।*

---

* इसी रचना की एक अन्य प्रति में यहीं पर ग्रंथ समाप्त हो गया है ।

### । दोहा ।

ध्यान धार असथिर भए गोपीचन्द बन मांहि ।
रानी सब घर कूं चली मोह सोग मन माहि ।। १३४
अहै निस आठु जांम में रहे ब्रह्म लिवलीन ।
गोपीचन्द गुर ग्यांन सं लीयो परम पद चीन ।। १३५
काम क्रोध व्यापै नहीं ना कुछ हरष रन सोग ।
ज्ञान भगत वैराग ले पायो पूरण जोग ।। १३६

### श्लोको

वकता हरनं पापं सुरता मोष लभ्यते ।
सुरता वकता न जानामी त्रिथा तस्य जीवनं ।
इति श्री गोपीचन्द बोध ग्रंथ संपूरण ।।

बऊड़ीनै बाऊड़ी गोपी चंदराजा बाऊड़ि धोलागर आवोजी ।
पंछ्यानै भोजन मन चित राजा भावभगति सूं पावोजी ।।१३४।।
म्हारै मनि राज न भावै रानी पालष नीद न आवै जी ।
जोग जुगत नौ राज हमारै अब चल कंधू थावैजी ।।१३५।।
अगर चंदन नी मढी बंधाऊं सौना नासी नादौ जी ।
कहौ तौ रूपा नौ पत्र घटाऊं रतन जड़ाऊं तूंबा जी ।।१३६।।
गगन मडल में मढी हमारी चंद सूर ना तूबा जी ।
महल सीलना पत्र हमारै अनहद नीसीगीनादो जी ।।१३७।।
कूर कपूर तम जी मते हो राजाजी भगरडी किम भासी जी ।
ऊपर पांनां नीबी आरोगता बेली ना पांन किम षास्यौ जी ।।१३८।।
कूर कपूर मेरे सास उसासा कुरकट अमृत थालोजी ।
ग्यांन ध्यांन ना पान हमारै सुबधिष्राया पालो जी ।।१३९।।
सोड़ि उलाई उम्हें पोढते हो राजा साथरड़ै किम थास्यौ जी ।।१४०।।
साथर सौस्यनिषा परषास्यां ईट उसीसै देसांजी ।
सोड़ि उलाई मांरै सतगुर बानी भौमी सज्या करस्यां जी ।।१४१।।
कूंण तुमारा चरण पषालै कूंण परूसै भातौजी ।
कूण तमारी सेज पथरसी कूंण करै तब बातौजी ।।१४२।।
गंग हमारा पांव पषालै मनसा करत तब बातौ जी ।
कंथा हमारी सेज परसी अलष परूसै भातौजी ।।१४३
सोलासै रांणी बारासै किन्यां तांह नौनि सासड़ो पड़ज्यौजी ।
जिण मारा राजानौ राज छुडायौ सो जौगी मर जाज्यौजी ।।१४४।।
जलंध्री प्रसादे राजा गोपीचन्द बोल्या म्हारा गुरदैग्यल न दीज्यौ जी ।
सतगुरु मांरा म सतग उपरिथे और भलेरा की ज्यौ जी ।।१४५।।

## चौपई

राजा रांनी उतर दीनौ । तब सतगुरु अपनौ करिलीनौ ।
जोग जुगति दाषे सिध ग्यांन । पायौ राजा पद निरबांन ।।१४६।।
सिधां सकल वषाणूं सिध । राजा गोपीचंद प्रसिध ।
प्रम भजन उपज्यौ दिढ भाव । राष्यौ नांव सिधारी पाव ।।१४७।।
छाडि जंजाल काल तै छूटे । ध्यान समादि इम्रत रस घूंटें ।
अजर अमर सिध गोपीचंद । जावत प्रथी तावतकंध ।।१४८।।
जावत चंद सूर कौ तेज । तावत धरन गिगन बंधेज ।
जावत मेर मंडल कवलास । तावत गोपीचंद प्रकास ।।१४९।।

अबनासी संगि षेलैं प्राँन। का लमी च काल गैन बाँन।
गुर प्रसाद अमर पद भया। गोपीचंद षेम जस कह्या ॥१५०॥
लघुमति लघु बुधि ग्यांन लघु दीरघ सिध प्रकास।
षेम कहै करि जोड़ि कछु दास भावले दास ॥१५१॥
कहै पुत्र जलपांन कूं नाँव और को और।
षेम मातपिव समझिलै नहीं दोष की ठौरि ॥१५२॥

इति श्री भग्त जोग नाम प्रताप गोपीचंद को बैराग बोध संपूर्ण समाप्त। राम राम, राम

डॉ० सत्येन्द्र

# आधुनिक हिन्दी साहित्य (सं० १६०० से) पर अनुसंधान[1]

सामान्यत: यह विश्वास किया जाता है कि अनुसंधान या गवेषणा आधुनिक-पूर्व के युग से संबंधित विषयों पर ही हो सकती है। किन्तु आज इस विश्वास के भ्रान्त होने में किसी को संदेह नहीं होगा। ज्ञान-विज्ञान में आधुनिक युग के विषयों पर ही अन्वेषण-अनुसंधान होता है। जिन विषयों का अपनी निजी प्रकृति के कारण विगत युगों से ही संबंध होता है, वे भी अब आधुनिक युग को महत्व देने लगे हैं। उदाहरणार्थ 'इतिहास' मूलत: 'विगत' का ही होता है, पर अब तो वर्तमान काल में निर्माण संलग्न ऐतिहासिक शक्तियों का अनुसंधान करना भी महत्वपूर्ण कार्य माना जाता है। साहित्य में भी पहले ज्यादा आकर्षण प्राचीन और मध्ययुगीन साहित्य की ओर रहा। विद्वान और अनुसंधाता इन्हीं युगों के अंधेरे गह्वरों में प्रकाश लेकर पहुँचे और उनको प्रोद्भासित करने का यशस्वी प्रयत्न किया।

---

१, सबसे पहले मैं दिल्ली विश्वविद्यालय को ऐसे महत्वपूर्ण आयोजन के लिए बधाई देना चाहता हूँ। दिल्ली विश्वविद्यालय के हिन्दी विभाग के अध्यक्ष डा० नगेन्द्र एक कदम आगे रहने के लिए उद्यत रहते हैं, यह गोष्ठी इसका प्रमाण है। यह इसलिए कि यदि इसी सत्र में डा० नगेन्द्र ने यह गोष्ठी न आयोजित की होती तो ऐसी प्रथम गोष्ठी करने का श्रेय आगरा विश्वविद्यालय को मिलता। आगरा विश्वविद्यालय के हिन्दी-विद्यापीठ ने ऐसी गोष्ठी के प्रारम्भिक उपक्रम की दृष्टि से एक विदग्ध गोष्ठी अपने ही अनुसंधाताओं और विद्वानों की इसी वर्ष अक्टूबर में की थी, और उसकी समस्त कार्यवाही भाषणादि हमारे भारतीय साहित्य के नवीनतम अंक में प्रकाशित हुई है। (यह अब 'अनुसंधान के सिद्धान्त' नाम से पुस्तक रूप में भी आगरा विश्वविद्यालय से प्राप्य है)। उक्त गोष्ठी की सफलता के उपरान्त हम एक वृहद् गोष्ठी की योजना को कार्यान्वित करने की तैयारी कर रहे थे कि दिल्ली विश्वविद्यालय का यह आयोजन हो उठा। इसके लिए सभी हिन्दी-अनुसंधाता और विद्वान् दिल्ली विश्वविद्यालय के प्रति अपनी कृतज्ञता प्रकट करेंगे।

किन्तु ऐसे महत्वपूर्ण आयोजन में मुझ जैसे अयोग्य व्यक्ति को भी जो एक व्याख्यान देने के लिए आमंत्रित किया है इसके लिए मैं उन्हें धन्यवाद नहीं दे सकता। मैंने भी अपनी मूर्खतावश इस निमंत्रण को स्वीकार कर लिया। वास्तविक बात यह है कि डा० नगेन्द्र की इच्छा की परिपालना मैं अपना धर्म ही समझता हूँ। अत: मैं विद्वानों और अनुसंधाताओं से विनम्रतापूर्वक आग्रह करूँगा कि मेरे वक्तव्य को वे सुनें और अपनी महती उदारता का मुझे पात्र समझें।

किन्तु शीघ्र ही आधुनिक युग पर भी दृष्टि गयी। इस दृष्टि ने भी अपनी पहली परंपरानुसार आधुनिक युग के ऐतिहासिक विषयों को अनुसंधान के लिए चुना। आधुनिक युग तो हिन्दी में 'भारतेन्दु हरिश्चन्द्र' से माना जाता है। इसके अनुसार संवत् १६०० के लगभग से आधुनिक युग चला। तब से आज तक एक शताब्दी से कुछ अधिक का युग बीत चुका है। अतः बिल्कुल आज के पूर्व के समय से संबंधित विषय आधुनिक युग के ऐतिहासिक माने जायेंगे। इसी धारणा ने एक डेढ़ शताब्दी पूर्व तक किसी भी जीवित कवि या लेखक का अनुसंधान का विषय नहीं बनने दिया था। विश्वविद्यालयों के तत्कालीन अध्यक्ष तथा अनुसंधान समिति के सदस्य ऐसे विषयों को बड़ी रुखाई से रद्दी की टोकरी में डाल देते थे। द्विवेदी जी से पूर्व के किसी विषय पर अनुसंधान करने की आज्ञा देने में तो इन्हें अब प्रसन्नता होने लगी थी।

यह हिन्दी अनुसंधान क्षेत्र की द्वितीय स्थिति थी। यह स्थिति भी बदली। विश्वविद्यालय के क्षेत्र में अब यह कहा जाने लगा कि यदि किसी वर्तमान कवि या लेखक का व्यक्तित्व इतना प्रौढ़ हो गया है कि वह ऐतिहासिक महत्व पा सकता है तो उस पर अनुसंधान क्यों न करने दिया जाय? इस प्रकार आधुनिक युग की प्रवृत्तियों को भी अनुसंधान योग्य माना जाने लगा। इस प्रकार हिन्दी अनुसंधान के तृतीय विकास में जीवित कवियों और अधुनातन प्रवृत्तियों को भी अनुसंधान योग्य माना जाने लगा है। फिर भी इस संबंध में कुछ हिचक विद्यमान अवश्य है, और एक सीमा तक ऐसी हिचक रहना समीचीन भी है।

इन तीनों स्थितियों में होने वाले अनुसंधान कार्य का परिणाम भी कम नहीं है। मैंने १५६ साहित्य विषयक अनुसंधानों की सूची बनायी है। उसमें से मैंने देखा कि ८७ पर उपाधियाँ मिल चुकी हैं, और ७२ पर प्रबन्ध-विषय अनुसंधानाधीन हैं। इन अनुसंधानाधीन विषयों में से भी कुछ पर प्रबन्ध तैयार हो चुके होंगे और वे विश्वविद्यालयों में निर्णयार्थ पहुँचे हुए होंगे।

जिन ८७ विषयों पर उपाधियाँ मिल चुकी हैं उनका एक वर्गीकरण इस प्रकार किया जा सकता है।

आधुनिक-साहित्य पर प्राप्त उपाधियों का विषय-विभाजन :—

सं० १६०० से

| साहित्य सामान्य | व्यक्ति | काव्य | गद्य सामान्य | उपन्यास | नाटक | कहानी |
|---|---|---|---|---|---|---|
| १४ | ४ | २२ | १ | ३ | ६ | २ |
| निबन्ध | जीवनी | गद्यकाव्य | आलोचना | समाचार पत्र | काव्यशास्त्र, अलंकार पिंगल आदि | कुल योग |
| १ | १ | २ | ५ | १ | १ | ६६ |

## अनुसंधानाधीन आधुनिक साहित्य

| | | | | | | | | | |
|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|
| ५ | ७ | २५ | २ | १५ | ५ | | | | २, |
| | | | | | | | | कुल योग | ६१ |
| | | | | | | | | सम्पूर्ण योग | १२७ |

एक बात ध्यान में रखने के योग्य है कि यह संख्या आज तक की पूरी संख्या नहीं है, क्योंकि अभी तक ऐसा कोई साधन हिन्दी-क्षेत्र में प्रस्तुत नहीं हुआ जिससे इनकी ठीक-ठीक संख्या जानी जा सके। यह खेद की ही बात है। इस संबंध में डा० उदयभानुसिंह जी का उद्योग सभी को प्रशंसनीय लगेगा। उन्होंने कितनी परेशानी उठाकर एक उपयोगी सूची प्रस्तुत की और उसे प्रकाशित भी कराया। 'हिन्दी अनुशीलन' ने भी इस दिशा में कुछ उद्योग किया था पर वह भी सफल नहीं हो सका। विषयान्तर करते हुए मुझे क्षमा किया जाय तो मैं कहूँगा कि हिन्दी का क्षेत्र बहुत विशाल है और होता जा रहा है। इसमें कितने ही विश्वविद्यालय हैं जिनमें हिन्दी का अनुसंधान कार्य हो रहा है। जब तक उन समस्त विश्वविद्यालयों के हिन्दी-विभागों की एक ऐसी केन्द्रीय समिति गठित नहीं हो जाती जो प्रत्येक विश्वविद्यालय के स्वीकृत विषयों को नियमित रूप से प्रतिमाह एक पत्रक के रूप में प्रकाशित करती रहे, तब तक यह समस्या हल नहीं हो सकती। विश्वविद्यालयों का भी सहयोग इस समिति को मिलना चाहिए। प्रत्येक विश्वविद्यालय हर बार अपने यहाँ के स्वीकृत विषयों की विधिवत एक सूची प्रस्तुत करता है ऐकेडेमिक या ऐक्जीक्यूटिव काउंसिल में प्रेषित करने के लिए। उसी सूची की एक प्रति इस केन्द्रीय संस्थान को भेज दी जाया करे, जिससे केन्द्रीय संस्थान अपनी सूची बना कर नियमित रुप से प्रकाशित करता रहे। तो कहना यह है कि उक्त संख्या पर निर्भर नहीं किया जा सकता, पर उक्त संख्या में जो विभाजन है, उससे जो ज्ञान उपलब्ध होता है, वह बहुत कुछ विश्वसनीय ही होगा।

स्वीकृत शोध-प्रबंधों की उक्त तालिका से यह विदित होता है कि सबसे अधिक महत्व काव्य का रहा। दूसरा स्थान सामान्य साहित्य का है, तीसरा स्थान नाटकों को मिलता है। उसके बाद आलोचना को, फिर व्यक्तिपरक विषयों को। इसके बाद ही उपन्यास आते हैं। कहानी और गद्यकाव्य का मूल्य समान रहा है। इसके उपरान्त सामान्य गद्य, निबन्ध,जीवनी, समाचार-पत्र, शास्त्र, पिंगल आदि पर एक-एक प्रबन्ध प्रस्तुत किये गये।

अनुसंधानाधीन विषयों पर दृष्टिपात करने से विदित होता है कि इस महत्व-क्रम में परिवर्तन उपस्थित हुआ है। काव्य ने अपना स्थान अक्षुण्ण रक्खा है। वह अब भी प्रथम स्थानीय है। सबसे अधिक संख्या में कार्य इसी पर हो रहा है। किन्तु दूसरा स्थान अब उपन्यास का हो गया है। तीसरा स्थान व्यक्तिपरक विषयों का है। चौथा महत्व सामान्य साहित्य और नाटक को समानरूपेण मिला है। सामान्य गद्य तथा आलोचना विषय भी समान मूल्य का महत्व रखते हैं, पाँचवे स्थान पर। शेष पर इधर कोई काम नहीं हो रहा है।

ऊपर जो विविध शीर्षक विविध विभागों के दिये गये हैं, उनमें भी विषयों में प्रकारान्तर है जिन्हें इन वृक्षों से समझा जा सकता है : पुष्पांकित अंक अनुसंधानाधीन विषयों के हैं ये अंक हमने अपनी सूची से दिये हैं। (संख्याएँ अनुसंधित विषयों की हैं और वृत्तान्तर्गत संख्याएँ अनुसंधानाधीन विषयों की।)

**काव्य**

- काव्य विशेष — ५३, ६१*
- पृष्ठभूमि
  - युग — २७*
  - धारा — ४४*
- प्रवृत्ति
  - मानवतावाद — ३६*
  - यथार्थवाद — ३६*
  - स्वच्छंदतावाद — ५६*
  - प्रतीक — २, ४४*
  - नित्यवाद — २८
  - कल्पना — ७८
  - निराशावाद — ५४
  - छायावाद — २६*
  - रहस्यवाद — १३
  - नारी — १५, २२*
  - धार्मिकचेतना — ५७*
  - सूफी — २६
  - रस — ५६
  - वर्गकाव्य — १३*
  - प्रौढ़सौंदर्य — ५५
- तुलनात्मक — १५, ६*, २०*
  - शास्त्र — ८*
  - कला-विधान — २३*
  - अलंकार — २४*
- सर्वेक्षण
  - धारा — १८, ३६*, ४५*
  - रूपक — २०, ३३*
  - छंद — ६५
  - युग — ७१
- रूप विशेष
  - प्रयोग — २६*
  - गीतकाव्य — १६ अ
  - खंडकाव्य — १२*
  - महाकाव्य — २१, ३५, ६६, २२*, ६३, १६*
- भाषा — ४१, ५८*
- कवि विशेष — ३१*, ३४, ४७, ७४, ७६, ७८

काव्य का अनुसंधान-चन्द्र अपनी पूरी सोलह कलाओं से देदीप्यमान हो रहा है ।

**सामान्य साहित्य**

- सर्वेक्षण — ७, ८, १६, ४७, २७*
- पृष्ठ भूमि — ३-१२, ५०*, ५३*
- वातावरण — ८०
- प्रभावत तथा तुलना — १६, ६४, २५*
- प्रवृत्ति
  - नारी — ३४, १६*
  - मानदंड — ३५
  - रस — ५७
  - प्रतीक — ६७
  - अलंकार — ४२
  - गांधीवाद — ६१, २५*
- व्यक्ति विशेष — ६७, ६८, ८१, ८६

नाटकों के अध्ययन का वर्गीकरण यों किया जा सकता है।

**नाटक**

- प्रभाव
- एक नाटककार के नाटक
  - शास्त्रादि अध्ययन
  - सर्वेक्षण
- सर्वेक्षणात्मक
  - इतिहास ४०, ८४
    - वृत्त ४०
    - उद्गम विकास ८५, ९९, ३*
  - युगविषयक ६९, १०३, ६७*
  - अवयव
    - एकांकी १०८, ८०*
- प्रवृत्ति
  - नारी ८४*
- शास्त्र ६१*

**उपन्यास**

- व्यक्ति
  - समस्या ७६, १०९
  - प्रवृत्ति ग्राम जीवन ८१*
  - तत्वपरक ४८, ७७
- प्रवृत्ति ९
  - युगविशेष में ९*, ३४*, ७२*, ७३*
  - नारी १४*
  - ऐतिहासिक
- शास्त्र १७*
  - अध्ययन
  - कथानक
  - नायक नायिका ६५*
- तुलना ४७*, ६०*, ६३*, ९२*, ९३*

**आलोचना**

- प्रभाव २४, ३१*
- प्रवृत्तियाँ ३०*
- इतिहास ४४, ७१
- व्यक्ति १०५
- युग विशेष ३७*

इन वृक्षों के देखने से यह सामान्यतः विदित हो जाता है कि:—

१, काव्य पर सबसे अधिक अध्ययन और शोध हुई है, और उसमें क्षेत्र और दृष्टि में कितना ही प्रकारान्तर प्रस्तुत हुआ है।

२, काव्य का यह अध्ययन तथ्य तथा तत्व दोनों दृष्टियों से हुआ है। इस अध्ययन और अनुसंधान में क्षेत्र को सीमित बनाकर गहराबी में उतरने की पूरी चेष्टा की गयी प्रतीत होती है।

३, काव्य या कविता के अतिरिक्त अन्य विषय-विभागों में न तो उतनी प्रकारान्तरता विदित होती है न उतनी गहरी पैठ ही।

इसी के साथ प्रस्तुत सूची पर दृष्टि डालने से विदित होता है कि निम्न लिखित विषयों पर दुहरा-तिहरा काम हो रहा है:—

४, १, महाकाव्य—३, ३२, ४६, ८३, ८३, ९३, २२, ४१, ७६ नायक, नारी, नाट्य तत्व, परम्परा, कामायनी।

२, नारी—१५, ३४, १४, १९, २२, ८४

३, हिन्दी साहित्य में आलोचना का उद्भव व विकास ४४, ७१

४, गद्यकाव्य, ३९, ५२

५, नाटक साहित्य : इतिहास ४०, ८२, ९९, ३

४ अ—जिन विषयों पर दुहरा-तिहरा काम यहाँ दिखाया गया है उनमें से कुछ काम तो किसी वैशिष्ट्य से युक्त करके किये जा रहे हैं पर कुछ ऐसे अवश्य हैं कि विषय-क्षेत्र की दृष्टि से बिल्कुल एक से हैं। अनुसंधानताओं की अपनी प्रतिभा और व्यक्तित्व से ही उनमें देने का अन्तर बैठेगा।

५, आधुनिक युग के काव्य ग्रन्थों में केवल कामायनी ही विशेष अनुसंधान और अध्ययन का पात्र समझी गयी है।

६, ऊपर जिन विशेष कवियों और लेखकों के दोहरे-तिहरे अध्ययन का उल्लेख हुआ है उनमें प्रेमचन्द, मैथिलीशरण, वृन्दावनलाल वर्मा, प्रसाद तथा द्विवेदी जी तथा शुक्लजी के अतिरिक्त जिन अन्य कवियों तथा लेखकों का व्यक्ति परक अनुसंधान किया गया था या किया जा रहा है, वे हैं १, बालमुकुन्द गुप्त २, बालकृष्ण भट्ट ३, किशोरीलाल गोस्वामी, ४, अयोध्या सिंह उपाध्याय, ५, रत्नाकर, ६, पं० श्रीधर पाठक, ७, भारतेंदु

७, भारतेन्दुयुगीन नाटक साहित्य ९६, १०३

८, कामायनी, ७३, ७६

९, मैथिलीशरण गुप्त १०४, १००

१०, वृन्दावनलाल वर्मा १०९, ६२, ९२

११, शुक्ल, ६६, १०१, १८

१२, प्रसाद २८, १०२, ५, ६०

१३, द्विवेदी ३८, ८६

१४, गान्धीवाद ६१, २५

इस विवरण से यह स्पष्ट हो जाता है कि किस क्षेत्र में हिन्दी अनुसंधान की प्रवृत्ति विशेष मनोयोग से हुई है ? किस क्षेत्र में विशेष गहराई और व्यापकता आयी है ? किस क्षेत्र में मात्र सर्वेक्षण अथवा सामान्य इतिवृत्ति प्रस्तुत किये गये हैं ? कौन से काव्य विशेष अध्ययन के पात्र समझे गये हैं ? इस प्रकार के अध्ययन से यह भी स्वयमेव झलक उठता है कि हिन्दी के आधुनिक युग की इस शताब्दी में ऐसे क्या क्या विषय हैं जो छूटे हुए हैं ।

आधुनिक हिन्दी साहित्य के अनुसंधान से प्राप्त प्रबन्धों पर दृष्टिपात करने से कोई भी व्यक्ति गर्व अनुभव कर सकेगा । क्योंकि इन अनुसंधानों में यह स्वस्थ प्रवृत्ति प्रबल है कि उन क्षेत्रों से भी सामग्री प्राप्त की जाय जो अब तक नितान्त अछूते रहे हैं । यद्यपि सामान्यत: यह विश्वास किया जाता है कि आधुनिक युग से संबंधित विषय प्राय: वे ही व्यक्ति लेना स्वीकार करते हैं जो अनुसंधान की अपेक्षा डिग्री को महत्व देते हैं और यह समझते हैं कि आधुनिक युग पर अनुसंधान बहुत आसानी से हो सकता है । पर जो लोग ऐसा समझते हैं वे निश्चय ही भ्रम में हैं । प्रत्येक युग का अनुसंधान अपनी निजी कठिनाइयाँ प्रस्तुत करता है । किसी भी युग का अनुसंधान सरल कार्य नहीं । आधुनिक युग के कृतित्व के सूत्र इतने जटिल और विस्तृत होते हैं कि उन्हें सुलझाना और एकत्र करना सरल कार्य नहीं होता । यह बात आधुनिक युग विषयक अनुसंधान के किसी भी प्रबन्ध को देखकर समझी जा सकती है । इन प्रबन्धों के आधार पर यदि अनुसंधाताओं की यात्राओं और संपर्कों का भूगोल प्रस्तुत किया जाय तो विदित होगा कि उत्तरी भारत का कोना-कोना उन्हें छानना पड़ा है । विविध पुस्तकालयों की बात छोड़िये । सरकारी सुरक्षित फाइलें, प्राचीन से प्राचीन हस्तलेख तथा समाचार-पत्रादि जो कहीं कूड़े के ढेर में पड़े थे, गाँवों की झोंपड़ियों में या नगरों के मकानों में बस्तों में बंधे दीमक के शिकार होते हुए पत्र-चिट्ठियाँ आदि या ग्रन्थों की पांडुलिपियाँ : कवि या लेखक के नाते-रिश्तेदारों से प्राप्त मौखिक विवरण सभी से विविध तन्तु एकत्र कर अनुसंधाता ने अपने प्रबन्ध में अनुसंधेय का एक नया अनोखा रूप प्रस्तुत किया है : अपनी सीमाओं से विवश रहते हुए भी उसने उसे अपनी शक्ति भर परिपूर्णता प्रदान करने की चेष्टा की है । तब तक का साहित्य का इतिहासकार या कवि का जीवन-वृत्त प्रस्तुत करने वाला यहाँ-वहाँ से उठाकर जो एक ऊपरी विवरण, चित्र और अध्ययन प्रस्तुत करता था, इन रिसर्च प्रबन्धों ने उनके खोखले भागों और गर्त्तों को ठोस सामग्री और कड़ियों से जोड़कर परिपूर्णता प्रदान की है । यह उपलब्धि किसी साहित्य को गौरव प्रदान कर सकती है । यह सच है कि ीं कहीं प्रमाद अथवा व्यग्रता आपको खटकेगी, कहीं सतही चर्चा से भी आप ऊब

सकते हैं पर समस्त परिमाण को आप दृष्टि में रक्खें तो ऐसे स्थल नगण्य ही प्रतीत होंगे। यह भी ठीक है कि इन अनुसंधानों के द्वारा जो सामग्री प्रकाश में आयी है, और अधिक अनुसंधान से इससे भी अधिक सामग्री प्रकाश में आ सकती थी; पर इससे जो सामग्री प्रकाश में आयी है उसका मूल्य कम नहीं होता, न उस सामग्री को प्रकाश में लाने वाले अनुसंधाता का मूल्य ही कम होता है। उसने जो काम किया है उससे आगे का काम आगे आने वालों को पूर्ण करना है। यही सारस्वत परम्परा है। यह तथ्यपरक अनुसंधान की स्थिति है।

इन अनुसंधानों का तत्वपरक स्तर भी पूरी तरह संतोष देनेवाला है। तात्विक विचारणा में जितने ऊँचे से ऊँचे उठा जा सकता है विषयानुकूल उतनी ऊँचाई इन आधुनिक विषयों के अनुसंधानों में हमें मिल ही जाती है। विशद से विशद अध्ययन की छाप इन प्रबन्धों में है, ये अपने विषय की परंपरा के भारतीय और विदेशी सूत्रों से भी परिचित हैं।

सामान्य साहित्य को लें, इसमें अनुसंधान का अर्थ होता है साहित्य के समग्ररूप की दृष्टि से अनुसंधान, किसी रूप या अंग विशेष की दृष्टि से नहीं, इस क्षेत्र में एक बड़ा कार्य तो आधुनिक युग को तीन भागों में बाँट कर किया गया है।

**सर्वेक्षण**

७, आधुनिक हिन्दी साहित्य "१८५० – १९००" —लक्ष्मीसागर वार्ष्णेय।

८, हिन्दी साहित्य का विकास "१९०० से १९२५" —श्री कृष्णलाल।

९, हिन्दी सहित्य "१९२६ – १९४७ —भोलानाथ

४७, हिन्दी साहित्य में विविध वाद —प्रेमनारायण शुक्ल

पृष्ठ भूमि १२, हिन्दी साहित्य और उसकी सांस्कृतिक पृष्ठभूमि —लक्ष्मीसागर वार्ष्णेय

वातावरण ८०, सामाजिक वातावरण के विशिष्ठ संदर्भ में आधुनिक हिन्दी साहित्य की समालोचना —डा० इन्द्रनाथ मदान

प्रभाव व तुलना ९४, हिन्दी साहित्य को आर्यसमाज की देन —लक्ष्मीनारायण गुप्ता

१६, अंग्रेजी का हिन्दी भाषा और साहित्य पर प्रभाव —विश्वनाथ मिश्र

प्रवृत्ति ३४, नारी—आधुनिक हिन्दी साहित्य में नारी "१८५७ – १९३६" —रघुनाथ सिंह

१५, मानदंड—आधुनिक हिन्दी साहित्य में बदलते हुए मानों का अध्ययन —रामेश्वर प्रसाद मिश्र

रस ५७, हिन्दी साहित्य में हास्य रस* —बरसानेलाल चतुर्वेदी

प्रतीक आधुनिक हिन्दी साहित्य में प्रतीकवाद —चन्द्रकला

अलंकार ४२, हिन्दी साहित्य में अलंकार*

गान्धीवाद ९१, आधुनिक हिन्दी साहित्य में गान्धी वाद

**व्यक्ति विशेष**

६७, बालमुकुन्द गुप्त—नत्थन सिंह

६८, बालकृष्ण भट्ट—राजेन्द्र

८१, हरिश्चन्द्र—शिवनारायण वोहरा

८६, महावीर प्रसाद द्विवेदी और उनका युग—उदयभानु सिंह

पुष्पांकित प्रबन्धों में प्रसंगात् ही आधुनिक युग के साहित्य का अध्ययन सम्मिलित किया गया है ।

७३, कामायनी म काव्य, संस्कृति और दर्शन
—द्वारिका प्रसाद सक्सैना

प्रवृति ५६, हिन्दी के आरम्भिक स्वच्छन्दता वादी काव्य और श्रीधर पाठक
—श्री रामचन्द्र

कल्पना विधान ७८, हिन्दी कविता में कल्पना-विधान
—रामरतन सिंह

निराशावाद : ५४, आधुनिक हिन्दी काव्य में निराशावाद—शंभुनाथ पांडेय ।

रहस्य वाद: १३, हिन्दी काव्य में रहस्य वादी प्रवृत्तियाँ*—ब्रजमोहन गुप्त ।

नारी : १५, आधुनिक हिन्दी काव्य में नारी भावना १९००-१९४५
—शैलकुमारी माथुर ।

रस ५६, हिन्दी काव्य में करुण रस*—ब्रजवासीलाल श्रीवास्तव ।

सूफी २६, दक्खिनी हिन्दी के सूफी कवि—विमल वाघ्रे ।

प्रेम सौन्दर्य ५५, आधुनिक हिन्दी कविता में प्रेम सौन्दर्य ।

तुलना एवं प्रभाव

२४, आधुनिक हिन्दी काव्य और आलोचना पर अंग्रेजी प्रभाव
—रवीन्द्र सहाय वर्मा ।

**सर्वेक्षण**

आधुनिक काव्य धारा - केसरीनारायण शुक्ल ।

: धारा २७ रूप : ३१—हिन्दी काव्य रूपों का उद्भव विकास*—शकुन्तला दुबे ।

छन्द : ८८ आधुनिक हिन्दी कविता में छन्द—पुत्तूलाल शुक्ल ।

युग : ९२—भारतेन्दु युगीन हिन्दी कवि—अविनाशचन्द्र अग्रवाल ।

९५, द्विवेदी-युग में हिन्दी कविता का पुनरुत्थान—ब्रह्मदत्त मिश्र सुधीन्द्र ।

**रूप विशेष**

गीति काव्य : ३०, गीति काव्य का उद्गम विकास और हिन्दी साहित्य में उसकी परम्परा*—शिवमंगलसिंह सुमन ।

महाकाव्य : ३२, हिन्दी में महाकाव्य का स्वरूप विकास*—शम्भुनाथ सिंह ।
४६, बीसवीं शती के महाकाव्य—जातिपाल सिंह ।
६३, हिन्दी महाकाव्यों में नाटक*—पुष्पलता निगम ।

भाषा : ५३, गत सौ वर्षों में कविता के माध्यम के लिए ब्रजभाषा खड़ी बोली संबंधी विवाद की रूपरेखा—कपिलदेव सिंह ।

कवि विशेष : ४५, रत्नाकर, उनकी प्रतिभा और कला—विश्वम्भर नाथ भट्ट ।
५६, हिन्दी के प्रारम्भिक स्वच्छन्दतावादी काव्य और विशेषत: पं० श्रीधर पाठक की कृतियों का अनुशीलन—रामचन्द्र ।
१००, मैथिलीशरण गुप्त—कवि और भारतीय संस्कृति के व्याख्याता—उमाकान्त गोयल ।
१०२, जयशंकर के काव्य का विकास—प्रेमशंकर तिवारी ।
१०४, गुप्त जी का काव्य-विकास—कमलाकान्त पाठक ।

**नाटक—**

सर्वेक्षण: वृत्त—४०, हिन्दी नाटक साहित्य का इतिहास*—सोमनाथ गुप्त ।

विकास वृत्त : ८२, हिन्दी नाटक का उद्भव व विकास*—वी० पी० खन्ना ।
८५, भारतीय नाटक का उद्भव विकास*—शिवनन्दन पांडेय ।
९९, हिन्दी नाटक का उद्भव विकास*—दशरथ ओझा ।

युग : ६६, भारतेन्दु कालीन नाटक साहित्य—गोपीनाथ तिवारी ।
१०३, भारतेन्दु युग के नाटककार—भानुदेव शुक्ल ।

अवयव एकांकी १०८, हिन्दी एकांकी—रामचरण महेन्द्र ।

उपन्यास : ४०, उपन्यासकार प्रेमचन्द, उनकी कला सामाजिक विचार और जीवन दर्शन—एस० एन० शुक्ल ।
७६, प्रेमचन्द—राजेश्वर गुरू ।
७७, समस्यामूलक उपन्यासकार प्रेमचन्द—महेन्द्र भटनागर ।
१०८, वृन्दावन लाल वर्मा के उपन्यास—शशिभूषण सिंहल ।

आलोचना : २४, आधुनिक हिन्दी काव्य और आलोचना पर अंग्रेजी प्रभाव—रवीन्द्र सहाय वर्मा ।
३७, आधुनिक आलोचना की प्रवृत्तियाँ—रामदरश मिश्र ।
४४, हिन्दी साहित्य में आलोचना का उद्भव विकास*—भगवत स्वरूप मिश्र ।
७१, आधुनिक हिन्दी साहित्य में आलोचना का विकास—आर० के० कक्कड़ ।
१०५, आचार्य शुक्ल के समीक्षा-सिद्धान्त-रामलालसिंह

**कथा साहित्य—**

१०७, आधुनिक हिन्दी कथा-साहित्य और मनोविज्ञान—डा० देवराज

| | | |
|---|---|---|
| कहानी : | २१, | हिन्दी कहानियों का उद्भव विकास—लक्ष्मी नारायण लाल। |
| | ५०, | हिन्दी कहानियों का विवेचानात्मक अध्ययन—बी० डी० शर्मा। |
| गद्य : | ३६, | आधुनिक गद्य के विविध साहित्य रूपों के उद्भव विकास का अध्ययन—व० ल० कान्ता मेरे। |
| निबन्ध : | ४३, | हिन्दी निबन्ध के विकास का आलोचनात्मक अध्ययन—यू० सी० त्रिपाठी। |
| जीवनी : | ६०, | हिन्दी में जीवनी साहित्य—चन्द्रावली सिंह। |
| गद्यकाव्य : | ३६, | हिन्दी में गद्यकाव्य का विकास—अष्टभुजा प्रसाद पांडेय। |
| | ५२, | हिन्दी गद्यकाव्य का आलोचनात्मक अध्ययन—पद्मसिंह शर्मा कमलेश। |
| समाचार पत्र : | १४, | हिन्दी समाचार पत्रों का इतिहास—रामरतन भटनागर। |
| शास्त्र:पिंगल : | ८८, | आधुनिक हिन्दी कविता में छन्द—पुत्तूलाल शुक्ल। |

**लोक-साहित्य—**

आधुनिक हिन्दी साहित्य के सभी क्षेत्रों में कार्य हुआ है, यह उक्त विवरण से प्रतीत होता है। फिर भी यह परिणाम निकाला जा सकता है कि जहाँ कुछ विषयों पर दुहरा-तिहरा काम हो रहा है, वहाँ कुछ विषयों पर अब भी समुचित ध्यान नहीं दिया जा रहा है। उदाहरणार्थ सामान्य गद्य, कवि अथवा लेखकों का व्यक्तिपरक अनुसंधान, विशिष्ट काव्यों का अनुसंधानात्मक अध्ययन, कहानी का विविध रूपेण अनुसंधान, इसी प्रकार निबन्ध का विविध रूपी अनुसंधान तथा अध्ययन, उत्साही और परिश्रमी अनुसंधाताओं की बाट जोह रहे हैं। इतनी संतोषप्रद, गौरव और प्रसन्नता की बातें होते हुए भी कुछ ऐसी कमियाँ हैं जिनसे हमारे ये प्रयत्न पूर्ण सम्मान नहीं पा सके।

सबसे पहली कमी तो अनुसंधान प्रणाली की स्थिर-प्रक्रिया विषयक अभाव है। यह बड़े खेद की बात है कि हम इतने विशद अनुसंधान कार्य के उपरान्त भी अनुसंधान की एक सामान्य प्रणाली स्थिर नहीं कर पाये। हमारे अधिकांश प्रबन्धों में विशाल सामग्री का उपयोग हुआ है, पर उसको व्यवस्थित रूप से अध्ययन और विश्लेषण के द्वारा प्रामाणिक निष्कर्षों तक पहुँचने की दृष्टि से उपयोग में नहीं लाया गया। निष्कर्ष और विवरण अनुसंधाता के जैसे अपने "निजी विचार" मात्र ही प्रतीत होते हैं, तटस्थता तो दीख पड़ती है पर वैज्ञानिक प्रामाणिकता का अभाव मिलता है।

इसी से संबंधित दूसरी कमी यह विदित होती है कि एक ओर तो अध्ययन की विशालता दिखायी पड़ती है, इतने ग्रन्थों और साहित्य और स्रोतों का उपयोग किया गया है कि इस अध्ययन से ही आतंक होने लगता है, पर वहीं ऐसा भी लगता है कि किसी विषय या बात के लिए जितने आवश्यक ग्रन्थ देखे जाने चाहिये थे वे नहीं देखे गये और तद्विषयक निष्कर्ष या कथन उन आवश्यक ग्रन्थों के पढ़ने के अभाव में दूषित हो गये हैं।

जैसे एक प्रबन्ध में लिखा गया है कि भोजपुरी में जैसे उस भाषा ने कुसुमी जैसा मार्मिक गीत प्रस्तुत किया वैसा ब्रजभाषा ने नहीं किया। अब यह स्पष्ट है कि इस लेखक

ने ब्रजभाषा के साहित्य और लोक-साहित्य पर बहुत कुछ पढ़ा है, इसने भोजपुरी पर भी ग्रन्थ पढ़े हैं। पर जिस बात पर इसने ऐसे अधिकार से लिखा है उसके संबंध में कुछ आवश्यक प्रामाणिक ग्रन्थ नहीं पढ़ें। और न आवश्यक क्षेत्रीय अनुसंधान ही किया। भोजपुरी का कुसुमी गीत ब्रज के चन्द्रावली नाम के गीत का रूपान्तर है, वह ब्रज से ही गया है। भोजपुरी में और अन्यत्र इस गीत की पत्र-पत्रिकाओं और प्रामाणिक ग्रन्थों में चर्चा भी हुई है। पर उसी को अनुसंधाता ने नहीं पढ़ा। यह तो केवल एक उदाहरण है।

और यहीं यह बात भी प्रकट हो जाती है कि हमारे अध्ययनों में कभी-कभी प्रामाणिक और अप्रामाणिक साहित्य का भेद भी नहीं किया जाता। किसी भी उल्लेख को प्रमाण की भांति उद्धृत कर दिया जाता है, और किसी भी व्यक्ति के मत को प्रमाण रूप में दे दिया जाता है। इससे अनुसंधाता के अपने गौरव की भी क्षति हो जाती है।

इसी प्रकार यह कमी भी खटकती है कि कभी-कभी लेखक अपने अनुसंधानीय विषय के एक दो ग्रंथ लेकर ही उसके आधार पर सिद्धान्त निर्धारित करने लग जाता है। आवश्यक यह है कि तत्सम्बन्धी प्रायः सभी पुस्तकें लेकर और उनके विधिवत विश्लेषण और अध्ययन के आधार पर कोई निष्कर्ष निकाला जाय। ऐसा न करने से प्रबन्ध का स्तर ही सदोष नहीं हो उठता है, वरन् अन्याय भी हो जाता है, और एक विष को फैलने का अवसर मिलता है।

हम अभी अपने अध्ययन और तथ्यों को आँकड़ों, चित्रों और ग्राफों से गणितीय विधि से प्रस्तुत और पुष्ट करना भी नहीं सीखे। जिससे बहुत से तत्व प्रकट होने से रह जाते हैं। तात्विक विचारणा में हम अभी कमजोर हैं। हमारा तत्व-चिन्तन उस पुष्ट लौजीकल प्रक्रिया से नहीं हो पाता जो उसे प्रामाणिक और मान्य बना देते हैं। हमारे चिन्तन के आधार-भूत तर्क वैज्ञानिक नहीं हो पाते, निजी धारणा या अनुभूति का रूप ग्रहण कर लेते हैं।

हमारे अनुसंधानों की रूप-रेखाएं भी सावधानी से नहीं बनायी जाती। उसमें बहुधा अनावश्यक और भूमिका-विषयक बातें विशेष महत्व ग्रहण कर लेती हैं, जिससे एक तो प्रबन्ध असंतुलित हो जाता है, दूसरे आवश्यक विषय को अपेक्षित समय नहीं मिल पाता।

मान लीजिये आप प्रेमचन्द-पूर्व के उपन्यासों पर प्रबन्ध लिख रहे हैं तो उसमें उपन्यास-विषयक परिभाषा पर अपना पांडित्य दिखाने की क्या इतनी आवश्यकता होगी कि उस पर आप ५०-६० पृष्ठ व्यय कर दें। मेरी दृष्टि में तो उपन्यास की परिभाषा और उपन्यास तथा अन्य साहित्य-रूपों से उपन्यास का भेदादि बताने की ऐसे प्रबन्ध में कोई आवश्यकता नहीं। हाँ आवश्यक यह है कि प्रेमचन्द से पूर्व उपन्यास विषयक क्या 'मत' थे उन्हें खोजकर प्रस्तुत कर दिया जाय और उनमें यदि विकास-क्रम हो तो उसे सामने लाया जाय।

आधुनिक साहित्य के कुछ विशिष्ट विषयों के अनुसंधान की भूमिका भी सीधे वैदिक युग से आरम्भ होती है।

पर उसी विषय पर आपके इस अध्ययन और अनुसंधान से पहले क्या-क्या अध्ययन और अनुसंधान हो चुका है इसके इतिहास का विवरण नहीं मिलेगा, जो अत्यंत आवश्यक है।

इसी प्रकार किसी विषय की भूमिका में भारत का विशद राजनीतिक, धार्मिक, साहित्यिक, आर्थिक इतिहास गुंफित मिलेगा, जो मूल विषय से पूर्णतः स्वतंत्र होगा। अर्थात् उस ऐतिहासिक पृष्ठभूमि का मूल विषय से कहाँ-कहाँ कैसा-कैसा संबंध है यह आपको विदित नहीं हो सकेगा। क्या ऐसी भूमिका और ऐसा इतिहास आपके मूल प्रबन्ध के लिए आवश्यक है? क्या इससे आपके प्रबन्ध का मूल्य बढ़ेगा? ऐसी असंबद्ध बातें ही उपहास का आधार बन जाती हैं। यह भी उपहासात्मक ही होगा कि आपने उन टेक्स्ट बुकों को अपना प्रमाण बनाया है जो आठवीं या दसवीं कक्षा में चलती हैं।

कहने का तात्पर्य यह है कि ऐसी कुछ अनर्गल और अप्रामाणिक तथा अनावश्यक बातें हमारे प्रबन्धों में आ जाती हैं, जो नहीं आनी चाहियें। इन बातों का समावेश न हो ऐसा उद्योग प्रत्येक अनुसंधाता को करना चाहिये।

मुझे विश्वास है कि ऐसी सेमीनार-गोष्ठियाँ शीघ्र ही एक सामान्य रिसर्च-प्रणाली की स्थापना में समर्थ हो सकेंगी, जिससे सामान्य कमियाँ दूर हो जायेंगी, और अनुसंधाता की व्यक्तिगत प्रतिभा का विशेष उत्कर्ष उससे ऊपर किसी नयी चमत्कारक प्रणाली के उद्भव में दिखायी पड़ने लगेगा।

## सुझाव

१, एक स्वरूपनिष्ठ आलोचना परम्परा की आवश्यकता—शुद्ध सारस्वत दृष्टि से वस्तुनिष्ठ।

२, एक विदग्ध-मंडल की आवश्यकता है जो प्रबन्धों के कुछ भागों को संशोधन कर सके। और एक ऐसे मंडल की आवश्यकता है जो समस्त हिन्दी क्षेत्रों के अनुसंधान कार्यों का तालमेल बैठाता रहे, जिससे दुहरावट न हो।

३, घोर वस्तुनिष्ठता।

४. तुलनात्मकता को बचाना, जब तक कि वह विषय के अन्दर ही न हो।

टिप्पणी—१

# बंगाल के 'डाक नाम' (पुकारे जाने वाले नाम) विषयक लोक-विश्वास

बंगाल में दो तरह के नामों को रखने की प्रथा है। एक तरह का नाम, जिसको स्कूलों, सरकारी कागजातों आदि में व्यवहार किया जाता है, उसे 'भालो नाम' (अच्छा नाम) कहा डाता है। दूसरे तरह का नाम वह है, जिसकी चर्चा यहाँ की जारही है। इसको 'डाक नाम'* कहा जाता है। परिवार के लोग या अन्यान्य परिचित लोग इस नाम का व्यवहार करते हैं। 'डाक नाम' कई तरह के होते हैं। मोटे तौर पर इनको दो भागों में बाँटा जा सकता है—

१. वे 'डाक नाम' जो अच्छे नाम के ही एक अंश को लेकर रख लिये जाते हैं।

२. वे 'डाक नाम' जो अच्छे नाम के किसी अंश पर आधारित न होकर बिलकुल स्वतंत्र होते हैं।

पहली तरह के नामों का उदाहरण—

| पुरुषों के नाम | | स्त्रियों के नाम | |
|---|---|---|---|
| शंकरकुमार | शक्कू | अलका | आलो |
| विप्लवकान्ति | विप्लव | अंजली | अंजू |
| तरुणकुमार | तरुण | मृदुला | मृदू |
| निताईचाँद | निताई | शान्ता | शानू |
| कार्तिकचन्द | कार्तिक | तन्द्रा | तनू |
| मधुसूदन | मधू | सुचरिता | सुचि |
| समीरकुमार | समीर | आभा | आइभि |
| सौमित्री | सोमू | काननबाला | कानू |
| अजितकुमार | अजित | नीलिमा | निली |
| निरंजन | रंजन | जयश्री | जया |
| विभूति | विभू | डालिमा | डली |
| दिलीपकुमार | दिलू | शिबानी | शिबी |
| निर्मलकुमार | निर्मल | अनिता | अोनू |
| विश्वनाथ | बिशू | जूथिका | जूथी |
| काशीनाथ | काशू | तपती | तपू |
| | | सुप्रीति | सपू |

* पुकारने का नाम।

लोक-विश्वासों की दृष्टि से इन नामों का विशेष महत्व नहीं है। ये मूल नाम के ही एक छोटे अंश को लेकर पुकारे जाते हैं। इस प्रकार के नाम हिन्दी भाषी प्रान्तों में खूब प्रचलित हैं। जैसे विजयशंकर—विजयी, रमाशंकर—रमा, कैलाशनाथ—कैलास, गिरिजाशंकर—गिरिजा इत्यादि

दूसरी तरह के नामों को फिर से कई भागों में बाँटा जा सकता है—

(अ) ऐसे नाम जिनकी कोई व्याख्या नहीं की जा सकती।

(आ) ऐसे नाम जो स्वभाव के आधार पर रख दिये जाते हैं।

(इ) जो किसी दिन विशेष को जन्म लेने के कारण रखे जाते है।

(ई) जो विभिन्न सामाजिक स्थितियों को सूचित करते हैं।

(उ) जो किसी लोक-विश्वास पर आधारित होते हैं।

(अ)

| पुरुषों के नाम | | स्त्रियों के नाम | |
|---|---|---|---|
| अनिलकुमार | मानिक | कृष्ण | आनू |
| अनूपकुमार | बच्चू | सुमित्रा | छवि |
| सुभाष | मणि | बन्दना | तूलिका |
| मनोब्रत | कानू | कमला | डली |
| मदनमोहन | बुल्लू | भारती | बुलू |
| विधानकुमार | खोकन | सुनंदा | शुक्ला |
| विप्लवकुमार | जयदेव | माया | शिखा |
| अभिजित | गोरा | बलाका | बाबू |
| सुरजित | पल्टन | अनिन्दिता | अलोका |
| सुबीर | बाबूराम | ईला | लूशी |
| अंजनी | गोबा | अणिमा | बेबी |
| अरुणकुमार | गौतम | सुमिता | शीला |
| ज्योतिकुमार | घण्टू | गोरी | दुलाली |

ये नाम इतने व्यक्तिगत होते हैं कि इनकी व्याख्या करना कठिन होता है।

(आ) स्वभाव के आधार पर—बचपन में बच्चों का स्वभाव देखकर ऐसे नाम रखे जाते हैं।

| | |
|---|---|
| शिलाजीत—दुष्टू | नन्दिता—शान्ति |
| प्रदीप —भीतू | शुक्ला —चंचला |

बचपन में छोटे बच्चों को शरारती देखकर दुष्टू, शान्त देखकर शान्ति, चंचल देखकर चंचला तथा डरपोक देखकर भीतू नामकरण भी किया जाता है।

(इ) जो किसी दिन या समय विशेष पर जन्म लेने के करण रखे जाते हैं।*

* किन्तु आवश्यक नहीं है कि मूल नाम के साथ उनका कोई सम्बन्ध हो ही।

| | | | |
|---|---|---|---|
| समरेन्द्र | रवि | अणिमा | सर्वाणी |
| दिपेन्दु | दुर्गा | नन्दिता | सरस्वती |
| श्यामल | कार्तिक | सुव्रता | लक्ष्मी |
| चन्दन | कन्ट्रोल | गायत्री | न्यू |
| अजित | सूको (सूखा) | हेममाया | जापानी |
| मदन | डकैत | मिनती | बासन्ती |

द्वितीय युद्ध के समय जन्म लेने के कारण 'जापानी', न्यूइयर्स के कारण 'न्यू', बसंत पंचमी के कारण 'बासन्ती', दुर्गापूजा के दिन के कारण 'दुर्गा', रविवार के दिन के कारण रवि, सूखा में जन्म लेने के कारण 'सूको' आदि नाम रखे गये हैं।

(ई) जो विभिन्न सामाजिक स्थितियों को सूचित करते हैं—ये नाम लड़कियों के ही होते हैं।

स्त्रियों के नाम

| | | | |
|---|---|---|---|
| अमिता | इति | मिनती | मुक्ति |
| श्रीपणी | माना | छन्दा | जाजा |
| कविता | चाईना | श्यामा | आन्नाकाली |

बंगाल में लड़कियाँ एक समस्या है। अधिक लड़कियों के होने से लोगों को अधिक दहेज देना पड़ता है। इस आर्थिक दबाव के कारण लोग अधिक लड़कियों का होना पसन्द नहीं करते। अतः जब अधिक लड़कियाँ हो जाती हैं, तो और न हों इस मनोभाव को सूचित करने वाले ये नाम हैं—इति (यहीं तक अन्त), माना (माँ और नहीं), चाईना (और नहीं चाहिये), मुक्ति (अब मुक्ति मिले), जाजा (जाओ जाओ), आन्नाकाली (काली और नहीं)।

(उ) लोक-विश्वासों को सूचित करने वाले नाम—

| | | | |
|---|---|---|---|
| केशव | केना | सुशील | खुदू |
| निरंजन | बेंचा | मनोरंजन | पथकूड़ो |
| विमल | तीन कौड़ी | हलधर | कुड़ोराम |
| हेंदू | पाँच कौड़ी | अनूप | पाँचू |
| सुनीति | दो कौड़ी | प्रभात | कानीकूड़ो |
| आशीष | हरधन | पंकजकरणी | कुड़नी } स्त्रियों |
| | | सुरूपा | पाँचो } के नाम |

हमने ऊपर जितनी तरह के नामों का उल्लेख किया है, यही सही वर्गीकरण है ऐसा दावा नहीं किया जा सकता। अतः इसका अध्ययन और भी विभिन्न विधियों से किया जा सकता है।

यहाँ पर जितने तरह के नामों का उल्लेख हुआ है, उसमें (उ) के अन्तर्गत हमें लोक-विश्वासों से सम्बन्धित सामग्री मिलती है। अतः हम अपने को इसी तक सीमित रख रहे हैं।

(उ) के अन्तर्गत जितने तरह के नामों का उल्लेख किया गया है, उन सबके पीछे एक ही विश्वास काम कर रहा है। इस तरह के नामकरण करने के साथ एक तरह का टोटका जुड़ा हुआ है। जिन लोगों की सन्तानें बार बार मर जाया करती हैं, वे इस तरह का टोटका करते हैं। और विश्वास करते हैं कि इस टोटके के करने से अब सन्तान बच जायगी।

केना-बेंचा—केना का अर्थ खरीदना और बेंचा का बिक्री करना है। सन्तान होने के साथ साथ उसको किसी अन्य व्यक्ति के हाथ बेंच दिया जाता है, और पुनः उसको खरीद लिया जाता है। इस बेंचने और खरीदने के आधार पर केना-बेंचा नामकरण होता है। इसमें यह विश्वास है कि हमारे भाग्य में संतान नहीं लिखी है, इस टोटके से संतान दूसरे की हो गयी, और अब नहीं मरेगी।

तीन कौड़ी, पाँच कौड़ी, दो कौड़ी—तालिका (उ) में केवल इन नामों का ही उल्लेख है, किन्तु सात कौड़ी, नौ कौड़ी, एक कौड़ी नाम भी पाये जाते हैं। इस तरह का टोटका भी जब संतान पैदा होती है उसी समय किया जाता है। इन विभिन्न संख्या वाली कौड़ियों को देकर कोई अन्य व्यक्ति संतान को खरीद लेता है।

कानिकूड़ो-पथकूड़ो—कानि का अर्थ है पुराने कपड़े का टुकड़ा—इस टुकड़े को देकर सन्तान खरीद ली जाती है। पथकूड़ो—रास्ते पर सद्यजात सन्तान को ले जाकर बेंचने का टोटका किया जाता है, इससे कानिकूड़ो तथा पथकूड़ो नाम रखे जाते हैं।

हरधन-कूड़ोराम—कई संतानों के मर जाने पर जो संतान होती है, उसे हरधन कहकर पुकारते हैं (हरा हुआ धन)। इसी तरह बहुत कष्ट के पश्चात् जब कोई सन्तान जन्म ग्रहण करती है तो कूड़ोराम नाम दिया जाता है। इसी तरह लड़की का नाम 'कुरुमी' होता है।

खुदू—खुद* बंगला में चावल की किनकी को कहते हैं। संतान पैदा होने पर इसी किनकी से उसे खरीद लिया जाता है। इस तरह के टोटके से खुदी-खुद नाम रखा जाता है।

पाँचू-पाँची—पाँचू नाम लड़कों का और पाँची लड़कियों का रखा जाता है। किसी देवता की सेवा करने के बाद जो संतान उत्पन्न होती है उसका नाम उस देवता के नाम के आधार पर रखा जाता है जैसे पाँचूगोपाल देवता—से पाँचू-पाँची।

हमने ऊपर बंगाल में होने वाले जिन टोटकों का उल्लेख किया है, उसी तरह के टोटके उत्तर प्रदेश में भी पाये जाते हैं। जैसे देखा जाता है कि कभी कभी संतान जब पैदा होती है तो उसको तराजू पर तौल लिया जाता है, ऐसी संतान का नाम 'जोखू' रखा जाता है। इसी तरह कभी कभी जन्म लेने के साथ साथ नाक छेद दी जाती है, इनका नाम 'नकछेद' रख दिया जाता है।

---

* खुद्दी, भोजपुरी, चावल का टूटन या किनकी।

ये सभी नाम एक खास तरह के विश्वास पर आधारित टोटकों से संबंध रखते हैं। इनका चलन कब से हुआ, इसके संबंध में हम अभी कोई प्रामाणिक बात नहीं कह सकते। हमारी समझ से सामूहिक अनुसंधान ही इस प्रश्न का उत्तर दे सकता है।

इसके अतिरिक्त जो दूसरी समस्या है वह यह कि 'डाकनाम' रखे क्यों जाते हैं? क्या इनका संबंध उस समय विशेष से तो नहीं है जब जादू (Magic) का खूब चलन था, किसी का नाम, किसी का बाल, किसी का कोई वस्त्र, लेकर जिन दिनों उस पर टोटके किये जाते थे, और विश्वास किया जाता था कि इससे उस मनुष्य का अनिष्ट होगा। अत: मूल नाम को छिपाकर रखने के लिये ही तो 'डाक नामों' की उत्पत्ति नहीं हुई है? विशेष रूप से बंगाल में जो अपने जादू टोनों के लिये विशेष प्रसिद्ध था।*

—श्री श्रीनारायण पाण्डेय
मणीन्द्रचन्द्र विद्यापीठ
बहरमपुर

* इन नामों को हमने बहरमपुर (मुर्शिदाबाद) से संकलित किया है।

टिप्पणी—२

# अन्तर्राष्ट्रीय लोक-कथा अनुसंधान काँग्रेस

[इस टिप्पणी की लेखिका अन्तर्राष्ट्रीय फोक टेल्स कान्फ्रेन्स में निमंत्रित होकर उसमें सम्मिलित होने कील गयी थीं। उन्होंने लोकवार्त्ता के संबंध में भारत के प्रति विदेशी विद्वानों का जो भाव देखा था, उसे यहाँ बताया है।]

अन्तर्राष्ट्रीय लोक-कथा अनुसंधान कांग्रेस का निमंत्रण जब मुझे मिला तो मुझे स्वप्न में भी उसके विराट योजना-विधान तथा अपने भाग लेने का ज्ञान न था।

मध्यवित्त परिवार की गृहिणी के लिए सर्वप्रथम इतना अर्थ-व्यय ही एक प्रश्नचिह्न था। पर भाग्यचक्र कुछ ऐसा चला कि मैं इसमें भाग लेने के लिये चल ही पड़ी। लेकिन चलते समय भी तरह-तरह के विचारों तथा आशंकाओं से उत्साह शिथिल सा था। आशा की किरन, मात्र प्रोग्राम में जो चंद रोज पहले ही मुझे मिला था, मेरा पेपर पढ़ने का समय था, जिसके लिये कांग्रेस का पहला दिन निर्धारित किया गया था।

साधारण भारतीय नारी होने के नाते, जिसे कि मांस-मद्यादि से परहेज था तथा जो विद्याव्यसनी होने पर भी प्रायः घरघुस्सू सी थी, मेरे लिए यह यात्रा और भी कठिन थी। यदि मेरे पति मेरे साथ न होते तो शायद मैं इतनी बड़ी हिम्मत न करती।

सरकार ने १००० रुपया एक्सचेंज के तौर पर दिया। कील तक पहुँचते-पहुँचते विदेशी रहन-सहन तथा भोज्य पदार्थों की मँहगाई ने न केवल हमें हतोत्साह ही कर डाला, वरन् अधमरा सा बना डाला था। अंग्रेजी का ज्ञान योरोप में व्यर्थ सा प्रमाणित हुआ। वहाँ तो भारतीयों के प्रति सद्भाव ही हमें किनारे लगाने में समर्थ हुआ। भारतीय भाइयों (जो विदेश घूम आये थे) की उल्टी सीधी डींगें तथा वास्तविक स्थिति से अपरिचय के कारण तब तक हमें नाना प्रकार के अनुभव प्राप्त हो चुके थे।

पर जैसे ही हम कील पहुँचे, जर्मन योग्यता, कार्यदक्षता तथा चरित्रगत उत्थान का परिचय जो अब तक एक मात्रा में मिल चुका था—होटल पहुँचने पर अत्यधिक उदाहरण सहित प्राप्त हुआ। कांग्रेस बैज के साथ ही साथ, मेरे लिए वहाँ सभी प्रकार का अनुपम प्रबन्ध था।

स्टेशन पर उतरते ही सब देशों के साथ-साथ लहराते हुए तिरंगे ने हृदय को उल्लास से भर दिया। मन में एक विचार लहरा गया, यदि मैं न आती तो निस्संदेह मेरे भारत की गणना भी इस क्षेत्रीय अध्ययन के पिछड़े प्रदेशों में होती, जो कि एक सरासर गलत बात थी। तो, मेरा मन भाग्यगत कृतज्ञता तथा नवीनोत्साह से भर उठा। मन को कुछ सेकंड के लिए कचोटने वाली एक ही बात थी, कि मेरी सरकार, मेरा देश जिसका प्रतिनिधित्व करने मैं गयी थी मेरे कार्य के प्रति उदासीन ही नहीं वरन् नाना प्रकार की अड़चनें लिये खड़ा रहता था। पर अधिक देर तक यह भाव न टिक सका। नये वातावरण-जनित देश-प्रेम की नयी उमंग तथा भारत के प्रति प्रदर्शित सन्मान के आगे विरोधी तथा कष्टप्रद भाव झुक से गये। ठीक भी तो है भारत एक विशाल महादेश है जहाँ मेरे जैसे अनेक हैं, फिर क्या हुआ?

मेयर की संध्याकालीन 'रिशेप्शन' तथा दूसरे कार्यक्रमों में विश्व भर के वयोवृद्ध लोकवार्ता-विशारदों से भेंट हुई और जब सभी के सम्मुख भारतीय नारी को विशेष रूप से समादृत किया गया, टेलिविजन पर विशेष अधिकारियों के साथ दिखाया गया तो सभी कष्ट विस्मृत हो गये। जर्मन प्रजातंत्र के बड़े-बड़े पदाधिकारियों से मिलाया गया। जर्मन अखबारों में मेरा चित्र प्रकाशित किया गया जिसका पता चाय पीते समय एक जर्मन भाई तथा एक पुलीस अफसर से चला। इसकी पुष्टि कांग्रेस भवन में पहुँचने पर भी हो गयी क्योंकि सभी जाने-पहिचाने व्यक्तियों ने बधाई दी।

इस कांग्रेस में प्रायः २०० के करीब लोकवार्ता-विशारद एकत्रित हुए थे। जिसमें मोटे तौर पर रूस व चीन को छोड़कर सभी योरोपीय देश यू० के०, यू०एस० ए०, कनाड़ा अरजनटाइना, साउथअफ्रीका, आइसलैंड, इजराइल और जापान तक के प्रतिनिधि उपस्थित थे। शिक्षित मानव का ऐसा बेजोड़ और अनोखा समूह देखते ही बनता था।

दूसरे दिन प्रातः से निबंधों के पढ़ने का कार्यक्रम प्रारम्भ हुआ। जिस समय में अपना निबंध "लोककथा तथा संस्कृति स्वरूप" पढ़ने गयी तो बार-बार होने वाली आलोचना-प्रत्यालोचना से न घबराने के लिए शुभचिन्तकों द्वारा आगाह कर दी गयी थी, पर माइक पर पहुँचते ही मैं बदल चुकी थी। मेरे भीतर भारत, भारतीय संस्कृति का सम्मान जिसका अब तक पर्याप्त आस्वादन प्राप्त हो चुका था, जाग उठा था। वहाँ भारतीय नारी के स्थान पर भारतीय ग्राम खड़ी थी। तथा उसी भाव में गहराते हुए, मैंने अपना निबन्ध पढ़ा। निबन्ध के समाप्त होते ही हाल करतल ध्वनि से गूंज उठा। कोई भी आलोचना के लिए न उठा और अन्त में सुप्रसिद्ध अमेरिकन विद्वान प्रो० ऊटले ने उठकर मेरे निबन्ध की प्रशंसा की तथा जैसा दृष्टिकोण मैंने अपनाया था उसे अपनाने का विद्वानों से आग्रह किया। फिर तो कई एक विद्वानों ने जिनमें कई एक योरोपीय, इजराइली, और अमेरिकन सज्जन प्रमुख थे, अपने अपने ढंग से बधाई दी। तथा भारत में हुए कार्य के प्रति उत्सुकता प्रदर्शित की, जिसके लिये मैंने पहले से ही तैयार किया हुआ ब्यौरा अंग्रेजी में पढ़ सुनाया। एक मजे की बात, उन कई एक में से सुप्रसिद्ध अंग्रेज प्रतिनिधि की रही, जिसने मुझे भारत से उठाकर आक्सफोर्ड विश्वविद्यालय की छात्री मान बैठने की ठानी, क्योंकि ऐसी शैली तथा बोलने का ढंग उनके विचार में भारत में सीखा नहीं

जा सकता। पर बड़ी नम्रता से मैंने और अधिक उन्हें ऐसे भ्रमों में पड़े रहने से उबार कर, अपना तथा अपनी शिक्षा का पूरा वृतान्त कह कर, भारतीय मस्तिष्क व योग्यता का उन्हें किंचित् और अधिक परिचय प्राप्त करने का अवसर दिया।

१९ अगस्त से २७ अगस्त तक कांग्रेस कील में चली, फिर सभी प्रतिनिधि कोपनहेगन के लिये रवाना हो गये। और वहाँ भी प्रतिनिधियों को वैसा ही सरकारी सम्मान व आदर प्राप्त हुआ। रविवार को जर्मन कार्यकर्त्ताओं ने मनोरंजन का भी अत्युत्तम प्रबन्ध किया था। कोपनहेगन तक ले जाने का व्यय भी कांग्रेस के प्रबन्ध कर्त्ताओं ने किया।

इस कांग्रेस में लोकवार्त्ता-विशारदों ने कथा, कहानी, अवदान, तथा धर्मगाथा प्रभृति पर किये गये विविध दृष्टिकोण-मंडित वैज्ञानिक अनुसंधानमय अध्ययन प्रस्तुत किये। सांस्कृतिक, विशुद्ध साहित्यिक तथा ऐतिहासिक प्रणालियों से कई एक कथाओं (प्रदेशीय अथवा सार्वदेशीय) का अध्ययन भी प्रस्तुत किया गया। आलोचना तथा प्रत्यालोचना भी बड़ी दिलचस्प तथा उत्तम रही। कांग्रेस में अन्तर्राष्ट्रीय लोकवार्ता परिषद् की मान्य तीन भाषाओं-अंग्रेजी, फ्रेंच, जर्मन का उपयोग किया गया। पूरी कार्यवाही टेप-रिकार्ड पर अंकित की गयी जिसको पुस्तकाकार प्रकाशित करके कांग्रेस में सभी भाग लेने वाले व्यक्तियों को बाद में भेंट किया जायगा।

इस कांग्रेस से ठीक २४ वर्ष पूर्व पहले लुंड में हुई कांग्रेस के वयोवृद्ध अमरीकी विद्वानों को, जैसे स्टिथ टामसन, आर्चर, टेलर को आनरेरी डाक्टरेट भी प्रदान की गयी तथा क्रिस्चयनसेन, वाल्टर एण्डरसन सरीखे योरोपीय विद्वानों को विशेष सन्मान दिया गया। लोकवार्ता का क्षेत्र इनके कार्य से कितना आगे बढ़ा है यह सभी को मालूम है।

कांग्रेस के अंतिम अधिवेशन में लोककथा अध्ययन को अन्तर्राष्ट्रीय सहयोग का विषय मानकर, कई एक सुझाव पेश किये गये। मोटे तौर पर जिन्हें ऐसे गिनाया जा सकता है: सर्वप्रथम यह कि इस प्रकार की कांग्रेस तीन या पाँच वर्ष के अन्तर पर होनी चाहिये, अन्तर्राष्ट्रीय विद्वानों की एक कमेटी बनायी गयी जिसका कार्य विश्व भर में हुए अध्ययन से पूरा सम्पर्क स्थापित रखना निर्धारित किया गया। 'लोककथा आरकाइव्स' के कार्य को और बढ़ाने का आग्रह किया गया।

यहीं मैं कुछेक बातों की ओर ध्यान दिलाना अत्यावश्यक समझती हूँ। सर्वप्रथम अन्य देशों की भाँति भारत सरकार को भी इस कार्य के प्रोत्साहन की ओर ध्यान देना चाहिये, चूँकि भारत ही संसार का वह देश है जिसे एक समय विश्व की कथाओं का महान् उत्स बेनफे सरीखे विद्वान ने मात्र पंचतंत्र की अपूर्व यात्रा को लक्ष्य कर कह दिया था, कराल काल ने उन्हें कार्य पूरा न करने दिया। यदि कथा सरित्सागर सरीखी पुस्तकों का विधिवत् अध्ययन किया जाये तो निस्संदेह विश्व न सही तो यूरेशिया तथा अफ्रीका के सांस्कृतिक इतिहास पर एक मात्रा तक प्रकाश डाला जा सकेगा। मेरा निजी अध्ययन कई एक ऐसी बातों को प्रकाश में लाया है कि संस्कृति, क्षेत्र और मानव के पारस्परिक अनोखे आदान-प्रदान की भावना का एक चित्र

सा खिंच गया है। तृतीय, भारत म भी अखिल भारतीय लोकवार्त्ता-परिषद् का आयोजन किया जाना चाहिये ताकि अध्ययन कार्य सुलभ हो। चतुर्थ, भारत में कम से कम (अन्य देशों की नकल के रूप में नहीं) लोकवार्ता को विश्वविद्यालय का विषय बनाया जाना चाहिये क्योंकि यह एक सारगभित अध्ययन का क्षेत्र है।

—डा० सावित्री सरीन

# स्वर्गीय पद्मसिंह शर्मा का पत्र-संग्रह

हिन्दी-साहित्य में अभी तक पत्र-साहित्य का प्रकाशन स्वतंत्र रूप से बहुत ही कम हुआ है। केवल आचार्य श्री महावीर प्रसाद द्विवेदी और उनके समकालीन साहित्यिकों के दो पत्र-संग्रह प्रकाशित हुए हैं, तथा पं० बनारसीदास चतुर्वेदी और डा० हरिशंकर शर्मा के द्वारा सम्पादित पद्मसिंह शर्मा के द्वारा लिखे गए पत्रों का एक संकलन प्रकाशित हुआ है। परन्तु अभी अनेक ऐसे साहित्यिक पड़े हैं जिनका पत्र-व्यवहार यदि प्रकाश में आजाय तो साहित्य की अनेक गुत्थियाँ सुलझ जाएं। और उन साहित्यिकों पर नया प्रकाश भी पड़े।

पुरानी पीढ़ी के लोग इतने जिन्दादिल थे और अपने निजी व्यवहार में ऐसी चुचुहाती-फड़कती हुई भाषा का प्रयोग करते थे कि जिसे पढ़ते समय उनका चित्र ही उभर उठता था। पर खेद है कि ऐसी सामग्री बचाई नहीं जा सकी और बहुत-सी नष्ट हो गई। भारतेंदु हरिश्चंद्र एवं उनके समसामयिक साहित्यिकों के एकाध पत्र इधर-उधर प्रकाशित हुए हैं। उनमें ही उन लोगों के हस्ताक्षरों के दर्शन होते हैं अन्यथा वह भी मयस्सर नहीं होता।

स्वर्गीय पं० पद्मसिंह शर्मा द्विवेदी युग के माने हुए साहित्यकार थे। हिन्दी संस्कृत-उर्दू-बंगला-फारसी आदि का उनका ज्ञान अगाध था। उनकी तबियतदारी और सखुन फ़हमी प्रसिद्ध थी। संस्कृत के पुराने कवियों की कृतियों से सुन्दर-सुन्दर श्लोकों को चुनकर उनकी जोड़ के फारसी-उर्दू के शेरों को छांट-छांट कर प्रायः 'सरस्वती' में प्रकाशित कराया करते थे। शर्मा जी ने बिहारी सतसई की जो टीका लिखी है उसमें भी उनकी यह खूबी साफ़-साफ़ दिखाई पड़ती है। उनका हिन्दी-साहित्य सम्मेलन के सभापति पद से दिया गया भाषण और उत्तर प्रदेशीय हिन्दुस्तानी एकेडमी द्वारा प्रकाशित "उर्दू-हिन्दी-हिन्दुस्तानी' नामक पुस्तक उनकी शैली और स्वभाव के प्रत्यक्ष प्रमाण हैं।

क० मुं० हिन्दी तथा भाषाविज्ञान विद्यापीठ, आगरा विश्वविद्यालय, आगरा ने गत वर्ष पंडित पद्मसिंह शर्मा जी का सारा संग्रह उनके कुटुम्बियों से खरीद लिया है। उस संग्रह में हिन्दी, उर्दू, संस्कृत, बंगला, अंग्रेजी आदि की मुद्रित पुस्तकों, पत्र-पत्रिकाओं के अतिरिक्त, उनके पांडुलेख और उनके नाम आए हुए पत्रों का एक अच्छा संग्रह भी है। संग्रह में लगभग २०० व्यक्तियों के पत्र हैं।

इस संग्रह में शर्मा जी के समय के अनेक साहित्यिक तथा उनके कुटुम्बी और सम्बन्धियों के पत्र भी सम्मिलित हैं। इनमें से बहुत से पत्र तो कई दृष्टियों से अपना विशेष महत्त्व रखते हैं। और आज के साहित्य एवं साहित्यकारों पर भी विशेष प्रकाश डालते हैं। इसी तथ्य को सामने रखकर इन पत्रों को भारतीय साहित्य में क्रमशः प्रकाशित किया जायगा। इससे पाठकों को जानकारी भी प्राप्त होती जायगी और पत्रों का प्रकाशन भी होता जायगा। कालान्तर में यदि आवश्यकता प्रतीत हुई तो, इन्हें पुस्तकाकार भी प्रकाशित कर दिया जायगा। इस कड़ी मे 'कालक्रमानुसार' पं० नाथूराम शंकर शर्म्मा के पत्र प्रकाशित किए जा रहे हैं।

इन पत्रों के प्रकाशन में इस बात का विशेष रूप से ध्यान रखा गया है कि अपने पत्रों में स्वर्गीय नाथूराम शंकर शर्म्मा जी ने जिस प्रकार की अक्षरी का व्यवहार किया था वह ज्यों की त्यों छापी जाय, जिससे पाठकों को पत्रों की मूल भाषा का यथार्थ परिचय मिल जाय।

## पद्मसिंह शर्मा पत्र-संग्रह

पत्र सं० १ ओ३म्

हरदुआगंज
१४-६-१६०६ ई०

श्रीमन्महोदय जी—नमोनमस्ते !

६ का कृपा पत्र पाया—मैं आत्मश्लाघा का भूखा नहीं हूँ और न कविता के द्वारा जीविका चलाने की इच्छा रखता हूँ—केवल हिन्दी साहित्य का गौरव बढ़ाना अभीष्ट है—जब प्रत्येक वस्तु एक ही भाव की आँकी जाती है तब खरीखोटी का विवेक गिर जाता है जहाँ अन्धेर होता है वहाँ न्याय नहीं रहता—बस इसी बात का झींकना है— अस्तु जो कविता परोपकारी को लिखी थी वह ४०० लायनों में पूरी हुई है अर्थात् १०० पद्य हैं इसका नाम 'हिन्दू की हरगंगा' है। इसके कुछ पद्य पहले आर्यमित्र में निकले थे उसी को चौगुना कर दिया है बड़ी मजेदार है—यह जाड़ों में माघ की संक्रान्ति पर निकलेगी—अन्धेरखाता निकलने पर और कविता भेजी जायगी—कविताओं का संशोधन कर रहा हूँ—द्विवेदी जी के अनेक बार माँगने पर तथा आपके कहने से मेंने अपना चित्र भेजा था परन्तु वह सरस्वती में अब तक नहीं निकला—पूछने पर मालूम हुआ कि वह ५ चित्रों के ग्रूप में छपकर कविता कलाप में निकलेगा—यदि वह कहीं भी न निकले तो मुझे उसका रंज न होगा—परन्तु क्यों माँगा और क्यों ऐसा हुआ—खैर अब आप भारतोदय को सुसज्जित कीजिये परमेश्वर अच्छा ही करेगा।

नाथूराम शंकर
शर्म्मा—शंकर

पत्र सं० २　　ओ३म्

१६-२-१९०८ ई०

श्री मन्ममहोदय जी—(नमस्ते)

१२-२-८ का कृपा पत्र मिला—मैं एक साधारण मनुष्य हूँ—यह आपकी योग्यता का गौरव है जो मुझ ऐसे महातुच्छ को भी आदर देने को सङ्कुचित नहीं बड़ों में बड़ाई न हो तो बड़े ही किस बात के आपके पत्र ने मुझको प्रसन्न किया है—मैं परोपकारी का उपकार तो नहीं कर सकता परन्तु उसकी सेवा में कुछ कविता रूपी भेंट अवश्य दे सकता हूँ—भला आप महात्मा मुन्शीराम जी-पं० बंशीधर जी—ऐसे सुयोग महानुभावों की आज्ञा पालन न करने का साहस मुझ में कहाँ है—विषय सूचना दीजिये उस पर कविता लिखकर अवश्य भेजूंगा और यथावकाश भेजता ही रहूँगा।

पुनः निवेदन　　सेवक

नाथूराम शङ्कर शर्मा कवि—

हरदुआगंज अलीगढ़

एक कापी परोपकारी भेजकर अनुग्रहीत कीजिये—मैं उसे देखकर यथोचित कविता लिख सकूँगा—परोपकारी आपकी सम्पादकता से अवश्य ही अच्छा हो जायगा। मैं आपको श्री पं० महावीर प्रसाद जी शर्मा द्विवेदी जी के कथनानुसार जानता हूँ।

ना० शं० श०

पत्र सं० ३　　ओ३म्

श्री मन्महोदय जी (नमस्ते)　　२२-२-१९०८ ई०

श्रीमान का कृपा पत्र और २ अङ्क परोपकारी के मिले। परोपकारी-मासिक पुस्तकों के रूप में आकर अवश्य सुपाठ्य हो जायगा। आपकी सम्पादकता उसको सर्वप्रिय बना देगी ऐसी आशा है—मैं आपकी आज्ञानुसार कविता लिखकर भेजूंगा और यथावकाश भेजता रहूँगा मेरे मन में कुछ ऐसे सन्देह भर गए हैं जिनका यथोचित निवारण अब तक नहीं हो सका। यदि वे बातें प्रश्नोत्तर रूप से प्रकट कर दी जावें तो एक अद्भुत आन्दोलन होने लगेगा। कुछ दिनों के पश्चात् मैं अपने सारे सन्देह आपकी सेवा में प्रकट करूँगा उनका समाधान आर्य विद्वानों के द्वारा होता रहैगा और परोपकारी भी सुयश भाजन बनेगा। श्री० पं० महावीर प्रसाद जी शर्मा द्विवेदी जी को मेरा नमस्ते कहिए उनसे जानकर कुशल सूचना दीजिए। बड़ी कविता होली तक भेजूंगा छोटी कविता अभी दे सकता हूँ।

नाथूराम शङ्कर शर्मा

हरदुआगंज

पत्र सं० ४　　ओ३म्

श्री मन्महोदयजी—(नमस्ते)　　७-३-१९०८ ई०

३-३ का कृपा कार्ड मिला कविता का पहला गीत छोड़कर बाकी को छपा ही दीजिए—३ गीत उसमें मिलाने को ९ ता० को भेजूंगा—गीतों की तर्ज को गायक तथा पद्य

विशारद जान लेते हैं अनभिज्ञ समझाने से भी नहीं समझता आर्य्य कवि अधिकतर तुक्कड़ हैं और गायक भी उनमें कम हैं इसलिये केवल आप सरीखे सुयाग्यों की सेवा में कविता को आदरार्थ भेजना अभीष्ट है—इस ढिठाई को अभिमानमूलक न समझिये— एक अच्छी कविता लिख रहा हूँ शीघ्र भेजूंगा-गुरुकुल जाने का विचार नहीं है ।

सेवक—

नाथूराम शङ्कर

डा० हरदुआगंज

पत्र सं० ५ ओ३म्

२०-४-१९०८ ई०

श्रील कविकुलकैरव कलाधर जी (नमस्ते)

कृपा कार्ड मिला—परोपकारी भी पढ़ा—आपकी योग्यता से परोपकारी अपने नाम को चरितार्थ करेगा—परोपकारी के लिये जो कविता लिखी है उसका नाम है—परोपकारी क्या है—वानगी देखिये—

मलिन्दपाद (मुसद्दस)*

साहित्य का सुधाकर मण्डन महेश का है ।
प्रख्यात पक्षपाती ब्रह्मोपदेश का है ॥
संसार का सँगाती सेवक स्वदेश का है ।
प्यारा प्रतापशाली प्यारे प्रजेश का है ॥
आदर्श हैं दया का आनन्दवन बिहारी ।
शङ्कर सरस्वती का वर हैं परोपकारी ॥१॥

ऐसे २० बन्द लिखने का विचार है १५ बन गये हैं २८ तक अवश्य भेजूंगा—घर के झगड़ों से बड़ी कठिनाई झेलकर समय बचाया जाता है नहीं तो इतना काम दो दिन का है । सरस्वती की सेवा करनी ही पड़ती है—गुरुकुल की आज्ञा भी कुछ कमजोर नहीं है ।

(लेखक)

नाथूराम शङ्कर शर्म्मा हरदुआगंज

गुरुकुल को यह नमूना भेजा था—

लड़को लोकाचार चाहते हो तुम जैसा ।
अपना भी बरताव करो ऋजु बनकर वैसा ॥
जो तुमसे इस मूलमंत्र में भूल न होगी ।
तो सामाजिक शक्ति कभी प्रतिकूल न होगी ॥

उत्तर मिला है कि इससे भी कम कड़े शब्दों का प्रयोग करना चाहिये—जवाब दिया है कि बहुत अच्छा—(मई ?) में गुरुकुल को कविता भेजूंगा—आप भी उनको··········भेजिये—और आज्ञा हो सो शिरोधार्य है ।

---

* एक प्रकार की ६ चरण वाली कविता ।

पत्र सं० ६		ओ३म्

श्री मन्महोदय जी (नमस्ते)		२४-८-१९०८ ई०

२२ का कृपा कार्ड मिला—उर्मिला—पर कविता लिख रहा हूं द्विवेदी जी के २ चित्र रक्खे हैं उन पर भी कविता लिखूंगा—हिजड़ों की मजलिस–नामक निबन्ध पहुँचा होगा। उसे खूब सोच समझ कर समुचित होने पर परोपकारी में निकाल दीजिए—यदि इच्छा न हो तो २ दो अंकों में नहीं एक अंक में दे दीजिए--अषाढ़ का परोपकारी बहुत ही अच्छा है—वी. ऐन. वी. की जीवनी भी धड़ाके की हुई—खूब।

सेवक—नाथूराम शंकर शर्मा
हरदुआगंज

शेर

तंग दस्ती अगर न हो सालिक।
तनदुरुस्ती हजार न्यामत है ॥

मुझ को हर दो में से एक भी नसीब नहीं अतएव सारे काम मनोराज्य के समान फल शून्य रहते हैं द्विवेदी जी के चित्र और गुरुकुल के नमूने अभी तक पड़े हैं परमात्मा पुरा डालेगा—

नाथूराम शंकर शर्मा
हरदुआगंज

पत्र सं०—७		ओ३म्

१३-९-१९०८ ई०

श्रीमन्महोदयजी—(नमस्ते)

कृपा पत्र मिला—हिजड़ों की मजलिस आपको पसन्द तो आगई अब छपे या न छपे इसकी कोई चिन्ता नहीं—उर्मिला पर कविता लिख रहा हूँ--अलीगढ़ में कोई अच्छा फोटोग्राफर नहीं है तो भी आपकी और द्विवेदी जी की आज्ञा का पालन होगा आगरे जाकर तसवीर खिचवाने का विचार है नोम्बर के अङ्क में जा सकेगी—हरदुआगंज और आसपास के गाँवों में जाड़ा बुखार फैल रहा है फ़ीसदी ८० बीमार हैं अबकी परोपकारी बहुत ही अच्छा है—कृपा बनी रहै।

सेवक
नाथूराम शंकर शर्म्मा
हरदुआगंज

परोपकारी के लिये एक कविता लिखी है शीघ्र भेजी जायगी उर्मिला वाली कविता कार्तिक में निकल सकेगी—द्विवेदीजी के चित्रों पर भी लिखूंगा—मेरे योग्य कार्य से सूचना दीजिये—

पत्र सं० ८ ओ३म्

२०-९--१९०८ ई०

श्रीमन्महोदय पंडितकुलपुण्डरीकप्रभाकर पं० पद्मसिंह जी शर्म्मा सम्पादक परोपकारी (नमस्ते)

श्रीमान् का कृपा पत्र पाया—हिजड़ों की मजलिस आपको तथा अन्य भद्र पुरुषों को पसन्द आई वह सरस्वती और परोपकारी स्त्री पुरुषों ने त्याग दी अब कोई नपुंसक पत्र कहीं से निकलेगा तो उसके छपने का अवसर आ जायगा —हिजड़ों से मिलान करने वाली किसी पत्र की पालसी नहीं है। अतएव कुछ काल तक यह कविता आपके बक्स में मुकफ्फ़ल रहै ताकि फिर कभी हिजड़ों की हेकड़ी हुँकारने न पावे—जब आपकी किताब छपे तब मौका हो तो उसे भी किसी ठौर छपा देना नहीं तो नहीं सही—मेरी कोई शिकायत नहीं—द्विवेदीजी के चित्रों पर कविता लिख रहा हूँ—ये तीनों मय कविता के अक्तूबर में भेज दिये जावेंगे इनके साथ मैं भी अपना चित्र भेजूँगा एक चित्र आपकी भी भेट करूंगा—ये कवितायें उर्मिला से पहले पहुँचेंगी रसिकमित्र—एक मासिक पत्र कानपुर इंडियन प्रेस पं० मनोहरलाल के प्रबन्ध से निकलता है उसमें १ समस्या निकली थी उसकी पूर्ति पर एक घड़ी मुझे मिली है यह पत्र तुक्कड़ों का मनोरंजन मात्र है आपके देखने योग्य नहीं है—तो भी एक अङ्क भेजा जाता है। मैं अपनी कविताओं का पारिशोधन दिवाली बाद करूंगा।

सेवक

नाथूराम शंकर श०

हरदुआगंज—अलीगढ़

जिसके मारे रामचन्द्रजी रहे न सीता के भरतार—इसका भावार्थ यह है कि एक समय श्री० राम ने पूछा था कि मेरी कोई निन्दा तो नहीं करता है इसके उत्तर में एक हिजड़े ने धोबी की लड़ाई की कहानी सुनाकर महाराजा राम को शोकित किया था और रामचन्द्रजी ने लोकापवाद से डरकर सीता को त्याग दिया—इस त्याग का कारण नपुंसकता ही हुई—कृपा बनी रहै भारत की सुदशा पर परमात्मा कृपा करे ताकि इसे हिजड़े न डरा सकें—हा···हा···हा···हिजड़े बड़े जोरदार निकले।

नाथूराम शंकर शर्म्मा

पत्र सं० ९ ओ३म्

कृपासागर जी (नमस्ते)

७-१०-१९०८ ई०

इस प्रान्त में जाड़ा बुखार बड़े जोर पर है घर-घर बीमार पड़े हैं कुछ दिनों से लोग मरने भी लगे हैं। इस मजबूरी ने सारे काम बन्द कर रखे हैं। श्रीमान की सेवा भी मुख्य कार्य है वह भी नहीं हो सका क्षमा कीजिये शरीर बना रहा तो अवश्य आज्ञा पालन करता रहूँगा।

सेवक—

नाथूराम शंकर शर्म्मा

हरदुआ गंज

पत्र सं० १०　　ओ३म्

श्री मन्महोदयजी नमस्ते　　२४-१०-८ ई०

(दिवाली की भेंट स्वीकार कीजिये)

( घनाक्षरी छन्द )

प्राणायाम आदि योग साधनों की साधना से,
चंचलता चित्त की अवश्य रुक जायगी।
चित्त की अचंलता ध्यान धारणा के साथ,
सामाधिक संयम की ओर झुक जायगी।
संयम के द्वारा तत्व ज्ञान की गवेषणा में,
लौकिक विभूतियों की लीला लुक जायगी।
"शंकर" विवेक जन्य ज्ञान से मिलेगी मुक्ति,
बन्धन विधायिका अविद्या चुक जायगी ॥१॥

आप इसे परोपकारी में प्रकाश कर दीजिये

एक पत्र भेजा था पहुँचा होगा—परोपकारी के लिए एक अच्छी कविता बन चुकी है शीघ्रतर भेजी जायगी— जाड़ा बुखार पिण्ड नहीं छोड़ता। आदमी मर रहे हैं जीते अधमरे हो रहे हैं दिवाली नाममात्र को होली।

लेखक नाथूराम शंकर शर्म्मा
हरदुआगंज

पत्र सं० ११　　ओ३म्

२१-११-१९०८
हरदुआगंज

श्रीमन्महोदय जी—(नमस्ते)

१७ का कृपा कार्ड मिला—आपकी बीमारी का हाल पढ़कर बड़ा दुःख हुआ परमात्मा शीघ्रतर नीरोगता प्रदान करे—मैं अपनी कहानी क्या सुनाऊँ—ज्यों त्यों कर प्राण बचे हैं—एक वृद्धा परलोक को पधार गई शेष कुटुम्ब जाड़े बुखार की वेदना से शक्ति-शून्य होकर दिन काट रहा है—इस प्रान्त में मलेरिया ने धूम मचादी है किसी को भी चैन नहीं—परोपकारी के लिये एक लम्बी कविता लिखी है ७० पद्य हो गये १०० में समाप्त होगी आज्ञा हो तो ५० पद्य भेज दिये जावें—श्री द्विवेदी जी की आज्ञा का पालन अभी नहीं हो सका—ऊर्मिला भी अधूरी पड़ी है यदि जीता रहा तो वर्षारम्भ में छपेगी—श्री० द्विवेदीजी महाराज को समझा दीजिये कि वे आर्य्यमित्र पर मुकद्दमा न चलावें आपस की फूट का फल अच्छा न होगा।

सेवक
नाथूराम शंकर शर्म्मा—

गोपीचन्द का क़िस्सा मिल गया हो तो भेज दीजिये—मेरे योग्य कार्य हो सो लिखिये—आप परोपकारी को ठीक समय पर निकाला कीजिये—उसके चाहक चाहते हैं कि वह पाक्षिक हो जाय फिर मासिक भी देर से मिले यह क्या।

सेवक—नाथूराम शंकर शर्मा
हरदुआगंज

पत्र सं० १२ ओ३म्

श्री मन्महोदय जी—(नमस्ते) ता० २३—१—१६०६ ई०

२०—१—०६ ई० का कृपा कार्ड मिला पढ़ कर प्रसन्नता हुई—रसिक मित्र में जो 'भारत सुधारेंगे' पर प्रचण्डप्रणपंचदशी नाम की कविता छपी है उसे भी अपने संग्रह में ले लीजिये—सम्पादक सरस्वती की सेवा में सन्मुखोद्‌गार नाम की एक बहुत ही बढ़िया कविता भेजी गई है उसे श्री० द्विवेदी जी महाराज काट छाँटकर छापना चाहते हैं पूरी छपने से आपकी महावीरता इनकार करती है—खैर अब आप कहां जाकर क्या करेंगे कब तक स्थान प्राप्त होगा सो सब लिखिये मैं श्रीमान की आज्ञा का पालन अवश्य करूंगा—परोपकारी के लिये जो कविता लिखी थी वह मौजूद है आपको दी जायगी परोपकारी को नहीं—क्या जालंधर जाने का इरादा नहीं रहा। एक कार्ड—सम्पादक अनाथरक्षक का आया है उसमें आपकी प्रतीक देकर कविता मांगी है क्या दी जाय—

सेवक—

नाथूराम शङ्कर शर्म्मा

हरदुआगंज

पत्र सं० १३

ओ३म् १२-४-१६०६ ई०

श्री मन्महोदय जी—नमस्ते

कृपा कार्ड मिला था ५-४-०६ को भारतोदय के लिए—भारतोदय—नामकी एक कविता रजिस्टर्ड लिफ़ाफे में श्री सेवा में भेजी थी उसकी पहुँच आज तक नहीं मिली अतएव सूचित उक्त कविता मिली कि नहीं—सब को नमस्ते।

सेवक—

नाथूराम शंकर शर्म्मा

हरदुआगंज

पत्र सं० १४ ओ३म्

हरदुआगंज

श्री मन्महोदय जी—(नमस्ते) ३०—५—०६

मुरादाबाद की यात्रा सूचक कृपा कार्ड मिला था। "भारतोदय" छप गया होगा परन्तु निकला नहीं।

पौराणिक कहानियों के पद्यानुवाद 'सरस्वती' में सादर निकाले जाते हैं परन्तु मेरी कविता बिना तोड़ फोड़ तथा काट छाँट के कभी नहीं निकलती इस कारण मनोत्साह शिथिल सा होने लगा है। यदि यही दशा रही तो पद्य रचना को खैर बाद कहकर मौन होना पड़ेगा।

आर्यसमाज में सब धान २२ पंसेरी बिकही रहे हैं, अच्छी बुरी कविता को कोई पूछता ही नहीं। केवल आप सरीखे दो चार महात्माओं के भरोसे पर कोई कुछ भले ही करलो। अस्तु

'भारतोदय' छप गया हो तो शीघ्र भेजिये। महाविद्यालय के समस्त विद्वानों को नमस्ते—

सेवक—

नाथूराम शङ्कर शर्म्मा

'प्रियम्वदा' नाम की मासिक पत्रिका कोंढ़ जिला मिरजापुर से निकलती है उसमें मेरी भी कविता छपने लगी है वह आपके पास भारतोदय के बदले में आया करेगी मैंने पं० महावीर प्रसाद मालवीय वैद्य सम्पादक प्रियम्वदा को लिख भेजा है।

ना० शं० श०

पत्र संख्या १५    ओ३म्

हरदुआगंज

श्री मन्महोदय जी—(नमस्ते)    ५—६—०९ ई०

भारतोदय ! देखा—परमात्मा उसे दीर्घजीवन प्रदान करे—टाइटिल-परोपकारी का होना चाहिये—संस्कृत लेख सानुवाद छपा करें। लेख अनूठे निकलें—अक्षर मनोहर हों—आप सब ठीक कर लेंगे—जून की सरस्वती में मेरा मनोराज्य छपा है—५२ के ४९ पद्य छपे हैं कई पद्य ऐसे होगये हैं कि उनमें वह भाव ही नहीं रहा जो रक्खा गया था। श्री द्विवेदी जी की दया का फल है। अब अनुत्साह की मात्रा बढ़ती ही जाती है। मेरा मनोराज्य भारतोदय में निकलना चाहिये ऐसा न होने से उसका चमत्कार न होगा। आज्ञा आने पर श्रीमान् की सेवा में भेजा जायगा। भारतोदय का १ अङ्क और भेज दीजिये पहला आया हुआ एक मित्र की नज्र कर दिया है अपनी कविता का परिशोषन कर रहा हूँ आप विश्वास रखिये वह शीघ्र ठीक हो जावेगी श्रीमान् पं० भीमसेन जी शर्म्मा आदि महाविद्यालय के विद्वानों की सेवा में नमस्ते।

सेवक—

नाथूराम शङ्कर शर्म्मा "शङ्कर"

पत्र सं० १६    ओ३म्

श्री मन्महोदय पं० पद्मसिंह जी शर्मा,    ५-७-१९०९ ई०

सम्पादक भारतोदय नमस्ते—२-७-०९ का कृपा कार्ड मिला।

( अन्धेर खाते १९ वाँ पद्य )

मदन देवता के अंकुश में कील कड़ा लटकालो।<br>
नङ्ग नाच नाचो बाबाजी चिमटे को चटकालो।<br>
इ० अं० में अं० चा० चमकालो ॥१९॥

भारतोदय का २ अङ्क आने पर तीसरी कविता भेजी जायगी। श्री द्विवेदी जी का कृपा पत्र भी आपके लेखानुसार आया था कृपा बनी रहे।

सेवक नाथूराम शंकर शर्म्मा<br>
हरदुआगंज

मेरे एक मित्र ने शङ्कर सरोज आर्य्य समाज बरौठा से मोल ले लिया है वह उसे कुछ बढ़ाकर छपावेंगे—आजकल में उसी काम को कर रहा हूं अबकी बार शङ्कर [स]रोज बड़ा और सर्वप्रिय होकर निकलेगा। सारे पद्य प्रचलित भाषा में रहेंगे खण्डन भी अनुचित न होगा।

पत्र सं० १७ ओ३म्

श्री मन्महोदय सम्पादक जी (नमस्ते) १६—७—१६०६

श्रीमान का कृपापात्र तथा ४ अन्धेरखाता २ कृ० स्तु० पाकर प्रसन्नता हुई कविता संग्रह लिखा जा रहा है। यदि आप अन्धेरखाते की भाँति प्रत्येक लेख औरों को दे दिया करेंगे तो संग्रह का ह्रास ही होता रहेगा—शङ्कर सरोज दुबारा छपेगा इसका संशोधन ऐसा न होगा जो दूसरों को काया पलट सा जान पड़े कुछ बड़ा अवश्य होगा संग्रह के लेख ४ या ५ इसमें छपेंगे। शं० स० को यदि आप छपादें तो शुद्ध और बाकायदा छप सकता है। प्रूफ़ देखने की तकलीफ न हो तो शं० स० मय उजरत प्रेस भिजवाया जावे। श्रावण के भारतोदय को (रक्षा-बन्धन) आल्हा भेजी जा सकती है परन्तु वह एक बार 'साहित्य सरोज' में मेरठ से निकल चुकी है अरसा १० साल के करीब हुआ होगा कविता बड़ी मजेदार है (बायस विजय) काकोलूकीयतन्त्र का पद्यात्मक भावानुवाद आल्हा छंद में निहायत उम्दा बनाकर ४ अङ्क में छपने को अवश्य भेजा जायगा इसे पढ़कर पाठक प्रसन्न होंगे।

नाथूराम शंकर शर्म्मा
हरदुआगंज

पत्र सं० १८

ओ३म् १८-७-१६०६ ई०

श्री मन्महोदय जी (नमस्ते)

एक-शङ्कर सरोज—श्री० सेवा में भेजा है ठा० खमान सिंह वर्म्मा मंत्री आर्य्य समाज बरौठा हरदुआगंज ने कहा है कि इसकी समालोचना भारतोदय में छपा दीजिए अतएव प्रार्थना है कि शंकर सरोज की समालोचना लिख दीजिए मूल्य फ़ी कापी।) डाक व्यय अलग लगेगा—दुबारा छपने की बात आलोचना में न आने ताकि बिकना बन्द न हो सके।

सेवक—
नाथूराम शंकर शर्म्मा

शंकर सरोज के मिलने का पता—पं० उमाशंकर शर्मा—पुस्तकाध्यक्ष बरौठा हरदुआ गंज मु० हरदुआ गंज—अलीगढ़

पत्र सं १६

ओ३म् २४-७-१६०६ ई०

श्री मन्महोदय सं० भा० जी (नमस्ते)

कृपा कार्ड मिला ४ गीत एक लावनी तैयार हैं यह पञ्चक भारतोदय के ३ अङ्क में छपने को शीघ्र भेजा जायगा यह कविता बड़ी रंगीली और भाव भूषिता है आप को

अवश्य पसन्द आवेगी—वायस विजय काको लूकीय तन्त्र का भावानुवाद ४ अङ्क में दिया जायगा यह आल्हा है—

हिजड़ों की मजलिस ५ अङ्क में छप जायगी इसे दुबारा लिखकर भेजूंगा जो आपके पास है उसे न छपाइये—रक्षा बन्धन—भारतोदय के योग्य नहीं है इसी से नहीं भेजा—भारतोदय में अभी बढ़िया लेख नहीं निकले इसका ध्यान रखिये—एक एक खास वजह से शङ्कर सरोज के छपने में कुछ रुकावट होगई है अतएव यह देर से छपेगा—शङ्कर पद्यपुष्पावली यह नई किताब शीघ्र तैयार हो जायगी यह वही आपका बनाया हुआ संग्रह है शंकर सरोज इसकी बराबरी कभी नहीं कर सकेगा आप इसे छपाने का इन्तजाम कीजिये—गुरुकुल कांगड़ी से ब्रह्मचारी इन्द्रदत्त मंत्री साहित्य परिषद् एक कविता सरस्वती सम्मेलन में सुनाने को मांगते हैं इसमें आपकी क्या राय है रङ्क-रोदन ५-८-०६ को द्विवेदी की सेवा में भेजा जायगा—उसी छन्द में भारतोदय के लिये भी कविता लिखूंगा—आपका पत्र खूब चमकेगा भरोसा रखिये।

सेवक—
नाथूराम शंकर शर्म्मा
हरदुआ गंज

पत्र सं० २०  ओ३म्

१४—१०—१६०६ ई०

श्रीमन्महोदय सम्पादक भा० द० जी (नमस्ते)

बहुत दिनों में श्रीमान का कृपा पत्र मिला—वायस विजय—का शेष भाग अविकल रूप से छपेगा यह ख़ुशी की बात है—भारतोदय के लिये वह कविता लिखूंगा जिसके लिये आपने तीन बार ताकीद की है परन्तु वह दिसम्बर में निकल सकेगी। यदि आज्ञा हो तो नोम्बर के लिये दुरुस्तशुदा हिजड़ों की मजलिस भेज दी जाय अथवा कोई और कविता दी जायगी। अपना फ़ोटू भेजूंगा। श्री० पं० नरदेव जी शास्त्री तथा पं० भीमसेन जी आदि की सेवा में प्रणाम पहुँचे।

लेखक नाथूराम शंकर शर्म्मा
हरदुआगंज

विद्वन्मण्डली मेरी कविता पर विचार करके अथवा साहित्य सम्बन्धी परीक्षा लेकर अपनी ओर से प्रशंसापत्र या सरटीफ़िकेट दे सकती है कि नहीं ? यदि दे सकती है तो कविता सम्बन्धी प्रश्नों का उत्तर लेख द्वारा तलब फरमावे और मेरी कविता पर बिला रूरियायत के विचार करे—मैं (आर्य्य कवि) कहलाने योग्य हो सकता हूँ कि नहीं !

ना० शं० श०

पत्र सं० २१

हरदुआगंज

ओ३म्  २२-११-१६०६ ई०

श्री मन्महोदय जी (नमस्ते)

२०-११-०६ ई० का कृपा कार्ड मिला—जो आशय आपने प्रकट किया है यहां उसका स्वप्न में भी संकल्प नहीं हुआ और न किसी खल रसना का विष चढ़ा—आपको

किसी धूर्त ने धोखा दिया होगा आप हम लोगों के सन्मित्र हैं—भारतोदय—अब तक नहीं निकला यह ठीक नहीं है पत्र का समय पर न निकलना न निकलने से भी बुरा है—कृपा बनी रहे—म० वि० के समस्त विद्वानों को नमस्ते—

सेवक—

नाथूराम शंकर शर्म्मा

(खुशखबरी)

बाबू प्यारे लाल जमींदार बरोठा गुरुकुल महाविद्यालय को बड़ी सहायता देना चाहते हैं २०० से ५०० तक के पुस्तक देने को मुझ से कहते थे—विद्वन्मण्डली के मिम्बर भी बनेंगे—उनको पत्र लिखिये (पता) बाबू प्यारे लाल जमीदार बरोठा—विद्यासागर डिपो० मु० अलीगढ़—बाबू साहिब ज्वालापुर भी आवेंगे।

ना० शं० श०

पत्र सं० २२ ओ३म्

८-३-१९१० ई०

श्री मन्महोदय जी—नमस्ते !

मेरा महत्त्व सरस्वती में पढ़ा होगा। उसमें ४० पद्य थे एक नहीं छापा। वह पद्य यह है—

गाणपत्यमतमान, रहे थे मेरे घर के।
मैं भी गुणगणगान, करेथा लम्बोदर के॥
शिशुता में वह बाल, बिलास न छोड़ा मैंने।
उमगा यौवनकाल, दम्भघट फोड़ा मैंने॥

लेखक—नाथूराम शंकर शर्म्मा

हरदुआगंज—

उत्सव में आने का पूरा इरादा है—आपके मित्रों को धन्यवाद—उनकी योग्यता है जो मुझ तुच्छ को अच्छा कवि मानते हैं—आपके लेखानुसार मसाला (कविता) लाऊँगा। महाविद्यालय के विद्वानों को मेरा प्रणाम—उचित कार्य से सूचित कीजिये।

आपका सेवक—

ना० शं० श० "शंकर"

पत्र सं० २३ ओ३म्

हरदुआगंज

श्री मन्महोदय पं० पदमसिंह जी शर्म्मा स० भा० (नमस्ते) २२—३—१०

श्री मान् के कृपा कार्ड तथा निमन्त्रण पत्र पाये आपके इस औदार्य के लिये केवल धन्यवाद मात्र से सन्तोष न पाकर यह एक नवीन दोहा भेंट करता हूँ—

दोहा—आलमगीर दरिद्र ने घेरा सुकवि समाज।
शङ्कर भूषण को मिला पद्मसिंह शिवराज॥१॥

उपोद्‌घात का परिशिष्ट इस लेख में जो कुछ भरा गया है उसको बड़ाई के लिये मेरे पास मसाला नहीं है यह तो आपको इलहाम के जरिये से हजरत अशराफ़ील ने अता किया मालूम होता है अगर मेरा खयाल सही है तो इस मजमूनी सूर से बनावटी दुनियाँ पर जरूर ही क़यामत नाजिल होगी। एवमस्तु

दोहा—विधि वनिता कालीब ने पद्‌मसिंह बन जाय।
मारे मद महिषेश को जियें देव सुख पाय ॥१॥

अनमोल शिक्षा--इस नाम की कविता लिख रहा हूँ यह नई दुनियाँ का दृश्य आपको देखना दिखाना पड़ेगा इसका प्रत्येक पद्य एक लम्बी टीका के बिना अपने मर्म को यथार्थ रूप से नहीं बतावेगा—टीकाकार आप ही को होना पड़ेगा मैंने ऐसी कविता और नहीं लिखी बालक विलाप आपके परिशिष्ट के सम्मुख बच्चों का सा खेल मात्र हो गया अतएव वह रद्दी कर दिया महाविद्यालय के समस्त विद्वानों की सेवा में मेरा सविनय प्रणाम पहुँचे वे अपनी कृपा का प्रसाद मुझे देवें—तीन चार दिनों से मेरी तबिअत खराब हो रही है उत्सव में आने का पक्का इरादा है परन्तु यदि मैं न आ सका तो उपालम्भों के बाणों का लक्ष्य न बन जाऊँ यह बीनती है—महाविद्यालय तथा वि० स० की ओर से मुझ अयोग्य मनुष्य को स्व० प० मिलेगा यह मेरे भाग्योदय की पराकाष्ठा है—आपके तलब करदा अजमून साथ लाऊँगा अगर बदक़िसमती से शामिल जलसा न हो सका तो बजरिये डाक अशियाये मतलूबा इरसाल खिदमत करूँगा और खिदमात का बजा लाना तो मैंने अपना फ़र्ज ही समझ लिया है।

सेवक—
नाथूराम शङ्कर शर्म्मा
हरदुआगंज

२६ को यहाँ से चलकर २७ की सुबह को वहाँ पहुँचने का इरादा है।

पत्र सं० २४　　　　ओ३म्

श्री मन्महोदय पं० पद्‌मसिंह जी शर्म्मा स० भारतोदय (नमस्ते)　　७--४--१०

गुरुकुल महाविद्यालय में न आने का अपराध क्षमा कीजिये। भीड़ का कारण नहीं मुझको बुखार आगया था और वह ३१ को बन्द हुआ था—आपका कृपा कार्ड पाकर मैं उसी दिन बम्बई को चला था आज यहाँ आ गया हूँ आपका कार्ड उपालम्भ का भी सरताज मिला मैं आपका आज्ञा पालक हूँ—जानबूझकर न आया ऐसा ख्याल न कीजिये—स्वर्णपदक (मैडिल) आ० वि० सभा ने मुझे प्रदान किया है यह बड़े गौरव-गुणज्ञता का परिचय दिया है। परन्तु मुझ तुच्छ मनुष्य पर इतनी दया की है यह आपकी कृपा का फल है मैं चि० के उपनयन में अवश्य आता परन्तु इस समय तक यहाँ से वापिसी न होगी। महाविद्यालय के समस्त महानुभावों की सेवा में नमस्ते। कविता आपने पढ़ी होगी कहिये कैसी है।

आपका सेवक—
नाथूराम शङ्कर शर्म्मा 'शङ्कर'

पत्र संख्या २५ ओ३म्

हरदुआगंज

श्री मन्महोदय पं० पद्मसिंह जी शर्मा—(नमस्ते) ३१–५--१०

श्रीमान् का पत्र कई दिनों से नहीं मिला। "रसकुसुमाकर" व वेणीसंहार नाटक श्री पं० भीमसेन जी शर्मा शास्त्री द्वारा आपको मिले होंगे।

महाविद्या का बिवाह संस्कार मि० आषाढ़ कृष्ण सप्तमी को निश्चय हुआ है, इसकी सूचना पूर्व भी दे चुका हूँ, अब फिर भी स्मरण दिलाता हूँ कि आपको सब काम छोड़कर उक्त उत्सव में कई दिन पूर्व से ही तशरीफ़ लाना होगी।

आप एक लग्न पत्रिका संस्कृत भाषा में ऐसी लिख भेजिये जो संस्कृत भाषा के नियमों के अन्तर्गत होने के अतिरिक्त बड़ी मनोरंजक भी हो। यह कार्य ज्येष्ठ शु० ३ से पूर्व ही होना चाहिये क्योंकि लग्न पत्रिका तीज को ही भेजी जावेगी।

'भारतोदय' मिल गया, एक अङ्क और भी भेज दीजिये। महाविद्यालय के समस्त विद्वानों को नमस्ते कहिये। सेवक—

नाथूराम शङ्कर शर्म्मा

पत्र सं० २६ ओ३म्

५-६-१६१० ई०

श्री मन्महोदय जी—(नमस्ते)

क्या भारतोदय का अस्त शुक्र की आँख फोड़कर देवाचार्य बृहस्पति की भी टाँग तोड़कर दर्शन देने की कृपा करेगा? इस लेट पर लोटपोट होकर देर भी देर तक खिलखिलावेगी।

गर्भरण्डारहस्य यह, एक नई और लम्बी कविता इन्तज़ार में टकटकी लगा रही है मगर हुजूर फ़ैज़ गंजूर तशरीफ़ ही नहीं लाते। अब कहिये क़लम किस उम्मेद पर काले आँसू वहावे। कृपा बनी रहे। सब विद्वानों को नमस्ते। यहाँ सब सानन्द हैं।

लेखक

नाथूराम शंकर शर्म्मा

हरदुआगंज

समालोचना

# भोजपुरी लोक-गाथा

यह ग्रंथ 'प्रयाग विश्वविद्यालय द्वारा डी० फिल० के लिए स्वीकृत प्रबंध' है। हम विचार-विमर्श के लिए इसको तीन भागों में बाँट कर देख सकते हैं।

पहला भाग—'सैद्धान्तिक' है—इसमें भूमिका और अध्याय १ को मिलाकर २०+४४=६४ पृष्ठ हैं।

दूसरा भाग—इसमें भोजपुरी लोक-गाथाओं का परिचय तथा अध्ययन है। इसमें २, ३, ४, ५, ६ अध्याय आयेंगे। यह पृष्ठ ४६ से २०४ पृष्ठ तक चलता है।

तीसरा भाग—इसमें भोजपुरी लोक गाथाओं में मिलने वाले कुछ सांस्कृतिक तत्वों का निरूपण किया गया है। यह निरूपण ७, ८, ९, १० अध्यायों में पूरा हुआ है, पृ० २०५ से २५३ तक।

इसमें सन्देह नहीं कि 'भोजपुरी लोक-गाथाओं' पर यह प्रथम और कुछ विस्तृत अध्ययन है। इसमें एक साथ ९ भोजपुरी लोक-गाथाओं पर एक अध्ययन हमें मिल जाता है। लेखक ने इन गाथाओं के संग्रह में अवश्य ही काफी श्रम किया होगा। इन गाथाओं के अध्ययन के लिए लेखक ने लोक-गाथा के सिद्धान्तों का भी पर्याप्त अध्ययन किया है और देशी-विदेशी अनेक विद्वानों के मतों को हृदयंगम किया है। उन्हें उसने इस पुस्तक में प्रस्तुत भी कर दिया है। लोकगाथाओं का अध्ययन करते समय उसने उनके विविध रूपान्तरों को भी दिया है। इससे एक ही लोकगाथा के विविध रूपान्तरों का हमें पता चल जाता है। इन गाथाओं की ऐतिहासिकता पर भी साथ-साथ विचार किया गया है, उनमें आये पात्रों और स्थानों का भी परिचय, इतिहास तथा भूगोल की दृष्टि से, देने का प्रयत्न किया गया है। लेखक मुख्य पात्र या पात्रों के चरित्र पर प्रकाश डालना भी नहीं भूला है। इस प्रकार पर्याप्त उपयोगी सामग्री इस प्रबंध में लेखक ने सँजो दी है। हाँ, यहाँ कुछ बातों की ओर ध्यान आकर्षित किया जाता है:—

---

लेखक—डा० सत्यव्रत सिन्हा, एम० ए०, डी० फिल०। प्रकाशक—हिन्दुस्तानी एकेडेमी, प्रयाग। संस्करण—प्रथम—१९५७। मूल्य—आठ रुपये। पृष्ठ संख्या—२+२०+३४७।

लोकगाथा के सैद्धान्तिक पक्ष को लेखक ने 'लोक-साहित्य' की परिभाषा से प्रारंभ किया है। आपकी परिभाषा यों है :

"लोक-साहित्य वह लोकरंजनी साहित्य है जो सर्व साधारण समाज की मौखिक रूप में भावमय अभिव्यक्ति करता है"। यह परिभाषा कई प्रकार से चिन्तनीय प्रतीत होती है। लोक-साहित्य को 'लोकरंजनी' मात्र न कहा जाता तो अच्छा था। क्योंकि 'लोक-साहित्य' की तो मानव की मूल प्रकृति से अत्यन्त गहरी संबद्धता है। फिर 'सर्व साधारण' समाज में 'सर्व साधारण' विशेषण कितना समीचीन है? 'सर्व साधारण समाज की भावमय अभिव्यक्ति' का क्या अर्थ हो सकता है? लोक-साहित्य को केवल 'मौखिक रूप' भी आज नहीं कहना चाहिये। इस परिभाषा में 'लोक-साहित्य' के कुछ अनिवार्य लक्षणों का समावेश होना चाहिये था।

कुछ आगे चल कर पाश्चात्य और भारतीय परिस्थितियों का अन्तर जिन आधारों पर दिया गया है वे भ्रान्त तो नहीं, इसकी परीक्षा नहीं की गयी। यह अन्तर न दिखाया जाता तो भी काम चल सकता था। "हमारे ऋषि-मुनियों का प्रभाव पहले गाँवों पर पड़ता था, उसके पश्चात् ही वह विचार अथवा दर्शन पौर निवासी विद्वत् मंडली में जाकर टीका-टिप्पणी पाकर परिष्कृत एवं प्रबल होता था। हमारे ग्राम एवं नगर जीवन में केवल यही अन्तर सदा से रहा है।" ऐसे कथनों की ऐसे प्रबन्धों में किंचित भी आवश्यकता नहीं। ऐसे कथनों से प्रकृत विषय पर कोई उपयोगी प्रकाश नहीं पड़ता, उलटे इनसे भ्रम पैदा होने की संभावना है; और अनजाने ही सही, उक्त वाक्य से, जिनका आदर होना चाहिये उनका अनादर भी हो गया है। ऋषि-मुनियों के विचार और दर्शन को परिष्कृत और प्रबल करने का अधिकार भारत में किस-किसने पौर-निवासी विद्वन्मंडली को दिया है? ऐसा कथन ऐतिहासिक सत्य से दूर, भ्रामक और ऋषि-मुनियों की वास्तविक प्रतिष्ठा को ठेस पहुँचाने वाला प्रतीत होता है। और क्या केवल यही अन्तर दोनों में अर्थात् गाँवों या नगरों में सदा से रहा है? संभवत: नहीं। अनुसंधानकर्त्ता विद्वान् को व्यास पीठ पर बैठकर व्यवस्था नहीं देनी चाहिये। उसे अपने प्रत्येक कथन के लिए प्रमाण देने चाहिये और उस विषय के विद्वानों के कथनों से उसे पुष्ट करना चाहिये। क्या ऐसे समाज-शास्त्रीय विषयों पर लेखक को अपनी ओर से अधिकारपूर्वक कुछ भी कहने का हक प्राप्त है?

"वास्तव में हमारा लोक-साहित्य संस्कृति की उच्चतम भावनाओं को अपनी अपरिष्कृत भाषा में सँजो कर रखता है।" क्या अन्य देशों के लोक-साहित्य में उच्चतम भावनाएँ नहीं? क्या लेखक ने अन्य भाषाओं के लोक-साहित्य का ऐसी तुलनात्मक दृष्टि से अध्ययन किया है? किया हो तब भी दंभ न दिखाना चाहिये। 'अपनी अपरिष्कृत भाषा'—किसकी? लोक की अपनी या लोक-साहित्य की अपनी! लोक और लोक-साहित्य के मर्म को जानने वालों को लोक-साहित्य की भाषा को अपरिष्कृत कहने में हिचकना चाहिये? लोक साहित्य की भाषा को सहज या स्वाभाविक जैसे विशेषण तो दिये भी जा सकते हैं, पर 'अपरिष्कृत' उसे नहीं कहा जा सकता। यहाँ तो बिना इस विशेषण के भी काम चल सकता था।

लेखक ने कुछ बातें मनोरंजक भी कही हैं। आपने लिखा है कि लोक-साहित्य हमें समाज के आर्थिक स्तर का भी विधिवत् ज्ञान कराता है। 'विधिवत्' कराता है या नहीं इसे तो छोड़िये, क्योंकि कोई भी कह सकता है कि लोक-साहित्य का संबंध 'विधिवत्' ज्ञान से नहीं, हम उसका विधिवत् अध्ययन करके कोई ज्ञान भले ही प्राप्त करलें। "लोक-साहित्य में साधारण ग्रामीण समाज का खान-पान, रहन-सहन तथा रीति-रिवाज आदि का परिचय मिलता है" —क्या परिचय मिलता है? यही कि सोने के कटोरों में शिशुओं को दूध भात खिलाया जाता है, स्त्रियाँ दक्षिण को चीर पहनती हैं, चन्द्रहार, बाजूबंद और माँगटीका धारण किए हैं, बासमती चावल खाया जाता है, मूंग की दाल, पूड़ी, पूआ और छत्तीस रकम की चटनी ही परोसी जाती है—"अब बताइये ऐसा किस लोक में होता है? यह किस समाज का चित्र है? और ऐसे वर्णनों के आधार पर लेखक क्या यह कह सकता है कि "लोक-साहित्य के द्वारा समाज की आर्थिक अवस्था से हम भली-भाँति परिचित हो सकते हैं।" क्या लेखक ने सचमुच कोई ऐसा लोक देखा है जिसमें सोने के कटोरों में शिशुओं को दूध-भात खिलाया जाता हो, छत्तीस रकम की चटनी परोसी जाती हो—आदि। पृ० ज पर है—"लोक-साहित्य के दूसरे भाग में 'लोक-गाथा' का स्थान आता है। इसमें किसी एक व्यक्ति के जीवन का सांगोपांग वर्णन रहता है। वस्तुतः लोकगाथा एक कथात्मक गीत होती है।"

इस कथन में आपत्ति की दो बातें हैं: १—यह कि 'लोकगाथा' में 'व्यक्ति के जीवन का सांगोपांग वर्णन' अनिवार्य मानना भूल है। यह बात इससे भी सिद्ध है कि आगे पृ० ४-६ में 'लोकगाथा की परिभाषा' में उद्धृत किसी भी विद्वान् की सम्मति में 'व्यक्ति के जीवन के सांगोपांग वर्णन' का किंचित् भी उल्लेख नहीं, २—यह कि 'लोकगाथा' जब 'कथात्मक गीत' है तो इसे 'गीत' से अलग दूसरा भेद क्यों माना जाना चाहिये। 'लोक-गीत' के ही व्यापक भेद के अन्तर्गत इसे स्थान मिलना चाहिये।

पृ० 'ज' पर आगे है—'लोक-साहित्य के उपर्युक्त चार अंगों के अतिरिक्त ग्राम-जीवन के अन्य अंश भी इसमें आते हैं। उदाहरण के लिए ग्रामीण प्रहसन, नाटक रामलीला तथा भित्ति-चित्र इत्यादि।"

इस कथन पर ये आपत्तियाँ हैं: १—ऊपर लोक-साहित्य के अध्ययन के चार भाग ही माने गये हैं। उक्त कथन वाली बातें किस भाग में जायेंगी? स्पष्ट है कि लेखक 'लोक साहित्य' का ठीक-ठीक विभाजन नहीं कर सका। २—उक्त कथन में 'इसमें' सर्वनाम किसके लिए आया है—क्या 'लोक-साहित्य के लिए' यदि 'हाँ' तो 'भित्ति-चित्र' तो 'साहित्य' नहीं? प्रतीत यह होता है कि लेखक को लोक-साहित्य [फोक लिटरेचर] और लोकवार्त्ता [फोकलोर] में भ्रम हो गया है। शाब्दिक अभिव्यक्ति-मात्र ही 'साहित्य' के अन्तर्गत आ सकती है। फिर ३—'ग्राम' शब्द भी आपत्तिजनक है। 'ग्राम और लोक' के क्षेत्र में अन्तर है। लोक का क्षेत्र व्यापक है, उसमें 'ग्राम' समाया हुआ है। अतः ग्राम को लोक का पर्यायवाची नहीं मानना चाहिये।

पृ० 'ब' पर लोक-कथाओं की जो ६ श्रेणियां दी गयी हैं, वे अवैज्ञानिक हैं, क्योंकि उन श्रेणियों के निर्धारण के सिद्धान्त का प्रतिपादन नहीं किया गया। साथ ही वे एक-दूसरे में व्याप्त हैं। उदाहरणार्थ पहली श्रेणी में 'उपदेशात्मक' कहानियां हैं। लेखक ने नीचे स्वयं लिखा है कि 'प्राय: समस्त भोजपुरी कहानियां उपदेशात्मक है।' अत: उपदेशात्मकता कहानियों का एक लक्षण हो सकती है। उसे श्रेणी विभाजन का सिद्धान्त नहीं स्वीकार किया जा सकता। साथ ही नामकरण भी चिन्त्य है, क्योंकि वह विषय का ठीक परिचय नहीं दे पाता। यों तो सभी नाम प्राय: ऐसे ही हैं। 'मनोरंजनात्मक' से यह अर्थ नहीं निकलता कि यह पशु-पक्षियों से संबंधित होगा, न प्रेमात्मक से ही विषय का यथार्थ ज्ञान होता है। किन्तु 'वर्णनात्मक' और 'सामाजिक' तो इन सबसे अधिक चित्य प्रतीत होते हैं। 'वर्णनात्मक'[1] कहानियां लम्बी होंगी, यह इस नाम से प्रतीत नहीं होता। यों तो प्रत्येक कथा ही वर्णनात्मक होगी। सामाजिक कहानियों में समाज की रूढ़ियों पर व्यंग्य होता है, यह नाम से नहीं प्रतीत होता।

पृ० 'द' में प्रकीर्ण साहित्य के चार भेद कर डाले गये हैं, और यह विदित नहीं होता कि 'लोकोक्ति' और 'सूक्ति' में वास्तविक अन्तर क्या है? लेखक यदि यह मानता हो कि लोकोक्ति में केवल "सामाजिक तथा धार्मिक अवस्था का सुन्दर चित्र रहता है" अर्थात् लोकोक्ति में यथातथ्य विवरण रहता है, और सूक्तियों में 'खेत बोने का उचित समय, वर्षा विज्ञान—के संबंध में वर्णन रहता है'—तो यह कहना होगा कि लेखक ने लोकोक्ति तथा सूक्ति का अन्तर समझा ही नहीं है। वास्तव में इनकी व्याख्या के दोनों वाक्य अत्यन्त अस्पष्ट हैं। "वर्षा विज्ञान—के संबंध में वर्णन रहता है"—इसका क्या अर्थ है? लेखक ने दोनों के जो उदाहरण दिये हैं उनकी तुलना करने पर विदित होता है कि 'सूक्ति' लेखक की दृष्टि में संभवत: वह उक्ति है जिसमें किसी प्राकृतिक व्यापार का निदान रहता है। लोकोक्ति और सूक्ति का यह अन्तर भी गलत है। देखा जाय तो 'सूक्ति' का संबंध साहित्यिक धरातल की सुष्ठु उक्तियों से ठहरेगा। इस दृष्टि से ये 'लोक साहित्य' के अन्तर्गत स्थान नहीं पा सकेंगी। किन्तु यदि 'लोक-साहित्य' के किसी प्रकार को सूक्ति मानना ही हो तो, वह 'सूक्ति-साहित्य' 'लोकोक्ति' का ही एक अंग बनेगा।

पृ० १. पर है, कथात्मक गीतों अथवा वर्णनात्मक गीतों के लिए भारतीय विद्वानों ने तीन नाम प्रस्तुत किए हैं, जिनका उल्लेख ऊपर किया गया है। ये तीन नाम हैं, पँवाड़ा, कथा गीत, तथा गीत कथा। पँवाड़ा शब्द का प्रयोग उत्तरी भारत में बहुत कम होता है। मराठी भाषा में ही यह अधिक प्रचलित है।"

इस कथन पर पहली आपत्ति यह है कि 'कथात्मक' को ही 'वर्णनात्मक' लिखा गया है। स्पष्ट है कि अंग्रेजी के पर्याय के रूप में वर्णनात्मक शब्द डिस्क्रिप्टिव के लिए आता है। उसे भूल से यहां 'नैरेटिव' का पर्याय मान लिया गया है।

---

१. यहां लेखक ने गलती से Narrative का अर्थ वर्णनात्मक कर दिया है। वर्णनात्मक तो descriptive का पर्याय है।

दूसरी यह कि भारतीय विद्वानों ने केवल तीन नाम ही प्रस्तुत नहीं किये हैं—विदित होता है कि लेखक ने बहुत कम विद्वानों से परिचय प्राप्त किया है। कम से कम एक-दो नाम तो और लिये ही गये हैं, जैसे 'प्रबन्ध गीत', 'साके'···आदि·········

फिर 'पँवाड़ा' के संबंध में जो कुछ कहा गया है, वह गलत है। इसे मराठी शब्द बताया गया है। 'पँवाड़ा' शब्द ब्रज[1], राजस्थान[2], गुजरात[3], महाराष्ट्र, छत्तीसगढ़, हिमांचल प्रदेश में आज भी पर्याप्त प्रचलित हैं। स्पष्ट है कि बिना भली प्रकार शोध किये और बिना किसी आधार के ही लेखक ने यह लिख दिया है। आश्चर्य यह है कि लेखक मराठी पँवाड़े से तो परिचित है, पर पड़ोसी ब्रज, राजस्थानी और गुजराती का उसे पता नहीं। यह भी एक अनोखा तर्क प्रतीत होता है कि पँवाड़ा शब्द मराठी में ही प्रचलित है, उत्तरी भारत में नहीं। इसलिये इसे बैलेड के लिए ग्रहण नहीं किया जा सकता। इस कसौटी पर 'लोक-गाथा' शब्द कहाँ तक ग्राह्य होगा? इस स्थान पर आपने लिखा तो 'गाथा' के विषय में किन्तु शब्द स्वीकार किया है 'लोक गाथा'—यदि गाथा में सभी तत्व विद्यमान हैं तो 'लोक' विशेषण क्यों आवश्यक है?

कभी कभी तो यही समझ में नहीं आता कि लेखक का अभिप्राय क्या है? जैसे—पृ० ६-७ पर लिखा गया है:

"समाज का उच्च स्तर सामान्य लोक-हृदय की निश्छल और निरलंकार अभिव्यंजना को सदा से असंस्कृत, कलात्मकता से च्युत तथा गँवार मानता था। इस विकृत आदर्शवाद के फल शताब्दियों से मौखिक परंपरा में रक्षित लोक गाथाओं की ओर हमारी दृष्टि नहीं गई।" इस कथन में 'हमारी दृष्टि' से अभिप्राय लेखक और उसके देश की दृष्टि से नहीं। यद्यपि उसने ऐसा संकेत उक्त वाक्य में नहीं किया, किन्तु आगे वह लिखता है: "भारतवर्ष में परिस्थिति कुछ दूसरी थी।" अतः सिद्ध हुआ कि ऊपर का कथन पाश्चात्य देशों के लिए है। भारत के संबंध में कथन है कि—

"हमारी धारणा है कि भारतीय साहित्यकार एवं मनीषी लोकहृदय को तो भली भाँति समझते थे, परन्तु वे देववाणी संस्कृत अथवा राजभाषा को ही उत्तरोत्तर परिष्कृत एवं परिमार्जित करने में इतने अधिक व्यस्त थे कि उन्हें दूसरी ओर दृष्टि फेरने का समय ही न मिला।"—इस कथन को क्या महत्व दिया जाय? हिन्दी का अनुसंधानकर्त्ता ऐसा कथन कैसे कर सका? हिन्दी के विद्यार्थी को तो एम०ए० में ही फिलोलाजी पढ़ायी जाती है, वहीं से वह जानता है कि प्राकृत, अपभ्रंश आदि की लोकभाषा-विषयक परंपरा वेदों के समय से ही चली आयी है। यहाँ के मनीषियों ने देववाणी या राजभाषा को ही नहीं

---

१. ब्रज में जगदेव का पँमारा, अमरसिंह का पँवारा आदि

२. राजस्थान में पाबू जी का पँवाड़ा, रामदेव जी का पँवाड़ा, आदि।

३. गुजराती साहित्य में तो १५६५ का ही 'बंक चल पवाड़ो' मिलता है। 'ब्रजलोक साहित्य का अध्ययन' प्रकाशित होने के उपरांत 'पँवाड़ा' शब्द, उसकी व्युत्पत्ति और तद्विषयक साहित्य पर काफी चर्चा हुई है। किन्तु शोध-प्रबंध लेखक उन सबसे अपरिचित है।

अपनाया, संस्कृत तथा लोकभाषा दोनों में उच्च कोटि की रचनाएँ यहाँ उपलब्ध हैं। साथ ही संस्कृत परिपाटी लोक परिपाटी को भारत में भी सदा से ही हेय समझती आयी है। अपनी 'धारणा' के लिए भी तो लेखक को कोई प्रमाण देना चाहिये।

पृ० ६ से लोकगाथाओं की उत्पत्ति पर लेखक ने लिखना आरंभ किया है। उसके समस्त विवेचन से ऐसा लगता है कि जैसे वह 'लोकगीत' की उत्पत्ति पर ही लिख रहा है। वह कहीं भी यह नहीं बता सका कि लोकगाथा 'गीत' तथा 'कथा' से बनी है। 'गीत' का जन्म तो उसके बताये ढंग से हो गया पर उसमें 'कथा' कैसे और क्यों मिल गयी? यह बताना भी तो अत्यन्त आवश्यक था।

इस लेखक की यह विशेषता है कि यह एक मत पहले एक निश्चय के रूप में प्रस्तुत करता है, और तुरंत ही एक दूसरा विरोधी मत भी उतने ही निश्चय के साथ प्रस्तुत कर देता है। पृ० १२ पर पहले आपने लिखा है "भारतवर्ष में भी चारण काव्य एवं लोकगाथाओं में कोई विशेष संबंध नहीं रहा है।" और तुरन्त दूसरे ही पैराग्राफ में आप लिखते हैं :—

"चारण-काव्य तथा लोकगाथाओं में विभिन्नता होते हुए भी सहसा यह मत हम नहीं निर्धारित कर सकते कि दोनों में लेशमात्र भी संबंध नहीं था।"—ऐसे विरोधी कथनों के साथ-साथ उल्लेख से प्रतीत यह होता है कि लेखक ने समय समय पर जो नोट लिये हैं, उन्हें बिना चूल बिठाये और बिना उन्हें एक भाषा-बंध में बांधे प्रस्तुत कर दिया है। ऐसी स्थिति इस ग्रंथ में जहाँ-तहाँ विद्यमान है।

पृ० १४ पर आपने डा० कृष्णदेव उपाध्याय के एक कथन को उद्धृत कर उन्हें श्लेगल के 'व्यक्तिवाद' से सहमत बताया है और साथ ही गुमेर के 'समुदायवाद' को भी अस्वीकार न करने वाला बताया है। स्पष्ट है उपाध्याय जी के मत में अनिश्चितता है। ऐसे मतों को उद्धृत करने से विशेष लाभ क्या हो सकता है?

पृ० १८ पर एक उद्धरण दिया गया है, उसका आरंभ होता है इन शब्दों से "सामूहिक गीत-नृत्य से ही काव्य, संगीत, नृत्य, रूपक–" यहाँ 'सामूहिक गीत-नृत्य' के युग का उल्लेख आवश्यक था। ये सामूहिक गीत-नृत्य तो आज भी होते हैं, पर यहाँ अभिप्राय है प्रिमिटिव अथवा आदिम 'सामूहिक गीत-नृत्य' से।

पृ० १९ पर यह वाक्य है "१–सामूहिक गीत-नृत्य [कोरस म्यूजिक एण्ड डांस] जो वस्तुत: मानव के आंतरिक अवस्था की ओर निर्देश करती है।" इसका कोई भी अर्थ समझ में नहीं आता।

यहाँ जो महाकाव्य के विकास-क्रम के समान लोक-गाथाओं का विकास-क्रम दिया गया है वह भी ठीक समझ में नहीं आता। सामूहिक गीत-नृत्य से आख्यानक नृत्य-गीत तक कैसे पहुँचा जाता है? आख्यानक नृत्य-गीत से आख्यान और गाथा तक कैसे पहुँचा जाता है, आदि, यह सब अस्पष्ट रहता है। गाथाचक्र की परिभाषा या व्याख्या भी समीचीन नहीं। यहाँ अंग्रेजी 'बैलेड' शब्द का एक स्थान पर आख्यानक [गीत] अर्थ दिया है या पर्याय दिया है, और दूसरे स्थान पर 'गाथा'। एक दूसरे स्थान पर 'लेज' आख्यान

के पर्याय की भाँति आया है। यहाँ यह भी लिखा गया है कि "विकास की अवस्था में लोकगाथाएँ दो धाराओं में बँट जाती हैं। [क] लोकगाथा तथा [ख] चारण गाथा।" यह समझ में नहीं आता कि लोकगाथा स्वतः लोकगाथाओं का एक भेद कैसे है ? और यह चारण गाथाएँ क्या हैं ? 'ये क्यों दो धाराओं में बँट जाती हैं ?' इस प्रश्न को तो यहाँ पूछना ही व्यर्थ है।

पृ० २१—रासक को लेखक ने लोकगाथाओं पर से निर्मित माना है। इसकी परिभाषा में कहा गया है कि "यह उद्धत प्रधान गेय रूपक था, जिसम स्थान-स्थान पर कोमल प्रयोग भी रहता था। इसमें बहुत सी नर्तकियाँ विचित्र ताल-लय के साथ योग देती थीं, यही 'रासक' आगे चलकर वीरगाथा काल में 'रासो' शैली को जन्म दिया। आल्हा भी वस्तुतः एक रासक ही है जिसका विवेचन इस प्रबंध में किया गया है।"

विचारणीय यह है कि जिस रासक का संबंध नर्तकियों से होगा वह वीरगाथा-काल की 'रासो' शैली को कैसे जन्म दे सकेगा ? यह जिज्ञासा बनी ही रह जाती है। दूसरा प्रश्न यह खड़ा होता है क्या 'आल्हा भी वस्तुतः' 'रासक' है। 'वस्तुतः' शब्द के प्रयोग से प्रतीत होता है कि लेखक को इस बात का विश्वास है, पर क्यों या कैसे ? इसका कोई समाधान नहीं। आल्हा में रासक के कौनसे लक्षण मिलते हैं। यह जानने की जिज्ञासा बनी ही रहती है। क्या ऐसा केवल लेखक के कहने से ही मान लिया जाय ? लेखक ने आल्हा का विवेचन आगे चलकर किया है संभवतः वहाँ यह सिद्ध किया गया होगा कि यह वस्तुतः रासक है। पर वहाँ भी ऐसा कुछ नहीं। वहाँ तो हम और भी भ्रम में पड़ जाते हैं। क्योंकि वहाँ पृष्ठ ५८ पर एक 'नए तथ्य का उद्घाटन' तो लेखक हैं यह किया है कि "यह सिद्ध होता है कि कभी-कभी लिखित काव्य भी अपने मूल कलेवर को छोड़कर जनता जनार्दन के कंठ में आ विराजता है।" यह ठीक है कि लेखक ने आगे आल्हा के रचयिता, उसके काल आदि पर विचार किया है—और अन्त में उसे लोकगाथा ही माना है, पर उक्त समस्त विवेचन ऐसे ढंग से हुआ है कि यह भ्रम पैदा करता है कि लेखक यह भी मानता है कि यह महाकाव्य है, और यह भी कि यह लोक-गाथा है। क्योंकि ऊपर पृष्ठ १२ पर भी उसने निश्चयात्मक रूप में यह लिखा है कि 'लोकगाथा समाज की जिह्वा पर रहती है और चारण काव्य चारण के ही कंठ में। केवल 'जगनिक' का 'आल्हखंड' इसका अपवाद है।" आदि। पर यह वस्तुतः रासक है इस स्थापना को तो उसने कहीं भी सिद्ध नहीं किया।

पृ० ३४ पर लेखक 'माहात्म्य वर्णन' या मंगलभावना में तथा उपदेशात्मकता [मौरेलाइजिंग] और प्रचार [प्रीचिंग] में भेद नहीं कर सका; और इसी आधार पर राबर्ट ग्रेव्स की आलोचना कर डाली है। भारतीय कहानियों में जब कहानीकार कहता है। "जैसे उसके दिन लौटे वैसे सबके लौटें" तो वह सहानुभूतिक टौने के माध्यम से मंगलकामना करता होता है, वह मौरेलाइज़िंग या प्रीचिंग नहीं करता होता। मंगल कामना तथा उपदेशात्मकता एक ही बात नहीं।

पृ० ४२ पर आपने लिखा है कि "वास्तव में किसी भी महाकवि ने परंपरानुगत लोकगाथाओं से स्फूर्ति या प्रेरणा लेकर कोई साहित्यिक रचना नहीं की"—उधर पृष्ठ

१८-१९ पर आपने रामायण तथा महाभारत को लोकगाथाओं से प्रेरित माना है। यथा—"महाकाव्य के विकास और रचना में लोकगाथाओं का विशेष योग रहा है।"

अध्याय २ से 'भोजपुरी लोकगाथाएँ' आरंभ होती हैं। लेखक ने केवल ९ लोक गाथाओं को चुना है। इनके संबंध में लेखक का अभिमत है कि "उपर्युक्त गाथाएँ किसी न किसी रूप में संपूर्ण उत्तरी भारत में प्रचलित अवश्य हैं, परन्तु ये भोजपुरी प्रदेश में जितनी लोकप्रिय हैं, उतनी अन्यत्र नहीं।" इस कथन को या तो तुलनात्मक बनाया ही नहीं जाना चाहिये था, यदि बनाया ही गया था तो प्रमाण पूर्वक कथन होना चाहिये था ? मेरी दृष्टि से तो केवल इतना ही कथन पर्याप्त था कि ये नौ गाथाएँ भोजपुरी प्रदेश में अत्यन्त लोकप्रिय हैं, अतः इन्हें भोजपुरी लोक-गाथाएँ कहना समीचीन होगा।' इतने से ही अभिप्राय सिद्ध हो सकता था। तुलना के लिए चलते ही 'सिनहा' साहब के उक्त मत को पहला चैलेंज तो 'आल्हा' को लेकर उत्तरप्रदेश का ब्रज और बुंदेलखंड ही दे सकता है। ब्रज-बुंदेलखंड में आल्हा अत्यन्त लोकप्रिय है। अब बताइये कि आप यह कैसे सिद्ध करेंगे कि यह वहाँ उतना लोकप्रिय नहीं जितना भोजपुरी प्रदेश में ? हमारा प्रश्न है कि आपने यह कैसे जान लिया ? किस प्रकार आपने तुलना की? क्या आपने समस्त उत्तरी भारत का इस दृष्टि से भ्रमण किया ? या कोई सर्वेक्षण किया ? इसी प्रकार 'बिहुला' क्या भोजपुरी प्रदेश में बंगाल से भी अधिक लोकप्रिय है। ऐसे तुलनात्मक कथन अवश्य ही प्रमाणपूर्वक दिये जाने चाहिये। ऐसी तुलना न भी की जाय तो सारस्वत दृष्टि से कोई हानि नहीं। सारस्वत दृष्टि से तो ऐसी तुलना की ही नहीं जानी चाहिये।

इसी प्रकार पृ० ४६ पर दिया गया यह तर्क कुछ अद्भुत ही माना जायगा—"बुंदेली पर भोजपुरी का अत्यधिक प्रभाव है जिसके आधार पर आल्ह खंड को भोजपुरी लोकगाथा कहना अनुचित न होगा।" यह विनिमय के सिद्धान्त से तर्क है या 'उलटी गंगा' बहाने के न्याय से ? यदि ऐसे तर्क को यहाँ कोई तर्क माना जाता तो फिर 'सोरठी', 'बिहुला' और 'भरथरी' और 'गोपीचंद' के लिए इसी कोटि का क्या तर्क दिया जायगा ? सोरठी का संबंध सौराष्ट्र से है। बिहुला का बिहार-बंगाल से। भरथरी का मालवा से और गोपीचंद का बंगाल से।

अध्याय ३ में वीरकथात्मक लोकगाथा का अध्ययन 'आल्हा' से आरंभ होता है। 'आल्हा' पर जो कुछ लिखा गया है, वह बिल्कुल अपर्याप्त है। न आल्हा की लोकगाथा का परिचय ही पूरा-पूरा हमारे सामने आता है, और न उसके विविध रूपों की तुलना ही संतोष देती है। आल्हा की ऐतिहासिकता पर जो कुछ लिखा गया है, वह तो ऐसा विदित होता है कि आज से पचास वर्ष पूर्व लिखा गया हो। कोई आवश्यकता नहीं थी कि ऐतिहासिकता के प्रश्न को उठाया जाता, किन्तु यदि उठाया गया था तो उस पर सम्यक विचार होना चाहिये था, और आधुनिकतम मत को प्रस्तुत करना चाहिये था।

इसी प्रकार आल्हा-ऊदल के चरित्र पर भी अत्यन्त सरसरी दृष्टि से विचार किया गया है।

यह कहा जा सकता है कि 'आल्हा लोकगाथा' एक अत्यन्त विशद लोक गाथा है, और प्रस्तुत प्रबंध की सीमाओं के अन्दर उस पर सम्यक विचार नहीं किया जा सकता था, किन्तु साथ ही क्या यह भी नहीं अपेक्षा की जा सकती थी कि उसका लोक गाथात्मक परिचय तो मिलना ही चाहिये था। उदाहरण के लिए यों तो आल्हा में 'बावन' लड़ाइयों का उल्लेख है, किन्तु उन लड़ाइयों में जिन तत्वों और तन्तुओं का उपयोग हुआ है, वे अधिकांश में समान हैं और थोड़े हैं। उनको विश्लेषण पूर्वक प्रस्तुत किया जा सकता था। उन्हें गिना कर उनके समक्ष उन कहानियों के नाम का उल्लेख किया जा सकता था जिनमें उन्हें समाविष्ट किया गया है।

साथ ही इस प्रश्न का उत्तर अपेक्षित था कि 'आल्हा' क्यों इतनी लोकप्रिय हो गयी, उसमें विद्यमान उन तत्वों के उद्घाटन की आवश्यकता थी जिनके कारण 'आल्हा' लोकगाथा को और उसके पात्र आल्हा-ऊदल-मलखान को इतना महत्व प्राप्त हुआ! इतिहास-प्रसिद्ध वीरनायकों की उपेक्षा करके लोक ने इन बनाफरों को क्यों यह सम्मान दिया ?

'लोरिकी' पर इसी प्रकार बहुत सरसरी दृष्टि डाली गयी है, और लोकगाथा के अध्ययन के लिए जिन तत्वों को प्रकाश में लाने की अपेक्षा थी उनकी उपेक्षा की गयी है। जिन विविध प्रकाशित तथा मौखिक रूपों से तुलना की गयी है, वह अत्यन्त अपर्याप्त हैं। लोरमयनावती के संबंध में पृ० ८२ पर दौलतकाजी का तो उल्लेख है, पर दौलत काजी के आधार 'साधन' की तद्विषयक कृति का लेखक ने कोई उल्लेख नहीं किया। अब तो मुल्लादाउद की कृति भी उपलब्ध हो गयी है।

लोकगाथा के विद्वान को ऐसी पंक्तियाँ नहीं लिखनी चाहिये कि "यह भारतीय परंपरा है कि जब जब देश में अनार्य प्रवृत्तियाँ अपनी चरम सीमा पर पहुँच जाती हैं, तो भगवान स्वयं इस पृथ्वी पर दुष्टों के पराभव हेतु अवतार लेते हैं।" लोरिक, लोकगाथा में, भगवान लालदेव का ही अवतार नहीं वह ऊदल का भी अवतार है। विजयकुंवर का भी अवतार है। ये लाल देव कौन से आर्य भगवान हैं ? और ऊदल तथा विजय कुंवर कैसे अवतार थे ? लोकगाथा में मानव जाति की आदिम रीढ़ व्याप्त रहती है, इस आन्तरिक तथ्य को दृष्टि से ओझल करके अनार्य प्रवृत्ति के हेतु भगवान के अवतार का वर्णन ठीक नहीं लगता। लेखक को आर्य-अनार्य विषयक मोह है ही। विजयमल गाथा के चरित्रों पर पृ० ९७ पर लिखा है कि "वास्तव में उनका चरित्र, उनकी सभ्यता, उनका राज्यशासन तथा युद्ध-कौशल, इसी बात के द्योतक हैं कि उनमें 'आर्य-रक्त है तथा वे क्षत्रिय कुल के हैं'। पृ० १०७ पर इसी प्रकार उल्लेख है कि 'वह आर्य पथ' का अनुगामी है।

पृ० १५० पर लेखक ने 'सोरठी' की लोकगाथा के कुछ अंशों को जायसी के 'पद्मावत' के तुल्य माना है। वस्तुतः सोरठी की संपूर्ण लोकगाथा का स्वरूप जायसी के पद्मावत के तुल्य नहीं। यों तो प्रत्येक 'प्रेमकथा' किसी न किसी रूप में एक दूसरे के समान हो ही जाती है। 'अजाभार' की कहानी में नाथ-संप्रदाय का भी रूप नहीं; यह तथ्य तो लेखक ने स्वयं भी स्वीकार किया है। इस कथा का ढांचा जैन कथाओं के

लाल बहादुर शास्त्री राष्ट्रीय प्रशासन अकादमी, पुस्तकालय
*Lal Bahadur Shastri National Academy of Administration Library*
मसूरी
MUSSOORIE

अवाप्ति सं०
Acc. No..............................

कृपया इस पुस्तक को निम्नलिखित दिनांक या उससे पहले वापस कर दें।

Please return this book on or before the date last stamped below.

| दिनांक Date | उधारकर्ता की संख्या Borrower's No. | दिनांक Date | उधारकर्ता की संख्या Borrower's No. |
|---|---|---|---|
| | | | |
| | | | |
| | | | |
| | | | |
| | | | |
| | | | |
| | | | |
| | | | |
| | | | |

GL H 891.405
BHA
126533
LBSNAA

# क० मुं० हिन्दी तथा भाषाविज्ञान विद्यापीठ के प्रकाशन

१. "भारतीय साहित्य।" त्रैमासिक मुखपत्र। वर्षभर में ८०० पृष्ठों की गवेषणापूर्ण सामग्री। वार्षिक मूल्य—१२, रु०। एक प्रति—५, रु०। वर्ष भर के सजिल्द अंक १८, रु०; अजिल्द—१६, रु०। जनवरी १९५६ से प्रारम्भ।

२. "ग्रंथ-वीथिका।" अलभ्य एवं अप्रकाशित हस्तलिखित तथा अप्राप्य मुद्रित ग्रंथों का संग्रह। १९५६ के अंक में चार ग्रंथ हैं और १९५७ के अंक में ग्यारह ग्रंथ हैं। मूल्य—१०, रु०।

३. "हिन्दी धातु-संग्रह।" प्रसिद्ध भाषातत्त्ववेत्ता हार्नले के निबन्ध का हिन्दी रूपान्तर। मूल्य—२, रु०।

४. "जाहरपीर ... जाहरपीर का लोकगीत तथ ... , रु०।

५. "भ ... भाषाओं में ऐतिहासिक उप ... रु०।

६. "छ ... —डॉ० विश्वनाथ प्रस ...

७. "म ... यों के चमत्कार पर ... न० पं०।

८. "अल ... राम शर्मा और श्री ...

९. "शो ... ाल 'शोला') सं०- ...

१०. "बंग ... विश्वनाथ प्रसाद

११ "पद्म ... सत्येन्द्र नाथ घोषा

१२. "पिग ... डा० विश्वनाथ प्रसा

१३. "नर्ज ... ० विश्वनाथ प्रसाद

१४. "तुल ... एफ० फर्तुगानोव ... री नारायण शुक्ल

१५. "बंगा ... सं०—डा० सत्येन्द्र

१६. "ब्रज ... ०—डा० सत्येन्द्र

१७. "शर्मि ... उदय शङ्कर शास्त्री


H
891.405 अवाप्ति सं० 20311
भारती
4:4 ACC. No.........
वर्ग सं. पुस्तक सं.
Class No............ Book No...........
लेखक
Author...........
शीर्षक भारतीय साहित्य।
Title...........

891.405 LIBRARY 20311
LAL BAHADUR SHASTRI
National Academy of Administration
MUSSOORIE
भारती 4:4
Accession No.___________

1. Books are issued for 15 days only but may have to be recalled earlier if urgently required.
2. An over-due charge of 25 Paise per day per volume will be charged.
3. Books may be renewed on request, at the discretion of the Librarian.
4. Periodicals, Rare and Reference books may not be issued and may be consulted only in the Library.
5. Books lost, defaced or injured in any way shall have to be replaced or its double price shall be paid by the borrower.

*Help to keep this book fresh, clean & moving*